बीजगणितम् of भास्कराचार्य — with the commentaries in Sanskrit and Hindi by MM. पं. दुर्गाप्रसाद — Edited by पं. गिरिजाप्रसाद द्विवेदी. 3/e, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ 1941.

65

1456

Bill No. 3/07-08

8

2008-0159

बीजगणितम् ।

श्रीमद्भास्कराचार्यैः प्रणीतम् ।

जयपुरमहाराजाश्रितेन संस्कृतपाठशालाध्यक्षेण

श्रीदुर्गाप्रसादद्विवेदेन

कृताभ्यां संस्कृत-हिन्दीभाषाव्याख्याभ्यां समलंकृतम् ।

तृतीयावृत्तौ

लक्ष्मणपुरे

श्रीकेसरीदास सेठ, सुपरिंटेंडेंटस्य प्रबन्धेन

नवलकिशोरयन्त्रालये मुद्रितम् ।

१९४१ ई०

श्रीमद्भास्कराचार्यैः प्रणीतम् ।

बीजगणितम् ।

महामहोपाध्याय—
श्रीदुर्गाप्रसादद्विवेदेन
कृताभ्यां संस्कृत-हिन्दीभाषाव्याख्याभ्यां
समलंकृतम् ।

जयपुर-राजकीयसंस्कृतपाठशालायां
प्रधान-ज्योतिःशास्त्राध्यापकेन
श्रीगिरिजाप्रसादद्विवेदेन
संपादितम् ।

तच्च

तृतीयावृत्तौ

लक्ष्मणपुरे

श्रीकेसरीदाससेठस्य प्रबन्धेन

नवलकिशोरयन्त्रालये मुद्रितम् ।

१९४१ ई०

अनुभूमिका

यह बीजगणित भारतीय ज्योतिःशास्त्र के सिद्धान्त-स्कन्ध अर्थात् गणित-स्कन्ध का मूलतत्त्व एवं बीज-शक्ति स्वरूप अव्यक्त वस्तु है। जैसे बीज में वृक्ष गुप्त रहता है वैसे ही गणित शास्त्र के महान् वृक्ष का उत्पादक यह बीज अनन्त शक्तियों का आधार-भूत है। इसकी उत्पत्ति इसी देश में हुई है, जिसका प्रमाण सूर्य-सिद्धान्त आदि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में अव्यक्तमूलक सिद्धान्तीय प्रश्नों के उत्तर साधक प्रकारों से ज्ञात होता है। वहाँ अव्यक्त से व्यक्त की सिद्धि बीजगणित के विना किसी प्रकार सुगमता से साध्य नहीं है।

परन्तु इसके आर्ष ग्रन्थ कालगति से लुप्त हो गए हैं। यहीं से यह विद्या अरब, ग्रीक एवं इटली, जर्मनी आदि योरप के देशों में फैली है। इसका इँगलैण्ड में सन् १५५७ में सूत्रपात हुआ है। इस समय यह वहाँ पर अपने विशाल एवं व्यापक रूप को प्राप्त हो गई है। यह निष्पक्षपात और निर्विवाद ऐतिहासिक निर्णय है। अस्तु—

सांप्रत में प्रथम आर्यभट (४२१ शक) के बाद जो बीज ग्रन्थ गणितज्ञों ने बनाए उनमें भी कई लुप्त हो चुके हैं। (संस्कृत भूमिका देखिए) केवल भास्कराचार्य का यह बीजगणित ही सर्वत्र प्रचलित और पठन-पाठन के उपयोग में प्राचीन काल से आ रहा है। इस पर कृष्णदैवज्ञ (१४८७ शक) कृत 'नवाङ्कुर', सूर्य-दैवज्ञ (१४६३ शक)कृत बीजभाष्य, रामकृष्ण का बीजगणित प्रबोध और परमसुख की 'बीजविवृतिकल्पलता' आदि टीका उपपत्ति और गणित के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें कृष्णदैवज्ञ का 'नवाङ्कुर' सब टीकाग्रन्थों से उत्तम एवं गणित के मार्मिक विचारों से पूर्ण है।

इस समय भारतीय संस्कृत विद्यालयों में यह बीजगणित परीक्षा पाठ्य ग्रन्थ है। परन्तु इसका विषय अत्यन्त कठिन होने से विशेष प्रतिभा की अपेक्षा रखता है। प्राय: सर्वसाधारण को इसमें सफलता नहीं प्राप्त होती। यह सब इस विद्या के पथिकों को परिज्ञात है। किसी अंश में गणित जिज्ञासुओं को सहायता मिले इस अभिप्राय से जयपुरमहाराजाश्रित, संस्कृतपाठशालाध्यक्ष म० म० श्री ६ दुर्गाप्रसाद द्विवेदीजी ने * इसकी संस्कृत टीका और हिन्दी में अर्थ, गणित विस्तार आदि के साथ लखनऊ के सुप्रसिद्ध 'नवलकिशोर-प्रेस' से सन् १८९३ में पहले प्रकाशित कराया था। उसके बाद सन् १९१७ में इसका दूसरा संस्करण निकला। अब इसका तीसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आजकल भारतीय पाठशालाओं में इसी का प्रचार है। इस बार अंत में नवीन रीति से गणित की रीति 'बीजपरिचय' नाम से लगा दी गई है।

हिन्दी-बीजगणित—

सन् १८५७ क बाद इस देश में जो सरकारी शिक्षा की व्यवस्था हुई थी, वह इस समय की प्राय: सभी छोटी-बड़ी प्रत्येक भाषा की शिक्षाओं का प्रारंभ काल जानना चाहिए। हिन्दी भाषा म शिक्षा देना आवश्यक समझा गया, क्योंकि यही देश की व्यापक भाषा है, इस कारण शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने दूरदर्शिता से उस समय के देशहितैषी एवं अधिकारी विद्वानों से गणित की पाठ्य पुस्तकें भी लिखने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार काशी के म० म० श्रीबापूदेव शास्त्री ने 'बीजगणित' बहुत ही अपूर्व लिखा जो कि अंग्रेजी के Higher Algebra के नवीन विषयों से भूषित है। इसके बाद पं० मोहनलाल और पं० कुंज-बिहारी ने हिंदी बीजगणित, लघुत्रिकोणमिति और रेखामिति तत्त्व आदि लिखे थे, जो बहुत ही उपयोगी थे।

---

* आप मेरे पूज्यपाद पिता थे। आपका स्वर्गवास संवत् १९९४ के चैत्र मास में स्वदेश 'अयोध्या' में हो गया।

यह सब ग्रन्थ बड़ी योग्यता से सरल रीति और भारतीय दृष्टि से विद्यार्थियों के लिए तैयार किए गए थे। जो आज भी उपयोगी हैं। पर दुःख है, ऐसे सुबोध, सरल ग्रन्थ शिक्षाक्षेत्र से उठाकर बड़ी दूर फेंक दिए गए हैं। अब केवल वैदेशिक दृष्टि के आधार पर अनेक छोटे-बड़ ग्रन्थ पाठ्य में नियत हैं, जिनका वास्तव में कोई उपयोग नहीं है। इधर बहुत दिनों से चक्रवर्ती के चक्र का बोलबाला है, संभवतः अब उसने विश्राम लिया हो।

आशा है, भारतीय बीजगणित पढ़ाने और पढ़नेवालों को इस हिन्दी संस्करण से सहायता मिलेगी।

'सरस्वती-पीठ'
जयपुर
१।४।१९४१

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

भूमिका

अयि गणितानुरागिणः !

लीलावतीसंज्ञितं व्यक्तगणितं संस्कृत-हिन्दीभाषालेखाभ्यां प्राग् व्याख्यातमस्माभिरिति प्रसिद्धं तावत् । यदनन्तरमेवास्या लीलावत्या द्वित्रा हिन्दीटीका मोहमय्यादिनगर्यां प्रकाशिता इति श्रूयते । संप्रति बीजसंज्ञितमव्यक्तगणितं तथा प्राग् व्याख्यातमेव यथास्थानं परिवर्त्य परिष्कृत्य च प्रकाशितम् । अपि चेदानीमहरहः पाश्चात्त्यनूतनसंकेतेनैव भारतीयगणितोपपत्तीनामुल्लेखो बोभूयते, तत्रैव पुनर्नव्यगाणितिकानां सानुरागा प्रवृत्तिरुपचीयते; तावता मन्ये कतिपयसमयेन प्राचीनगणितप्रक्रिया लुप्ता

---

१ प्राचीन शिलालेख अथवा ताम्रपत्रों में भी बीजगणित के अनुसार संवत् शक आदि का लेख रहता है, इसलिए पुरातत्त्वज्ञों को इस गणित से भी परिचय रखना आवश्यक है । उदाहरण—

> 'यस्मिन्नह्नि चतुर्षु पक्षतिथिवारर्क्षेषु पक्षो नग-
> त्रिघ्नोऽन्यैस्त्रिभिरन्वितः स्मृतिलवः स्यात्साष्टिशाकस्य सः ।
> नन्दघ्नस्तिथिरन्ययुक् स च लवो विश्वघ्नवारोऽन्ययुग्
> वा तत्त्वघ्नभमन्ययुक्तमथवैषास्योद्धृतौ स्यान्मितिः ॥

यहां शक, पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्र के मान क्रम से उनके आद्यवर्ण कल्पना करने से शक आदि के मान ये सिद्ध होते हैं— $\frac{\text{१ ति}}{\text{६ प}}$, $\frac{\text{२ वा}}{\text{१ ति}}$, $\frac{\text{२ न}}{\text{१ वा}}$ फिर कुट्टक द्वारा नक्षत्र का मान ३ रूप जानकर शक आदिकों में उत्थापन देने से यह समय ज्ञात होता है—शक=१६६४ पक्ष=२ तिथि=१२ वार=६ और नक्षत्र=३ अर्थात् शालिवाहन शक १६६४ वैशाख शुक्ल द्वादशी शुक्रवार कृत्तिका नक्षत्र ।

जयपुर-यन्त्रालय के 'दक्षिण गोलयन्त्र' पर जो श्लोक खुदे हैं उनमें से यह सातवां श्लोक है । इसका संशोधन और गणित मेरे शिष्य श्रीमाधवशास्त्री पुरोहित ने किया है ।

भविष्यतीति । सेयं गणितशैली भारतीयैर्दत्तहस्तावलम्बा लुप्ता माभूद् एतदर्थमत्र विशिष्यप्राचीनपरिपाट्या गणितजातं विश्व-विद्यालयच्छात्रतुष्ट्यै प्रादर्शि। किं बहुना, यथा विस्मृतबीजगणिता-नामपि ग्रन्थपाठमात्रेणाधीतस्मरणं स्याद्, यथा वा परीक्षाकामु-कानां गणितकरणमन्तरेण बोधः स्यात्, तथात्र प्रयत्नोऽकारि । भवति चात्र श्लोकः—

अत्युत्तानतरप्रमेयरचनापारम्परीबन्धुरं
स्पष्टोदाहरणक्रमं क्वचिदहो नूत्नक्रियामांसलम् ।
एवं बालकबोधसाधनकृते टीकान्तरेभ्योऽधिकं
भाषाभाष्यमिदं पठन्तु गणका व्युत्पत्तिसंपत्तये ॥

एतदेव श्रीमद्भास्करीयं बीजगणितं संप्रति सर्वत्र पठनपाठन-व्यवहारेषु प्रवर्तते । श्रीधरपद्मनाभबीजे तु नामतो ज्ञायेते । यद् ब्रह्मगुप्तबीजं ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तान्तर्गतं दृश्यते, तत्तु शब्दार्थतः संकुचितमेव । एकं बीजं ज्ञानराजदैवज्ञैरुपनिबद्धं तदपि स्वल्पम् । एवं नारायणीयबीजमपीति दिक् ।

बीजगणिते प्रसङ्गादुद्धृतानि प्राचां वाक्यानि यथा—

(१) द्वौ राशी क्षिपेत्तत्र (इष्टहतेऽधोराशौ) पृ. १३४ ।
(२) 'पञ्चकशतदत्तधनात्—' पृ. २३६ ।
(३) 'चतुराहतवर्गसमैः—' श्रीधराचार्यसूत्रम् । पृ.२६६ ।
(४) 'व्यक्तपक्षस्य चेन्मूलं—' पद्मनाभबीजे । पृ. ३२८ ।
(५) 'राशिक्षेपाद् वधक्षेपः—' पृ. ३३२ ।
(६) 'त्रिभिः पारावताः पञ्च—' पृ. ३७४ ।
(७) 'निराधारा क्रिया यत्र—' पृ. ४२४ ।

(८) 'षडष्टशतकाः क्रीत्वा—' पृ. ४२६ ।
(९) 'आलापो मतिरमला—' पृ. ४२७ ।
(१०) 'राशियोगकृतिः—' पृ. ४५१ ।
(११) 'यत्स्यात्साल्पवधार्धतः—' पृ. ४८३ ।
(१२) 'राश्योर्ययोः कृतियुतिवियुती—' पृ. ५०२ ।
(१३) 'को राशिस्त्रिभिरभ्यस्तः—' पृ. ५१४ ।
(१४) 'हरभक्ता यस्य कृतिः—' पृ. ५२१ ।

आशासे मदीयेनानेन प्रयत्नेन गणितप्रणयिनः सफलसमीहिता भविष्यन्तीति ।

जयपुरम्.
चैत्र कृ. ८ शुक्रे.
वि० सं० १९७३.

दुर्गाप्रसादद्विवेदी

श्रीगणेशाय नमः ।

बीजगणितम् ।

विलासिनामकेन व्याख्यानेनालंकृतम् ।
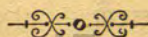
जयति जगदमन्दानन्दमन्दारकन्दो
वृजिनशमनबीजं पार्वतीजानिरेकः ।
तदनु गणितविद्यानाटिकासूत्रधारो
जयति धरणिरत्नं भास्कराचार्यवर्यः ॥ १ ॥

तातश्रीसरयूप्रसादचरणस्वर्वृक्षसेवापरो
मातृश्रीहरदेव्यपारकरुणापीयूषपूर्णान्तरः ।
हृत्पद्मभ्रमरायमाणगिरिशो दुर्गाप्रसादः सुधी-
रध्येतृप्रतिभोद्गमाय कुरुते बीजोपरि व्याकृतिम् ॥ २ ॥

अथ तत्रभवान् भास्कराचार्यो ग्रहगणितरूपं सिद्धान्तशिरोमणिं चिकीर्षुस्तदुपयोगितया तदध्यायभूतां लीलावतीनामिकां व्यक्तगणितपाटीं निर्माय तथाभूतं बीजगणितमारभमाणः प्रत्यूहव्यूहनिरासाय शिष्यशिक्षार्थं मङ्गलमादौ निबध्नाति—

उत्पादकं यत्प्रवदन्ति बुद्धे-
रधिष्ठितं सत्पुरुषेण सांख्याः ।

व्यक्तस्य कृत्स्नस्य तदेकबीज-
मव्यक्तमीशं गणितं च वन्दे ॥ १ ॥

उत्पादकमिति । पद्यमिदमर्थत्रयवाचि । तत्र प्रथमं तावदव्यक्तपक्षे व्याख्यायते—तद् अव्यक्तं प्रधानं सांख्यशास्त्रे जगत्कारणतया प्रसिद्धं वन्दे अभिवादये । सांख्याः सेश्वराः श्रीभगवत्पतञ्जलिमतानुसारिणो यद् बुद्धेः महत्तत्त्वस्य उत्पादकमभिव्यञ्जकं प्रवदन्ति कथयन्ति । ननु प्रधानमचेतनं कथं कार्यमुत्पादयेदित्यत उक्तं पुरुषेणाधिष्ठितं सदिति । यथाहि—कुलालादिना चेतनेनाधिष्ठितं कपालादि घटाद्युत्पादकं तद्वदित्यर्थः । निरीश्वराः कपिलमतानुसारिणस्तु पुरुषनिरपेक्षमेव प्रधानमुत्पादकं प्रवदन्ति ।

तदुक्तं श्रीमदीश्वरकृष्णचरणैः—

'वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य ।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य' ॥ ५७ ॥

'यथा तृणोदकं गवा भक्षितं क्षीरभावेन परिणम्य वत्सविवृद्धिं करोति पुष्टे च वत्से निवर्तते । एवं पुरुषविमोक्षनिमित्तं प्रधानमित्यज्ञस्य प्रवृत्तिः' इति तद्भाष्यम् । ननु तादृशे प्रधाने किं प्रमाणमित्यत आह—कृत्स्नस्य व्यक्तस्यैकबीजमिति । समस्तस्य व्यक्तस्य कार्यजातस्य एकं बीजं कारणमिति ॥ अथेशपक्षे—अत्र यत्तदोर्लिङ्गविपरिणामेन यदिति स्थाने यं तदिति स्थाने तं चेति बुद्धिमता व्याख्येयम् । तमीशं सच्चिदानन्दरूपं वन्दे । सांख्याः, सम्यक ख्यायते ज्ञायते आत्मा यया सा संख्या आत्माकारान्तःकरणवृत्तिः, सा विद्यते येषां ते सांख्याः आत्मज्ञानिन इत्यर्थः । सत्पुरुषेण नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रफलभोगविरागशमदमादिसंपत्तिमुमुक्षुत्वेतिसाधनचतुष्टयसंपन्नेन अधिष्ठितमादरनैरन्तर्याभ्यां श्रवणविषयीकृतं सन्तं बुद्धेस्तत्त्वज्ञानस्योत्पादकं प्रवदन्ति । ननु तस्याजनकत्वाद्बुद्धिजनकत्वे मानाभाव इत्यत आह—समस्तस्य व्यक्तस्य एकमसाधारणं बीजमुपादानमित्यर्थः । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इति 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इति च । अथ गणित-

पक्षे–तदव्यक्तं गणितं बीजगणितमिति यावत् । वन्दे । गणितवन्दनेन तदधिष्ठात्री देवता वन्द्यत इति सांख्या: संख्याविदो गणका: सत्पुरुषेण स्वरूपयोग्येन अधिष्ठितमभ्यस्तं यद् बुद्धे: प्रज्ञाया: उत्पादकं प्रवदन्ति । कीदृशम् । समस्तस्य व्यक्तगणितस्य एकं बीजं मूलमित्यर्थ: । उपजातिवृत्तमेतत् ॥ १ ॥

भाषाभाष्य ।

सकलभुवनैकहेतुं सेतुं संसारसागरस्यैकम् ।
आर्या[1]पदारविन्दं जित[2]कुरुविन्दं नमस्कुर्म: ॥ १ ॥
श्रीभास्कराचार्यविनिर्मितस्य
विधाय पाटीगणितस्य टीकाम् ।
अद्यास्य बीजस्य चिकीर्षुरस्मि
भ[3]व्याकृतिव्याकृतिरत्नमार्या: ॥ २ ॥
प्रणम्य सादरं मूर्ध्ना पित्रो: पादारविन्दयो: ।
दुर्गाप्रसाद: कुरुते भाषाभाष्यं मिताक्षरम् ॥ ३ ॥

श्रीभास्कराचार्य, लीलावती पाटीगणित को बनाकर अब बीजगणित की निर्विघ्न समाप्ति के लिए आरंभ में मङ्गलाचरण करते हैं—

सांख्यशास्त्रसंबन्धी पहला अर्थ—

सांख्यशास्त्र में जो बुद्धि अर्थात् महत्तत्त्व का अभिव्यंजक—प्रकृति-पुरुष की संनिधि से कहा जाता है, संसार के अद्वितीय कारण उस अव्यक्त—प्रधान (प्रकृति) की मैं वन्दना करता हूँ ।

उत्तरमीमांसा (वेदान्त) शास्त्रसंबन्धी दूसरा अर्थ—

आत्मज्ञानी, जिसको सत्पुरुष अर्थात् साँधनसंपन्न पुरुष के द्वारा

---

१ गौरीचरणपङ्कजमित्यर्थ: । २ कान्त्या तिरस्कृतप्रवालमित्यर्थ: । ३ भव्या दोषहानेन रम्या आकृती रचनाविशेषो यस्य तत् ।

४ 'ब्रह्म ही एक नित्य वस्तु है, उससे भिन्न संपूर्ण वस्तु अनित्य हैं' ऐसे विवेचन को 'नित्यानित्यवस्तुविवेक' कहते हैं । गन्ध, माल्य, चन्दन, वनिता आदि लौकिक विषय भोग और अमृतपान, नन्दनवनक्रीड़ा आदि पारलौकिक विषयभोग से अत्यन्त

भली भाँति आराधित बुद्धि अर्थात् तत्त्वज्ञान का उत्पादक कहते हैं, उस ब्रह्माण्डोदरवर्ती घटपटादि कार्यों का असाधारण कारण एवं सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर की मैं वन्दना करता हूँ।

ज्योतिःशास्त्रसंबन्धी तीसरा अर्थ—

संख्या (गिनती) के ज्ञाता ज्योतिषी लोग, जिसको सूक्ष्मबुद्धि और परिश्रमशाली पुरुषों द्वारा अभ्यस्त किया गया, जो बुद्धि अर्थात् मति का उत्पादक बतलाते हैं, उस संपूर्ण व्यक्तगणित (पाटी-गणित) के मूलभूत बीजगणित की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

पूर्वं प्रोक्तं व्यक्तमव्यक्तबीजं
प्रायः प्रश्ना नो विनाऽव्यक्तयुक्त्या।
ज्ञातुं शक्या मन्दधीभिर्नितान्तं
यस्मात्तस्माद्वच्मि बीजक्रियां च ॥ २ ॥

इदानीं प्रेक्षावत्प्रवृत्तिहेतुविषयादिचतुष्टयं संगतिं च प्रदर्शयति–पूर्वमिति । तस्माद्धेतोः बीजस्य यावत्तावदादिवर्णकल्पनाभिः क्रियमाणस्य गणितस्य क्रियामितिकर्तव्यतां वच्मि ब्रुवे । यस्माद्

विरक्ति को 'इहामुत्रफलभोगविराग' कहते हैं। तत्त्वज्ञान के सहायक श्रवण, मनन आदि विषयों को छोड़ अन्य विषयों से मनोवृत्ति के रोकने को 'शम' कहते हैं। तत्त्वज्ञान के साधन श्रवण मननादिकों को छोड़कर शब्दादि विषयों में प्रवृत्त कर्णादि बाह्येन्द्रियाँ जिस वृत्ति से निवृत्त हों, उसको 'दम' कहते हैं। तत्त्वज्ञान के सहयोगी श्रवण, मननादि छोड़कर शब्दादि विषयों से बाह्येन्द्रियों के उपराम को 'उपरति' कहते हैं। अथवा पर्याप्त भोग के बाद गन्ध, माल्य प्रभृति विषयों के चतुर्थाश्रम (संन्यास) में परित्याग को 'उपरति' कहते हैं। शीत और उष्ण की सहनशीलता को 'तितिक्षा' कहते हैं। शब्दादि विषयों से रोके हुए मन का, तत्त्वज्ञानोपकारक श्रवण आदि में समाधिस्थ होने को 'समाधान' कहते हैं। गुरु और वेदान्तवाक्यों में निश्चल विश्वास को 'श्रद्धा' कहते हैं। मोक्षविषयक इच्छा को 'मुमुक्षुता' कहते हैं। नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रफलभोगविराग, शम आदि छः पदार्थ और मुमुक्षुता ये चार साधन वेदान्तशास्त्र में सुप्रसिद्ध हैं।

व्यक्तं वर्णकल्पनानिरपेक्षं गणितं पूर्वं प्रोक्तम् । ततः किमित्यत आह—अव्यक्तबीजमिति । अव्यक्तं बीजगणितं मूलं यस्य तत् । तथा च पूर्वं प्रोक्तमपि व्यक्तं तावत्सम्यक्तया न ज्ञायते यावद्बीज-क्रिया नोपपद्यते । तत्किं व्यक्तज्ञानार्थमेवारम्भो न चेत्याह—यस्मात्सुधीभिः प्राज्ञैरव्यक्तयुक्त्या विना प्रश्नाः प्रायो ज्ञातुं नो शक्याः । मन्दधीभिस्तु नितान्तं ज्ञातुं नो शक्याः । अशक्या एवे-त्यर्थः । प्रश्नाश्चात्रसिद्धान्तशिरोमण्युक्ताः । इतरे च पृच्छकेच्छाव-शादपि ज्ञातव्याः । अत्र बीजक्रियां वच्मीति वदता आचार्येण एकवर्णसमीकरणानेकवर्णसमीकरणमध्यमाहरणभावितरूपभेद-चतुष्टयाभिन्नं गणितं विषयत्वेन प्रदर्शितम् । तदुपयुक्ततया धनर्णष-ड्विधखषड्विधवर्णषड्विधकरणीषड्विधकुट्टकवर्गप्रकृतिचक्रवालान्यपि विषयत्वेन प्रदर्शितानि । विषयस्य शास्त्रस्य च प्रतिपाद्यप्रतिपादक-भावः संबन्धोऽपि बीजक्रियां वच्मीत्यनेन दर्शितः । प्रयोजनं तु प्रश्नोत्तरार्थज्ञानं गोलज्ञानं च । परम्परया जगतः शुभाशुभफला-देशश्च । अध्येतृणां धर्मार्थकामप्राप्तिश्च वेदाङ्गत्वादिति । शा-लिनीवृत्तमेतत् ॥ २ ॥

प्रथम पाठकों की प्रवृत्ति के लिये विषय, संबन्ध, प्रयोजन, अधि-कारी और ग्रन्थसंगति कहते हैं—

जिसका अव्यक्त अर्थात् बीजगणित मूल सिद्धांत है; उस व्यक्त अर्थात् लीलावती नामक पाटीगणित को मैंने पहले बनाया है। परंतु बीजगणित की युक्तियों के विना प्रश्नों के उत्तर लाने की रीति प्रायः स्पष्ट ज्ञात नहीं होती और वह मंदबुद्धियों के लिए तो बहुत ही कठिन पड़ती है। इस ग्रंथ में एकवर्ण समीकरण से लेकर भावित तक चार प्रकार के बीजभेद और उनके उपयोगी धनर्णषड्विध आदि एवं कुट्टक, वर्गप्रकृति और चक्रवाल यह विषय है । विषय अर्थात् प्रतिपाद्य का प्रतिपादक अर्थात् बीजगणित शास्त्र का सम्बन्ध है । प्रश्नोत्तर

ज्ञान प्रयोजन है। सुपात्र पढ़ने और पढ़ाने के अधिकारी हैं। इसलिये अब मैं बीजगणित की क्रिया (रीति) को भी कहता हूँ।

धनर्णसंकलने करणसूत्रं वृत्तार्द्धम्-

योगे युतिः स्यात्क्षययोः स्वयोर्वा धनर्णयोरन्तरमेव योगः ॥

अथ धनर्णसंकलनं तावदुपजातिकापूर्वार्धेनाह-योगे युतिरिति। क्षययोः ऋणयोः स्वयोर्धनयोर्वा योगे कर्तव्ये युतिः स्यात्। अस्यायमभिप्रायः-ययो राश्योर्योगो विधेयोऽस्ति तौ रूपात्मकौ वर्णात्मकौ करण्यात्मकौ वा स्यातां, तर्हि तयो राश्योः 'कार्यः क्रमादुत्क्रमतोऽथ वाङ्कयोगः-' इति व्यक्तोक्तरीत्या योगः कार्यः स एवात्र योगः स्यात्। करण्योस्तु योगोऽन्तरं वा 'योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य-' इत्यादिवक्ष्यमाणप्रकारेण विधेयम्। एवं बहूनामपि। इत्थं सजातीययोगोऽवधेयः। यत्र त्वेकराशिर्धनमपर ऋणं तयोर्योगे कर्तव्ये किं करणीयमित्याह-धनर्णयोरन्तरमेव योग इति। उर्वरितस्य धनर्णत्ववशाद्युतेरपि धनर्णत्वमवसेयम् ॥

संकलन (जोड़ने) का प्रकार—

यदि दो राशि धन अथवा ऋण हों तो उनका व्यक्तगणित की रीति से योग ही यहाँ भी योग होता है। एक राशि धन और दूसरा ऋण हो तो भी व्यक्तगणित के प्रकार से उनका अन्तर यहाँ पर योग होता है। यहाँ शेष धन बचे तो धन और ऋण बचे तो ऋण होता है।

उपपत्ति—

(अ) ने (क) से तीन रुपये ऋण लिया, फिर चार रुपये ऋण लिया, इस प्रकार (अ) ने सात रुपये ऋण लिया। फिर (अ) को तीन रुपये और चार रुपये इस प्रकार सात रुपये मिले परन्तु धन कुछ नहीं बचा, क्योंकि सात रुपये ऋण लिया था। अब जो (अ) चार रुपये

ऋण करे और तीन रुपये अर्जन (पैदा) करे तो उसके एक रुपया ऋण रहेगा । यदि चार रुपये अर्जन करे और तीन रुपये ऋण करे तो अवश्य ही एक रुपया धन रहेगा । इससे 'योगे युतिः—' यह सूत्र उपपन्न हुआ ।

उदाहरणम्—

रूपत्रयं रूपचतुष्टयं च
क्षयं धनं वा सहितं वदाशु ।
स्वर्णं क्षयं स्वं च पृथक् पृथङ् मे
धनर्णयोः संकलनामवैषि ॥ १ ॥

अत्र रूपाणामव्यक्तानां चाद्याक्षराण्युपलक्षणार्थं लेख्यानि यानि ऋणगतानि तान्यूर्ध्वबिन्दूनि च ।

न्यासः । रू ३̇ रू ४̇ योगे जातम् रू ७̇
न्यासः । रू ३ रू ४ योगे जातम् रू ७
न्यासः । रू ३ रू ४̇ योगे जातम् रू १̇
न्यासः । रू ३̇ रू ४ योगे जातम् रू १

एवं भिन्नेष्वपि

इति धनर्णसंकलना *।

---

* अत्रेदं पद्यं स्मरणीयम्—

अणोरणीयान् महतो महीयानचिन्त्यमूलप्रकृतिप्रभावः ।
महेश्वरो वा ऋणरूपराशिर्विचारणीयो हृदि सांख्यविद्भिः ॥

उदाहरण—

तीन ऋण, चार ऋण या तीन धन। चार धन, या तीन धन चार ऋण, या तीन ऋण और चार धन इनका योग अलग अलग क्या होगा?

यहाँ सुगमता के लिये रूप और अव्यक्तराशि के आदि के अक्षर लिखते हैं। जैसे 'रूप' को रू और 'अव्यक्त राशि यावत्तावत्' इत्यादिकों को या इत्यादि। ऋण राशि के मस्तक पर एक बिन्दु का चिह्न देते हैं। जैसा–रू १̇। रूप उस राशि को कहते हैं जिसका मान ज्ञात हो और अव्यक्त राशि वह है जिसका मान अज्ञात हो। जैसा कि 'रू ३̇ रू ४̇' इस पहले उदाहरण में, रूप तीन तथा रूप चार ऋण हैं, इसलिये इनके शिर पर बिन्दु का चिह्न लगाया गया है। अब इन दोनों का योग उक्त प्रकार से रूप सात ऋण होता है रू ७̇ ऐसा ही आगे भी जानना चाहिए।

(१) न्यास। रू ३̇ रू ४̇। इनका योग रू ७̇ हुआ।
(२) ,, । रू ३ रू ४। इनका योग रू ७ हुआ।
(३) ,, । रू ३ रू ४̇। इनका योग रू १̇ हुआ।
(४) ,, । रू ३̇ रू ४। इनका योग रू १ हुआ।

इसी प्रकार, भिन्नाङ्कों का भी योग किया जाता है, परंतु वहाँ समच्छेद विधि का स्मरण रखना चाहिए।

संकलन समाप्त।

धनर्णव्यवकलने करणसूत्रं वृत्तार्धम्–
संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति
स्वत्वं क्षयस्तद्युतिरुक्तवच्च ॥ ३ ॥

अथ धनर्णव्यवकलनमुपजात्युत्तरार्धेनाह–संशोध्यमानमिति। संशोध्यते अपनीयते यत्तत्संशोध्यमानम् रूपं वर्णः करणी चेति त्रिलिङ्गी। सामान्यान्नपुंसकत्वम्। तद्यदि धनमस्ति तर्हि ऋण-त्वमेति, यदि क्षयोऽस्ति तर्हि धनत्वमेति। पश्चादुक्तवद्योगश्च।

अस्यायमभिप्रायः–ययोरन्तरं कर्तव्यमास्ते तयोर्मध्ये संशोध्यमानस्य धनर्णतावैपरीत्यं विधाय 'योगे युतिः स्यात्–' इत्यादिना तयोर्योगः कार्यस्तदेव व्यवकलनफलमवधेयम् ॥ ३ ॥

व्यवकलन (घटाने) का प्रकार—

जो राशि घटाई जाती है, उस को संशोध्यमान कहते हैं। वह संशोध्यमान (घटनेवाली) राशि धन हो तो ऋण और ऋण हो तो धन हो जाती है। फिर उनका योग 'योगे युतिः स्यात् —' इस प्रकार से करना ॥

उपपत्ति—

(अ) के धन सात रुपयों से धन तीन रुपया घटाना है, तो सात रुपयों का स्वरूप 'रू ४ रू ३' यह हुआ। अब, इसमें से तीन रुपया घटाने से, शेष 'रू ४' रहा। इसी प्रकार ऋण सात रुपयों से, ऋण तीन रुपया घटाना है, तो सात रुपयों का स्वरूप 'रू ४̇ रू ३̇' यह हुआ। इसमें तीन रुपया जोड़ने से शेष 'रू ४̇' रहा। यह बात संशोध्यमान राशि के धन-ऋण के वैपरीत्य से सिद्ध होती है। इसी प्रकार धन सात रुपयों से ऋण तीन रुपया घटाना है, तो धन सात रुपयों का स्वरूप 'रू १० रू ३̇' हुआ। इसमें तीन रुपये जोड़ देने से अन्तर सिद्ध होता है, तो यहाँ भी संशोध्यमान राशि का वैपरीत्य सिद्ध हुआ। इसी प्रकार ऋण सात रुपयों से धन तीन रुपया घटाना है, तो ऋण सात रुपयों का स्वरूप 'रू १०̇ रू ३' यह हुआ। इसमें तीन रुपया घटाने से 'रू १०̇' यह अन्तर हुआ। यहाँ पर भी संशोध्यमान राशि का वैपरीत्य सिद्ध हुआ। ऐसा ही सर्वत्र जानना। 'इससे संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति' इस प्रकार की उपपत्ति स्पष्ट प्रकाशित होती है ॥ ३ ॥

उदाहरणम्–

त्रयाद् द्वयं स्वात्स्वमृणादृणं च
व्यस्तं च संशोध्य वदाशु शेषम् ॥

न्यासः। रू ३ रू २ अन्तरे जातम् रू १।
न्यासः। रू ३̇ रू २̇ अन्तरे जातम् रू १̇।
न्यासः। रू ३ रू २̇ अन्तरे जातम् रू ५।
न्यासः। रू ३̇ रू २ अन्तरे जातम् रू ५̇।

इति धनर्णव्यवकलनम्।

उदाहरण—

तीन धन में दो धन, वा तीन ऋण में दो ऋण, वा तीन धन में दो ऋण, अथवा तीन ऋण में दो धन घटाने पर शेष क्या बचेगा ?

(१) न्यास। रू ३ रू २ इन का अन्तर रू १ हुआ।
(२) ,, । रू ३̇ रू २̇ इन का अन्तर रू १̇ हुआ।
(३) ,, । रू ३ रू २̇ इन का अन्तर रू ५ हुआ।
(४) ,, । रू ३̇ रू २ इन का अन्तर रू ५̇ हुआ।

व्यवकलन समाप्त।

गुणने करणसूत्रं वृत्तार्धम्–

स्वयोरस्वयोः स्वं वधः स्वर्णघाते
क्षयः ———————————— ॥

अथ गुणनं भुजंगप्रयातपूर्वार्धखण्डेनाह–स्वयोरिति। स्वयोर्धनयोः अस्वयोर्ऋणयोर्वा वधो गुणनं एकस्यापरतुल्यावृत्तिर्धनं भवति। स्वर्णघाते तु क्षयः स्यात्। एतदुक्तं भवति–यदि गुण्यो गुणकश्चेति द्वावपि धनमृणं वा स्यातां तर्हि तदुत्पन्नं फलं धनं स्यात्। अत्र गुणनफलस्य धनर्णत्वमात्रं प्रतिपादितम्। अङ्कतस्तु व्यक्तोक्ताः सर्वेऽपि गुणनप्रकारा द्रष्टव्याः॥

गुणन का प्रकार—

गुणन के दो राशियों में एक को गुण्य और दूसरी को गुणक कहते हैं। दोनों राशि धन वा ऋण हों, तो उन का घात धन होगा और उन में एक धन दूसरा ऋण हो तो उन का घात ऋण होगा।

उपपत्ति—

गुण्य की गुणक के समान आवृत्ति को गुणनफल कहते हैं और गुण्य, गुणकों में एक को गुण्य दूसरे को गुणक मान सकते हैं। (यह बात लीलावती के 'गुण्यान्त्यमङ्कं—' इत्यादि गुणनसूत्रों के व्याख्यान से स्पष्ट है) गुण्य और गुणक धन हों तो गुणनफल धन होगा। उन में एक धन दूसरा ऋण हो तो गुणनफल ऋण होगा, क्योंकि गुणकतुल्य स्थानगत ऋण गुण्यों का योग ऋण होता है। अथवा, पूर्वोक्त रीति से यदि धन और ऋण दो समान राशि हों तो उनका योग शून्य होता है। जैसे 'रू२रू२̇' इनका योग रू० हुआ। इन को किसी एक तुल्य अङ्क से गुणने से भी योग शून्य ही होगा। इस लिये 'रू २ रू २̇' इन को धन तीन से गुणने से पहले स्थान में धन-धन का घात रू ६ धन हुआ। दूसरे स्थान में, धन और ऋण का घात यदि ऋण न मानें तो 'रू ६ रू ६̇' इन का योग शून्यात्मक न होगा। इस कारण, धन और ऋण का घात ऋण ही होगा। इसी प्रकार 'रू २ रू २̇' इन दो राशियों को ऋण तीन से गुणने से पहले स्थान में धन और ऋण का घात ऋण रू ६̇ हुआ। दूसरे स्थान में यदि ऋण-ऋण का घात धन न माने तो 'रू ६̇ रू ६̇' इन का योग शून्य न होगा। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऋणात्मक राशियों का घात धन ही होता है। इस प्रकार स्वयोरस्वयोः स्वं वधः—' इस गुणनसूत्र की उपपत्ति स्पष्ट होती है॥

उदाहरणम्—

धनं धनेनर्णमृणेन निघ्नं
द्वयं त्रयेण स्वमृणेनं किं स्यात्॥ २॥

न्यासः। रू २ रू ३ धनं धनघ्नं धनं स्यादिति जातम् रू ६

न्यासः। रू २̇ रू ३̇ ऋणमृणघ्नं धनं स्यादिति जातम् रू ६

न्यासः। रू २ रू ३̇ धनमृणगुणमृणं स्यादिति जातम् रू ६̇

न्यासः। रू २̇ रू ३ ऋणं धनगुणमृणं स्यादिति जातम् रू ६̇

इति धनर्णगुणनम्।

उदाहरण—

धन दो को धन तीन से, वा ऋण दो को ऋण तीन से, वा धन दो को ऋण तीन से अथवा ऋण दो को धन तीन से गुणने से गुणनफल अलग अलग क्या होगा ?

(१) न्यास। रू २ रू ३। धन को धन से गुणने से गुणनफल रू ६ धन हुआ।

(२) न्यास। रू २̇ रू ३̇। ऋण को ऋण से गुणने से गुणनफल रू ६ धन हुआ।

(३) न्यास। रू २ रू ३̇। धन को ऋण से गुणने से गुणनफल रू ६̇ ऋण हुआ।

(४) न्यास। रू २̇ रू ३। ऋण को धन से गुणने से गुणनफल रू ६̇ ऋण हुआ।

धन-ऋण राशि का गुणन समाप्त।

—भागहारेऽपि चैवं निरुक्तम् ॥

उदाहरणम्—

रूपाष्टकं रूपचतुष्टयेन
धनं धनेनर्णमृणेन भक्तम् ।
ऋणं धनेन स्वमृणेन किं स्याद्-
द्रुतं वदेदं यदि बोबुधीषि ॥ ३ ॥

न्यासः । रू ८ रू ४ । धनं धनहृतं धनं स्यादिति जातम् रू २ ।

न्यासः । रू ८̇ रू ४̇ । ऋणमृणहृतं धनं स्यादिति जातम् रू २ ।

न्यासः । रू ८̇ रू ४ । ऋणं धनहृतमृणं स्यादिति जातम् रू २̇ ।

न्यासः । रू ८ रू ४̇ । धनमृणहृतमृणं स्यादिति जातम् रू २̇ ।

इति धनर्णभागहारः ।

अथ भागहारं भुजंगप्रयातपूर्वार्धशेषशकलेनाह—भागहार इति। भागहारेऽपि गुणनवदेव निरुक्तमित्यर्थः । अस्यायमभिप्रायः—भाज्यभाजकयोरुभयोरपि धनत्वे ऋणत्वे वा लब्धिर्धनमेव स्यात् । यदा त्वेकतरस्य धनत्वमितरस्य ऋणत्वं तदा लब्धिर्ऋणमेव भवति ॥

भागहार का प्रकार—

भाज्य और भाजक दोनों धन या ऋण हो तो लब्धि धन होती है । यदि एक धन और दूसरा ऋण हो तो लब्धि ऋण होती है ।

उपपत्ति—

भागहार में गुणन के समान संपूर्ण क्रिया होती है । जैसा—गुणन में धन-धन का, या ऋण-ऋण का घात धन होता है, वैसा ही यहाँ पर धन राशि में धन राशि का, या ऋण राशि में ऋण का भाग देने से लब्धि धन होती है, क्योंकि धन या ऋण राशियों का घात धन ही होता है । इसी प्रकार भाज्य और भाजक में कोई एक धन हो और दूसरा ऋण तो भी लब्धि ऋण होगी, क्योंकि धन और ऋण का घात ऋण होता है । और हर लब्धि का घात सर्वत्र भाज्य राशि के समान होता है । इससे 'भागहारे—' यह उपपन्न हुआ ।

उदाहरण—

धन आठ में धन चार का, या ऋण आठ में ऋण चार का, या ऋण आठ में धन चार का, अथवा धन आठ में ऋण चार का, भाग देने से क्या लब्धि होगी ?

(१) न्यास । रू ८ रू ४ । धन ८ में धन ४ का भाग देने से धन रू २ लब्धि मिली ।

(२) न्यास । रू ८̇ रू ४̇ । ऋण ८̇ में ऋण ४ का भाग देने से धन रू २ लब्धि मिली ।

(३) न्यास । रू ८̇ रू ४ । ऋण ८̇ में धन ४ का भाग देने से ऋण रू २̇ लब्धि मिली ।

(४) न्यास । रू ८ रू ४̇ । धन ८ में ऋण ४̇ का भाग देने से ऋण रू २̇ लब्धि मिली ॥

धन ऋण राशि का भागहार समाप्त ।

वर्गादौ करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

कृतिः स्वर्णयोः स्वं स्वमूले धनर्णे
न मूलं क्षयस्यास्ति तस्याकृतित्वात् ॥ ४ ॥

उदाहरणम्—

धनस्य रूपत्रितयस्य वर्गं
क्षयस्य च ब्रूहि सखे ममाशु ॥

न्यासः । रू ३ रू ३̇ जातौ वर्गौ रू ९ रू ९ ।

उदाहरणम्—

धनात्मकानामधनात्मकानां
मूलं नवानां च पृथग्वदाशु ॥ ४ ॥

न्यासः । रू ९ । मूलम् ३ वा ३̇ ।

न्यासः । रू ९̇ । एषामवर्गत्वान्मूलं नास्ति ।

इति धनर्णवर्गमूले ।

इति धनर्णषड्विधम् ।

अथ वर्गं तन्मूलं च भुजंगप्रयातोत्तरार्धेनाह—कृतिरिति । स्वस्य धनस्य ऋणस्य च वा वर्गः स्वं स्यात् । अथ मूलमाह—स्वमूले धनर्णे इति । स्वस्य धनस्य मूले धनर्णे भवतः । धनस्यैव वर्गस्य मूलमृणमपि भवतीति भावः । अथात्र विशेषमाह—न मूलं क्षयस्या-

स्तीति । अत्र हेतुं प्रदर्शयति-तस्याकृतित्वादिति । वर्गस्य मूलं लभ्यते । ऋणाङ्कस्तु न वर्गः कथमतस्तस्य मूलं स्यात् ॥ ४ ॥
इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत-दुर्गाप्रसादोन्नीते लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिनि धनर्णषड्विधविवरणं समाप्तम् ॥

वर्ग-वर्गमूल का प्रकार—

धन अथवा ऋण राशि का वर्ग धन होता है और उस धनात्मक राशि का वर्गमूल धन वा ऋण होता है । ऋणराशि का मूल नहीं होता, क्योंकि वह (ऋणात्मक राशि) वर्ग नहीं है ॥ ४ ॥

उपपत्ति—

किसी एक राशि के समान दो घात को वर्ग कहते हैं । धनात्मक राशि को धनात्मक राशि से, या ऋणात्मक राशि को ऋणात्मक राशि से गुण देने से उन का घात धन होता है, यह बात सिद्ध है, इसलिये वर्गात्मक राशि सदा धन होती है और उसका मूल धन वा ऋण होता है । ऋणात्मक राशि वर्ग नहीं है, क्योंकि धन, ऋण राशि का घात ऋण होता है वह किसी का समद्विघात नहीं हो सकता । इस से 'कृतिः स्वर्णयोः—' उपपन्न हुआ ॥ ४ ॥

उदाहरण—

धन तीन और ऋण तीन इनका वर्ग क्या है ?

(१) न्यास । रू ३ । इसका वर्ग रू ९ हुआ ।

(२) ,, । रू ३̇ । इसका वर्ग रू ९ हुआ ।

उदाहरण—

धन नौ अथवा ऋण नौ का वर्गमूल क्या होगा ?

(१) न्यास । रू ९ इसका मूल रू ३ धन, या रू ३̇ ऋण हुआ ।

(२) ,, रू ९̇ यह वर्गात्मक राशि नहीं है, इस कारण इस का मूल नहीं मिलता है ।

धन-ऋण राशि का वर्ग-वर्गमूल समाप्त ।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे ।
वासनाभङ्गिसुभगं संपूर्णं स्वर्णषाड्विधम् ॥

खसंकलनव्यवकलने करणसूत्रं वृत्तार्धम्—
खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव
च्युतं शून्यतस्तद्विपर्यासमेति ॥

अथ शून्यस्य संकलनव्यवकलने भुजंगप्रयातपूर्वार्धेनाह—खयोग इति । रूपस्य यावत्तावदादिवर्णस्य करण्या वा शून्येन सह योगे वियोगे वा कर्त्तव्ये रूपादिकं धनमृणं तथैव भवेत् । योगवियोगकृतो न कश्चिद्विशेष इत्यर्थः । अत्र खयोगो द्विविधः । खेन योगो रूपादेः खयोग इत्येकः । खस्य योगो रूपादिना खयोग इति द्वितीयः । एवं वियोगोपि द्विविधः । खेन वियोग इत्येकः । खाद्वियोग इति द्वितीयः । तत्र द्विविधेऽपि खयोगे पूर्वस्मिन्खवियोगे च रूपादिकं धनमृणं वा यथास्थितमेव । खाद्वियोगे विशेषमाह—च्युतमिति । धनमृणं वा रूपादिकं शून्यतः शोधितं सद्विपर्यासं वैपरीत्यमेति प्राप्नोति । धनं शून्यतश्च्युतमृणमृणं चेद्धनं भवतीत्यर्थः ॥

शून्य के जोड़ने-घटाने का प्रकार—

शून्य को किसी राशि में जोड़ने या शून्य में किसी राशि को जोड़ने और शून्य को किसी राशि में घटाने से भी धन या ऋण का विपर्यास अर्थात् हेर फेर नहीं होता । जो शून्य में किसी राशि को घटा दें तो वह धन हो तो ऋण और ऋण हो तो धन हो जाती है ।

उपपत्ति—

जो योग करने की संख्या केवल दो हो तो, उनमें से जिस संख्या में दूसरी संख्या जोड़नी होगी, उस पहली संख्या को योज्य और दूसरी को योजक कहते हैं । योज्य और योजक के बीच में, योजक का जितना ह्रास (कमी) होगा, उतना ही योगज फल अर्थात् जोड़ का भी ह्रास होगा । इस प्रकार योजक के तुल्य योजक का ह्रास होने से, योगज फल में भी योजकतुल्य ह्रास होगा । उस दशा में,

योज्य के समान योगज फल सिद्ध होगा। और जब योज्य योजक में योज्य के समान ह्रास होगा, तब योजक के तुल्य योगज फल होगा। इसलिये कहा है कि, शून्य को किसी राशि में जोड़ दें अथवा शून्य में किसी राशि को जोड़ दें, तो भी वह राशि ज्यों की त्यों रहती है।

घटाने की दो संख्याओं में, बड़ी संख्या को वियोज्य और छोटी को वियोजक कहते हैं। वियोज्य का वियोजक के तुल्य ह्रास होने से अन्तर सिद्ध होता है और वियोजक का जितना ह्रास होगा, उतना ही अन्तर की वृद्धि होगी। अब जो वियोजक के तुल्य वियोजक का ह्रास हो तो, अन्तर में वियोज्य तुल्य वृद्धि होगी अर्थात् वियोज्य संख्या के तुल्य अन्तर सिद्ध होगा। इस लिये कहा है कि, शून्य को किसी राशि में घटाने से उसका मान नहीं बिगड़ता। वियोज्य का जैसे जैसे ह्रास होता जायगा वैसे ही अन्तर का भी ह्रास होगा, यह प्रसिद्ध है। जैसा, वियोज्य ५ और वियोजक ३ है तो अन्तर २ हुआ, अब यहाँ ४ वियोज्य रक्खा तो अन्तर १ हुआ, ३ वियोज्य रक्खा तो अन्तर ० हुआ, २ वियोज्य रक्खा तो अन्तर १̇ हुआ, १ वियोज्य रक्खा तो अन्तर २̇ हुआ, और ० शून्य वियोज्य रक्खा तो अन्तर ३̇ हुआ। इस लिये कहा है कि, शून्य में किसी राशि को घटाने से, उस के धन-ऋण चिह्न बदल जाते हैं अर्थात् वह धन हो तो ऋण और ऋण हो तो धन हो जाता है। इससे 'खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव'—यह सूत्र उत्पन्न हुआ॥

उदाहरणम्—

रूपत्रयं स्वं क्षयगं च खं च
किं स्यात्खयुक्तं वद खच्च्युतं* च॥

न्यासः। रू ३ रू ३̇ रू ०। एतानि खयुतान्यविकृतान्येव।

* बहुत्र 'खाच्च्युतम्' इति पाठो दृश्यते स प्रामादिक एव।

न्यासः। रू ३ रू ३̇ रू०। एतानि खाच्च्युतानि रू ३̇ रू ३ रू०।

इति खसंकलनव्यवकलने।

रूपत्रयमिति । धनं रूपत्रयम् ऋणं रूपत्रयं खं च एतत्त्रयमपि पृथक् पृथक् खयुक्तं किं स्यात् । अत्र खेन युक्तं खयुक्तम् । खे युक्तं खयुक्तम् । इत्युदाहरणद्वयमपि द्रष्टव्यम् । एवं खच्युतमित्यत्रापि तृतीयापञ्चमीतत्पुरुषाभ्यामुदाहरणद्वयं द्रष्टव्यम् ।

उदाहरण—

धन तीन, ऋण तीन और शून्य, इन में शून्य को जोड़ने से अथवा, शून्य में इन को जोड़ने से और उन्हीं में शून्य को घटाने से वा शून्य में उन को घटाने से, क्या फल होगा ?

न्यास—

(१) योज्य, रू ३ रू ३̇ रू०
योजक, रू ० रू ० रू०
योग रू ३ रू ३̇ रू०

(२) योज्य, रू० रू० रू०
योजक, रू ३ रू ३̇ रू०
योग रू ३ रू ३̇ रू०

(३) वियोज्य, रू ३ रू ३̇ रू०
वियोजक, रू० रू० रू०
अन्तर रू३ रू३̇ रू०

(४) वियोज्य, रू० रू० रू०
वियोजक, रू३ रू३̇ रू०
अन्तर रू३̇ रू३ रू०

यहाँ चार उदाहरण दिये हैं, पर पहले तीन उदाहरणों में, योग

और अन्तर करने से कुछ विकार नहीं हुआ। चौथे उदाहरण में ऋण और धन का व्यत्यय हुआ है।

शून्य का जोड़ना-घटाना समाप्त॥

खगुणनादिषु करणसूत्रं वृत्तार्धम्—
*वधादौ वियत्खस्य खं खेन घाते
खहारो भवेत्खेन भक्तश्च राशिः॥ ५॥

अथ खगुणनादिकं भुजंगप्रयातोत्तरार्धेनाह—वधादाविति। यथा पूर्वं खयोगवियोगयोर्द्वैविध्यमुक्तं तथा खगुणनभजनयोरपि द्वैविध्यमास्ते। खस्येति खेनेति च। वर्गादिषु तु खस्येत्येक एव प्रकारः संभवति। वर्गादिकरणे द्वितीयसंख्यानपेक्षणात्। तत्र खस्येति प्रकारेष्वाह—खस्य शून्यस्य वधादौ गुणनभजनवर्गतन्मूलघनतन्मूलेषु कर्तव्येषु गुणनफलादिकं शून्यं स्यात्। खेनेतिगुणनप्रकारे फलमाह—खं खेन घात इति। खेन शून्येन घाते कस्यचिदङ्कस्य गुणनफलं खं स्यात्। अत्र 'खगुणश्चिन्त्यश्च शेषविधौ' इति व्यक्तोक्तो विशेषो द्रष्टव्यः। अन्यथा

'त्रिभज्यकोन्मण्डलशङ्कुघाता-
चरज्ययाप्तं खलु यष्टिसंज्ञम्'

इत्यानयने गोलसंधौ यष्ट्यभावापत्तिः स्यात्। तत्र तु गोलजरीत्या लम्बज्यासमाना यष्टिरायातीति विस्तर उपपत्तीन्दुशेखरे द्रष्टव्यः। खेनेति भजनप्रकारे फलमाह—खहारो भवेदिति खेन

---

* अत्र जीवन्मुक्तदृष्टान्तः—

शून्याभ्यासवशात्खतामुपगतो राशिः पुनः खोद्धृतो-
ऽप्यावृत्तिं पुनरेव तन्मयतया न प्राक्तनीं गच्छति।
आत्माभ्यासवशादनन्तममलं चिद्रूपमानन्ददं
प्राप्य ब्रह्मपदं न संसृतिपथं योगी गरीयानिव॥

भक्तो राशिः खहारो भवेत् । खं शून्यं हारश्छेदो यस्य स खहारोऽनन्त इत्यर्थः ॥ ५ ॥

शून्य के गुणन-भजन-वर्ग-वर्गमूल का प्रकार—

जैसा शून्य का योग और अन्तर दो प्रकार का होता है, वैसा ही गुणन और भजन भी दो प्रकार का होता है। वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल यह सब एक ही प्रकार के हैं। क्योंकि इन के करने में दूसरी संख्या की अपेक्षा नहीं पड़ती। गुणन में, शून्य को किसी राशि से गुणा दें अथवा, किसी राशि को शून्य से गुणा दें तो भी गुणनफल शून्य ही होगा। भागहार में इतना विशेष है कि—शून्य में किसी राशि का भाग देने से फल शून्य ही मिलता है, पर शून्य का किसी राशि में भाग देने से, वह राशि खहर अर्थात् उस के नीचे शून्य छेद (हर) हो जाता है।

उपपत्ति—

अङ्क के अभाव में, उस स्थान की पूर्ति के लिए शून्य ० यह चिह्न विशेष लिखते हैं। गुणक, यह आवर्तक है। क्योंकि गुणकतुल्य, गुण्य की आवृत्ति करने से, गुणनफल होता है। इस कारण गुण्य के अभाव से गुणनफल का भी अभाव सिद्ध हुआ। इसी प्रकार, भाज्य के ह्रासवश से, लब्धि का भी ह्रास होता है, जब कि भाज्य शून्य है, तो लब्धि अवश्य ही शून्य होगी। इसी प्रकार जैसे भाजक का ह्रास होगा वैसे ही लब्धि की वृद्धि होगी। और जब कि भाजक का परम ह्रास होगा, उस दशा में लब्धि की परमवृद्धि होगी। इसी हेतु लब्धि की अनन्तता कही है। इससे 'वधादौ वियत्'— सूत्र की उपपत्ति स्पष्ट प्रतीत होती है ॥ ५ ॥

उदाहरणम्—

द्विघ्नं त्रिहृत्खं खहृतं त्रयं च
शून्यस्य वर्गं वद मे पदं च ॥ ५ ॥

न्यासः। गुण्यः रू० । गुणकः रू २ गुणिते जातम् रू० ।

न्यासः । भाज्यः रू० । भाजकः रू ३ भक्ते जातम् रू० ।

न्यासः। भाज्यःरू ३ । भाजकः रू० भक्ते जातम् रू $\frac{3}{0}$

अयमनन्तो राशिः खहर इत्युच्यते ।

द्विघ्नमिति । द्वाभ्यां हन्यते गुण्यते तद् द्विघ्नमिति व्युत्पत्त्या शून्ये गुण्ये द्वौ हन्तीति व्युत्पत्त्या शून्ये गुणके च पृथगुदाहरणं द्रष्टव्यम् । इन्द्रवज्राछन्द इदम् ॥

उदाहरण—

शून्य को दो से गुणाने से या दो को शून्य से गुणाने से, शून्य में तीन का भाग देने से, या तीन में शून्य का भाग देने से क्या फल मिलेगा ? और शून्य का वर्ग· वर्गमूल क्या होगा ?

(१) न्यास । गुण्य रू० गुणक रू२ गुणनफल रू० हुआ ।
(२) ,, गुण्य रू २ गुणक रू० गुणनफल रू० हुआ ।
(३) ,, भाज्य रू० भाजक रू ३ भजनफल रू० हुआ ।
(४) ,, भाज्य रू ३ भाजक रू० भजनफल रू $\frac{3}{0}$ हुआ ।
यह $\frac{3}{0}$ अनन्तराशी खहर कहलाती है ।

अस्मिन्विकारः खहरे न राशा-
वपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु ।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकाले
ऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत् ॥ ६ ॥

न्यासः। रू० अस्यवर्गः रू० । मूलम् रू०
एवं खघनादि ।

इति खषड्विधम् ॥

अथात्रखहरराशेरविकारतादृष्टान्तप्रसङ्गेन भगवन्तमनन्तं स्तौति अस्मिन्निति । प्रलयकाले कल्पान्तसमये भगवति अष्टैश्वर्यसंपन्ने अनन्ते अन्तरहिते अच्युते विष्णौ बहुष्वपि भूतगणेषु प्रविष्टेषु लीनेषु । अपि वा सृष्टिकाले निःसृतेषु देहादिमत्तया भगवतोऽच्युतात्पृथग्भूतेष्वपि यद्वद्विकारो नास्ति । नहि तेषु प्रविष्टेषु महान भवति निःसृतेषु वा लघुर्भवति । तथास्मिन् खहरे राशावपि बहुष्वपि राशिषु प्रविष्टेषु निःसृतेषु वा विकारो नास्तीति । उपजातिवृत्तमेतत् ॥ ६ ॥

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत-दुर्गाप्रसादोन्नीते
लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिनि
खषड्विधविवरणं समाप्तम् ।

इस खहर राशि में कोई राशि जोड़ी जाय अथवा घटाई जाय तो भी कुछ विकार नहीं होता । जैसे प्रलयकाल में परमेश्वर के शरीर में अनेक जीव प्रविष्ट होते हैं और सृष्टिकाल में निकल आते हैं, तो भी उस (परमेश्वर) के शरीर में कुछ विकार नहीं होता कि, जीवों के प्रविष्ट होने से मोटा और निकलने से दुबला हो जाय । यद्यपि इस खहर राशि में भिन्नाङ्क के जोड़ने आदि से स्वरूप में विकार पड़ जाता है, तो भी उस की लब्धि का अनन्तत्व (अनन्तपना) नहीं नष्ट होता । जैसे अवतारों के भेद होने से उस परमेश्वर के स्वरूप में तो अन्तर पड़ जाता है, पर अभीष्ट फलदान में कुछ विकार नहीं होता । ऐसी ही खहर राशि को भी जाननी चाहिये ।

इस खहर राशि में विशेष यह है-—जैसे $\frac{3}{0}$ इस में ३ जोड़ना

है तो 'कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः' इस व्यक्तगणित की रीति के अनुसार १ हर कल्पना किया, क्योंकि जिस राशि में ३ को जोड़ना है, वह राशि भिन्न है अर्थात् उसके नीचे शून्य का छेद लगा हुआ है। फिर 'अन्योन्यहाराभिहतौ हरांशौ––' इस प्रकार से समच्छेद करके, उन दो राशियों का योग वा अन्तर करने से कुछ विकार नहीं पड़ा अर्थात् वह योग और अन्तर से उत्पन्न राशि का स्वरूप समान ही रहा। न्यास $\frac{३}{०}$ में $\frac{३}{१}$ को जोड़ने के लिये समच्छेद करने से $\frac{३}{०} + \frac{०}{०}$ ऐसा स्वरूप हुआ और इन का योग $\frac{३}{०}$ वही अविकृत राशि हुई। इसी प्रकार अन्तर करने से भी वही राशि हुई $\frac{३}{०}$।

यहां पर स्वरूप में विकार नहीं पड़ा, परन्तु भिन्नाङ्क के साथ योग या अन्तर करने से, विकार पड़ेगा। जैसे $\frac{३}{०}$ में $\frac{१}{३}$ को जोड़ना है, तो समच्छेद करने से $\frac{६}{०} + \frac{०}{०}$ ऐसा स्वरूप हुआ, इनका योग $\frac{६}{०}$ हुआ। यदि कहें कि एक राशि के छेद से दूसरे राशि के छेदांश को गुणने से, समान छेद हो जाने पर आगे का श्रम व्यर्थ है। जैसे, प्रकृत में $\frac{३}{०}$ खहर राशि के शून्य हर से, दूसरे राशि $\frac{१}{३}$ के छेद और अंश को गुण देने से $\frac{३}{०}$ $\frac{०}{०}$ समान छेद वाली हो गई। अब इनका योग अथवा, अन्तर करने से कुछ भी विकार नहीं होता तो भी खहर का खहर राशि से योग अथवा, अन्तर करने में अवश्य विकार होगा। जैसे $\frac{३}{०}+\frac{५}{०}$ यह दो खहर राशी हैं, इनके तुल्य हर होने से योग $\frac{८}{०}$ हुआ। अब इस अवस्था में क्योंकर कह सके हैं कि अवश्य विकार हुआ, पर वास्तव में यहाँ पर भी फल में नहीं, किन्तु स्वरूपमात्र में विकार हुआ। ऐसा नहीं होता कि ३ तीन में ० शून्य का भाग देने से भिन्न फल मिले और ८ आठ में भाग देने से दूसरा, किन्तु दोनों स्थानों में अनन्तता का व्यभिचार नहीं होता।

जैसे 'उन्नतांशजीवारूप शङ्कु में दृग्ज्याभुज तो इष्ट द्वादशाङ्गुल आदि शङ्कु में क्या? इस त्रैराशिक से सिद्धान्त ग्रंथ में छायासाधन किया गया है। वहाँ उदयकाल में उन्नतांश की जीवा का अभाव होता है और दृग्ज्या त्रिज्या १२० के समान होती है। अब दो, तीन, चार आदि अङ्गुल के शङ्कुओं पर से, उक्त त्रैराशिक से यह खहर

छाया सिद्ध होती है २४०/० । ३६०/० । ४८०/० इन में फल का भेद नहीं है । अर्थात् उस काल में न्यूनाधिक प्रमाण वाले भी शङ्कुओं से जो छाया सिद्ध की गई हैं उन की अनन्तता ही है । उसी काल में २४३८, १२०, १००, ६० इन त्रिज्याओं पर से उक्त त्रैराशिक से द्वादशाङ्गुल शङ्कु की यह छाया आती है ४१२५६/० । १४४०/० । १२००/० । १०८/० इन में भी फल भेद नहीं है । इसी विषय पर श्रीमुनीश्वर (उपनाम-विश्वरूप) ने **पाटीसार** नामक ग्रन्थ में कहा है—

ननु यो ये न भक्तोऽसौ तद्धरः स्यादतो न सत् ।
खभक्त इति पृच्छाया उत्तरं खहरात्मकम् ॥ १ ॥
तस्मात्खभक्तराशेः किं फलं प्रश्नार्थगोचरम् ।
अस्योत्तरं खहारोऽयमनन्तफल उच्यते ॥ २ ॥
भाज्याद्धरापचयकेन फलस्य वृद्धि-
रस्मात्परापचितखात्महरेण भक्तात् ।
लब्धे परोपचय एतदनन्तसंख्या-
मारोहतीति नियतं परता न चास्ति ॥ ३ ॥
श्रीभास्करार्येण कृतेऽत्र बीजे
खहारराशौ परमेशसाम्यात् ।
उक्तं यतोऽङ्केन वियोजितोऽयं
संयोजितश्चाविकृतोऽस्ति नित्यम् ॥ ४ ॥
अस्मिन्विकारः खहरेस्ति राशौ
भिन्नाङ्कयोगे त्वथ भिन्नहीने ।
योगोऽन्तरं तुल्यहरत्वपूर्वं
कार्यं ततः केचिदिदं वदन्ति * ॥ ५ ॥
तन्नैव युक्तं गुणनेन जातो
विकारको नैव युतेर्वियोगात् ।
यतः समच्छेदतया वियोग-
योगाङ्गता तद्गुणनस्य सिद्धा ॥ ६ ॥

* सिद्धान्तसुन्दरकर्तारः श्रीज्ञानराजदैवज्ञाः ।

विकारेऽपि नानन्तलब्धेर्विकारो
यतस्तुल्यलब्धं द्वयोर्नाधिकोनम् ।
यतश्चोदयेऽनेकराशित्रयज्या-
वशाच्छून्यहारप्रभेदेऽपि भैक्यम् ॥ ७ ॥
एवं * पितृव्याः प्रवदन्ति बीज-
नवाङ्कुरे ते खहराः समानाः ।
फलेन सिद्धान्तजवासनाभि-
र्युक्ता यतस्तत्खलु युक्तियुक्तम् ॥ ८ ॥
एवं त्वभिन्नत्रयमौर्विकोत्था
अनेकशङ्कुप्रविकल्पितेन ।
तत्रोदयास्ते खहराः प्रभिन्ना-
स्तल्लब्धिसाम्यं गणकैरमान्यम् ॥ ९ ॥
शङ्कुप्रभेदोद्भवभाः प्रभिन्नाः
सिद्धान्तयुक्त्या कथमन्यथा भाः ।
तद्भिन्नकालेऽपि समाः कुतो न
त्वन्ते खहारास्तु फलैर्न तुल्याः ॥ १० ॥
तस्मात्फलोनाधिकशून्यहारे-
ष्वानन्त्यरूपेण फलप्रसाम्यम् ।
युक्तं समाभाति सुवासनाढ्यं
संख्यागतं नैव फलं यतोऽत्र ॥ ११ ॥

(१) न्यास । रू० इसका वर्ग रू० हुआ ।
(२) ,, । रू० इसका वर्गमूल रू० हुआ ।
इसी भाँति शून्यराशि के घनादिकों को भी जानना चाहिए ।

सोपपत्तिक खषड्विध समाप्त ।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे ।
वासनाभङ्गिसुभगं संपूर्णं शून्यषड्विधम् ॥

---

* नवाङ्कुरटीकाकाराः कृष्णदैवज्ञाः ।

यावत्तावत्कालको नीलकोऽन्यो
वर्णः पीतो लोहितश्चैतदाद्याः ।
अव्यक्तानां कल्पिता मानसंज्ञा-
स्तत्संख्यानं कर्तुमाचार्यवर्यैः ॥ ७ ॥

अथाव्यक्तषड्विधत्वं निरूपयति—तत्र द्वित्र्यादीनां राशीनामव्यक्तत्वे संजाते भेदमन्तरेण तत्संकरः स्यादतस्तन्निरासाय अव्यक्तसंज्ञा आह—यावदिति । 'यावत्तावत्' इत्येका संज्ञा । शेषं सुगमम् ॥ शालिनीवृत्तमेतत् ॥ ७ ॥

अव्यक्त राशियों की संज्ञा--

पूर्वाचार्यों ने अव्यक्त (अज्ञातमान) राशियों की गणना करने के लिये उन की यावत्तावत्, कालक, नीलक, पीतक और लोहितक आदि संज्ञाएँ की हैं, जिन से अलग-अलग राशियों के मान आपस में मिल न जायँ ॥ ७ ॥

अव्यक्तसंकलनव्यवकलने
करणसूत्रं वृत्तार्धम्-
योगोऽन्तरं तेषु समानजात्यो-
र्विभिन्नजात्योस्तु पृथक् स्थितिश्च ॥

अव्यक्तसंज्ञा-अभिधाय तत्संकलनव्यवकलने उपजातिपूर्वार्धेनाह—योगोऽन्तरमिति । तेषु वर्णेषु मध्ये, रूपेष्वपि द्रष्टव्यम् । समानजात्योः, समाना एका यावत्तावत्त्वादिधर्मरूपा जातिर्ययोस्तौ । तथा तयोः समानजात्योः पूर्वोक्तो योगोऽन्तरं वा स्यात् । अत्र 'स्यात्' इति पदमुत्तरदलस्थमन्वेति देहलीदीपन्यायेन । 'समानजात्योः' इत्युपलक्षणम् । तेन समानजातीनामित्यपि द्रष्टव्यम् । विभिन्ना जातिर्ययोस्तौ । तयोर्योगेऽन्तरे वा क्रियमाणे

पृथक् स्थितिरेव स्यात् । अस्यायमभिप्रायः—रूपस्य रूपेण, यावत्तावतो यावत्तावता, कालकस्य कालकेन, यावत्तावद्वर्गस्य यावत्तावद्वर्गेण, यावत्तावद्घनस्य यावत्तावद्घनेन, एवं कालकवर्गस्य कालकवर्गेण, कालकघनस्य कालकघनेन, कालकनीलकभावितस्य कालकनीलकभावितेन, एवं समानजात्योर्योगेऽन्तरे वा कर्तव्ये योगोऽन्तरं वा प्रोक्तवद्भवति । रूपस्य यावत्तावता कालकादिना वा, एवं भिन्नजात्योर्योगेऽन्तरे वा पृथक्स्थितिरेव । अत्रैकपङ्क्ताविति द्रष्टव्यम् । अन्यथा योगान्तरज्ञापकाभावादिति ॥

अव्यक्तराशि के जोड़ने-घटाने का प्रकार—

यावत्तावत् आदि जो अव्यक्तराशियों के द्योतक वर्ण कल्पना किये हैं, वे सजातीय अर्थात् एक जाति के हों तो उन का योग और अन्तर उक्त प्रकार से करना और यदि विजातीय हों तो उनको एक पङ्क्ति में लिख देना । इस प्रकार क्रिया करने से योग और अन्तर होगा । यहाँ पर साजात्य से यह जानना कि रूप का रूप के साथ, यावत्तावत् का यावत्तावत् के साथ, यावत्तावत् वर्ग का यावत्तावद्वर्ग के साथ इसी प्रकार घन का घन के साथ, कालक का कालक के साथ, कालकवर्ग का वर्ग के साथ, घन का कालकघन के साथ योग-अन्तर होता है । इसी प्रकार, उन-उन वर्गों के चतुर्घात, पञ्चघात आदि उन्हीं वर्गों के चतुर्घात पञ्चघात आदि के सजातीय होते हैं और यावत्तावत्, यावत्तावद्वर्ग, यावत्तावद्घन, कालक, कालकवर्ग, कालकघन आदि विजातीय कहलाते हैं । यह बात उदाहरणों से और भी स्पष्ट प्रतीत होगी ।

उपपत्ति—

इसकी युक्ति यह है कि ५ पैसे, ५ रुपये और ५ अशर्फ़ियों के द्योतक, क्रम से ५ या, ५ का, ५ नी, यदि कल्पना किये जायँ तो राशियों का योग १५ पैसे या १५ रुपये या १५ अशर्फ़ियाँ नहीं हो सकता । किंतु ‒)। पैसे ५) रुपये ५)) अशर्फ़ियाँ यही होगा, क्योंकि वे आपस में एक जाति के नहीं है, इससे सिद्ध हुआ कि

उनको अलग-अलग स्थापित करना चाहिए। यदि एक जाति के होते तो योग निर्विवाद ही था । इसी प्रकार अन्तर में भी, सजातीय और विजातीय वर्णों की व्यवस्था जाननी चाहिए । इस से 'योगोऽन्तरं तेषु समानजात्योः' यह सूत्र उत्पन्न हुआ ॥

उदाहरणम्—

स्वमव्यक्तमेकं सखे सैकरूपं
धनाव्यक्तयुग्मं विरूपाष्टकं च ।
युतौ पक्षयोरेतयोः किं धनर्णे
विपर्यस्य चैक्ये भवेत् किं वदाशु ॥७॥

न्यासः । या १ रू १ । या २ रू ८̇ । अनयोर्योगे जातम् या ३ रू ७̇ ।

आद्यपक्षस्य धनर्णव्यत्यासे

न्यासः । या १̇ रू १̇ । या २ रू ८̇ । अनयोर्योगे जातम् या १ रू ९̇ ।

द्वितीयस्य व्यत्यासे

न्यासः । या १ रू १ । या २̇ रू ८ ।
योगे जातम् या १̇ रू ९ ।

उभयोर्व्यत्यासे

न्यासः । या १̇ रू १̇ । या २̇ । या ८ । योगे जातम् या ३̇ रू ७

अथोदाहरणान्याह–स्वमव्यक्तमिति । 'एकरूपयुक्तमेकं धनमव्यक्तम्, इत्येकः पक्षः । 'अष्टभी रूपै रहितं धनमव्यक्तयुग्मम्' इति द्वितीयः पक्षः । एतयोः पक्षयोः संकलने किं फलं स्यात् । अथ पक्षयोर्धनर्णे विपर्यस्य विपर्यासं विधाय युतौ किं फलं स्यात् । इह पूर्वपक्षमात्रव्यत्ययेन उत्तरपक्षमात्रव्यत्ययेन उभयपक्षव्यत्ययेन च प्रश्नत्रयं व्यत्ययाभावे चैक इत्युदाहरणचतुष्टयं द्रष्टव्यम् । 'धनर्णे' इत्यत्र भावप्रधानो निर्देशः ॥

उदाहरण:—

यावत्तावत् एक और रूप एक, यह पहला पक्ष और यावत्तावत् दो, रूप आठ ऋण, यह दूसरा पक्ष है । इन दोनों पक्षों का योग क्या होगा ? और यदि पहले, दूसरे पक्ष के या दोनों पक्षों के ऋण धन चिह्न बदल दिये जायँ तो योग क्या होगा ?

(१) न्यास । या १ रू १ । या २ रू ८̇ । यहाँ पहले पक्ष में यावत्तावत् १ का और रूप १ का योग २ नहीं होता, क्योंकि एकजाति के नहीं हैं, इस कारण एक पङ्क्ति में लिखने से एकपक्ष सिद्ध हुआ, प्रथमपक्ष=या १ रू १ । इसी प्रकार धन यावत्तावत् २ में से रूप ८ को घटाना है तो 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति–' इस सूत्र के अनुसार रूप ८̇ ऋण हुआ, अब इन दोनों धन, ऋणों को 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः' इस सूत्र के अनुसार ६ योग नहीं होता, किंतु एकजाति के न होने से अलग-अलग स्थापित किये गये तो दूसरा पक्ष सिद्ध हुआ, द्वितीयपक्ष=या २ रू ८̇ । योग के लिये दोनों पक्षों का न्यास—

प्रथम-पक्ष = या १ रू १
द्वितीय-पक्ष = या २ रू ८̇

अब उक्त रीति के अनुसार, धन यावत्तावत् १ और धन यावत्तावत् २ का योग धन यावत्तावत् ३ हुआ । धन रूप १ और ऋणरूप ८̇ का योग ऋणरूप ७̇ हुआ । ऐसा ही आगे भी जानना ।

(२) पहले पक्ष के चिह्न बदलने से दो पक्ष सिद्ध हुए—

प्रथम-पक्ष = या १̇ रू १̇ ।

द्वितीय-पक्ष = या २ रू ८̇ ।

इनमें सजातीय ऋण यावत्तावत् १̇ और धन यावत्तावत् २ का योग धन यावत्तावत् १ हुआ । इसी प्रकार सजातीय ऋण रूप १̇ और ऋण रूप ८̇ इनका योग ऋणरूप ९̇ हुआ ।

(३) दूसरे पक्ष के बदलने से दो पक्ष और सिद्ध हुए—

प्रथम-पक्ष = या १ रू १ ।

द्वितीय-पक्ष = या २̇ रू ८ ।

इनमें सजातीय धन यावत्तावत् १ और ऋण यावत्तावत् २̇ का योग ऋण यावत्तावत् १̇ हुआ । इसी प्रकार सजातीय धन रूप १ और धन रूप ८ का योग धन रूप ९ हुआ ।

(४) दोनों पक्षों के बदलने से दो पक्ष और उत्पन्न हुए—

प्रथम-पक्ष = या १̇ रू १̇

द्वितीय-पक्ष = या २ रू ८

अब इन दोनों पक्षों में सजातीय ऋण यावत्तावत् १̇ ऋण यावत्तावत् २ का योग ऋण यावत्तावत् ३̇ हुआ । इसी प्रकार सजातीय ऋण रूप १̇ और धन रूप ८ इनका योग धन रूप ७ हुआ । इसी प्रकार सर्वत्र ऋण, धन, सजातीय और विजातीय का विवेचन जानना चाहिए ।

उदाहरणम्—

धनाव्यक्तवर्गत्रयं सत्रिरूपं
क्षयाव्यक्तयुग्मेन युक्तं च किं स्यात् ॥

न्यासः। याव ३ रू ३ । या २̇। योगे जातम्
याव ३ या २̇ रू ३ ।

धनाव्यक्तयुग्माद्दणाव्यक्तषट्कं
सरूपाष्टकं प्रोझ्य शेषं वदाशु ॥ ८ ॥

न्यासः। या २। या ६ं रू ८। शोधिते जातम्
या ८ रू ८ं।

इत्यव्यक्तसंकलनव्यवकलने।

अथ त्रयाणां वैजात्ये सत्युदाहरणं भुजंगप्रयातपूर्वार्धेनाह– त्रिभी रूपैः सहितं धनमव्यक्तवर्गत्रयं ऋणाव्यक्तयुग्मेन युक्तं किं स्यात्तद्वाशु वदेति पूर्वेणान्वयः। अथोत्तरार्धेन व्यवकलनोदाहरणमाह–धनाव्यक्तयुग्मादिति। धनं यद् अव्यक्तयुग्मं तस्मात् रूपाष्टकेन सहितं ऋणमव्यक्तषट्कं प्रोभ्य अपास्य शेषं व्यवकलनसंभूतं फलं आशु वदेति॥

उदाहरण—

रूप तीन से युक्त धन यावत्तावत्वर्ग तीन और ऋण यावत्तावत् दो इन का योग क्या होगा ?

(१) न्यास। याव ३ रू ३। या २ं। इस उदाहरण में यावत्तावद्वर्ग ३ और रूप ३ का यावत्तावत् २ के साथ योग नहीं हो सकता; क्योंकि परस्पर में एक जाति के नहीं हैं, इसी कारण इनकी पृथक् स्थिति हुई—याव ३ या २ रू ३।

उदाहरण—

धन यावित्तावत् दो में से, धन रूप आठ से युक्त ऋण यावत्तावत् दो को घटाने से शेष क्या बचेगा ?

(१) न्यास। या २। या ६ं रू ८। यहाँ भी यावत्तावत् २ में से यावत्तावत् ६ं और रूप ८ घटाने में 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति–' इस सूत्र के अनुसार यावत्तावत् ६ धन और रूप ८ं ऋण हुए। अब सजातीयों के योग करने से यावत्तावत् ८ धनरूप ८ं ऋण हुआ, यही उत्तर है।

अव्यक्तराशि का जोड़ना-घटाना समाप्त।

अव्यक्तादिगुणने करणसूत्रं सार्धवृत्तद्वयम्—

स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णो
द्वित्र्यादिकानां समजातिकानाम् ॥८॥
वधे तु तद्वर्गघनादयः स्यु-
स्तद्भावितं चासमजातिघाते ।
भागादिकं रूपवदेव शेषं
व्यक्ते यदुक्तं गणिते तदत्र ॥ ९ ॥

अथ वर्णगुणनमुपजातिकोत्तरार्धेनोपजातिकया चाह—स्यादिति । वर्णगुणनं द्विधैव संभवति, रूपेण सजातीयवर्णेन विजातीयवर्णेन वा । तत्र रूपेण गुणने 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णः' इति रूपवर्णाभिहतौ वर्णः स्यात् । अस्यायमभिप्रायः—रूपेण वर्णे गुणनीये वर्णेन वा रूपे गुणनीये अङ्कतस्तु गुणनफलं भवति, नाम तु वर्णस्यैव । अथ सजातीयवर्णेन गुणने समजातिकानां द्वित्र्यादिकानां वर्णानां वधे तु तद्वर्गघनादयः स्युः । एतदुक्तं भवति—यावत्तावता यावत्तावति गुणिते समजात्योर्द्वयोर्घात इति यावत्तावद्वर्गः स्यात् । स चेत्पुनर्यावत्तावता गुण्यते तदा समत्रिघातत्वात् यावत्तावद्घनः स्यात् । अयमपि चेत्तेन गुण्यते तदा समचतुर्घातत्वाद् यावत्तावद्वर्गवर्गः स्यात् । असावपि तेन गुणितश्चेत्पञ्चघातत्वाद् यावत्तावद्वर्गघनयोर्घातः स्यात् । एवं षड्घाते यावत्तावद्वर्गघनो यावत्तावद्घनवर्गो वा भवेत्, इत्यादि । कालकादीनामपि समद्वित्र्यादिवधे कालकादिवर्गघनादयो ज्ञेयाः । अथ विजातीयवर्णेन गुणने 'असमजातिघाते तद्भावितं स्यात्, इति विजातीयवर्णयोर्घाते तयोर्वर्णयोर्भावितं स्यात् । तथा यावत्तावता कालके गुणिते यावत्तावत्कालकभावितं स्यात् । कालकेन नीलके

गुणिते कालकनीलकभावितं स्यात् । इत्यादि बुद्धिमता ज्ञेयम् । यावत्तावत्कालकभावितं यदि कालकेन गुण्यते तदा यावत्तावत्कालकवर्गभावितं स्यात् । इदमपि यदि यावत्तावता गुण्यते तदा यावत्तावद्वर्गकालकवर्गभावितं स्यात् । एवमग्रेऽपि सुधियावधेयम् । एवं गुणनमभिधायेदानीं भागादिकमाह—भागादिकमिति । शेषं भागादिकं भागवर्गवर्गमूलघनघनमूलादिकं यद् व्यक्तगणित उक्तं तदत्र रूपवदेव ज्ञेयम् । 'भाज्याद्धरः शुध्यति-' इत्यादिना भजनफलमवधेयम् । 'समद्विघातः कृतिः' इत्यादिना वर्गो ज्ञेय इति । भागादीनां गुणनपूर्वकत्वाद्गुणनसंज्ञाविशेषस्य चोक्तत्वात्तत्र कोऽपि विशेषो वक्तव्यो नास्तीति भावः । इदमुपलक्षणम् । अत्रासंकरार्थं गुणनफलसंज्ञामात्रमुक्तम् । अङ्कतस्तु गुणनादिकं व्यक्तगणिते यदुक्तं तदत्रापि वेदितव्यम् ॥ ८ । ९ ॥

अव्यक्तराशि के गुणन का प्रकार—

रूप और वर्ण के गुणन से फल वर्ण होता है । अर्थात् रूप से वर्ण को गुणने से अथवा, वर्ण से रूप को गुणने से गुणनफल अङ्कात्मक और रूप के स्थान में वर्ण हो जाता है अर्थात् 'रू' इस अक्षर के आगे लिखे हुए जो अङ्क हों, उन का और यावत्तावत् आदि वर्ण के आगे लिखे हुए अङ्कों का, आपस में व्यक्तगणित में कही रीति से गुणन होगा और 'रू' अक्षर के स्थान में, यावत्तावत्, कालक, नीलक आदि संज्ञाओं के पहले के वर्ण या, का, नी आदि अक्षर लिखे जाते हैं । सजातीय वर्णों से, सजातीय दो, तीन आदि वर्णों को गुणने से, उनके वर्ग, घन, चतुर्घात आदि होते हैं । आशय यह है कि, यावत्तावत् को यावत्तावत् से गुणने में, उन दो सजातीयों के समद्विघात होने से, यावत्तावद्वर्ग होता है । जो यही फिर यावत्तावत् से गुणा दिया जाय तो, समान तीन घात होने से यावत्तावद्घन होगा, वह फिर यावत्तावत् से गुणा जाय तो समान चार घात होने से यावत्तावद्वर्गवर्ग होगा, वह भी जो यावत्तावत् से

गुण दिया जाय तो समान पांचघात होने के कारण, यावत्तावद्वर्ग और उसके घन का घात होगा। इसी भाँति षड्घात करने में यावत्तावत् के वर्ग का घन या यावत्तावत् के घन का वर्ग होगा। इसी प्रकार, कालक आदि वर्णों के समान दो, तीन आदि घात करने से, उन के वर्ग, घन आदि होंगे। विजातीय वर्णों के घात में, उन का भावित होता है अर्थात् यावत्तावत् से कालक को गुणने से यावत्तावत्कालकभावित होगा, कालक से नीलक को गुणने से कालकनीलकभावित होगा, जो यावत्तावत्कालकभावित कालक से गुण दिया जाय तो यावत्तावत्कालकवर्गभावित होगा, यह जो यावत्तावत् से गुण दिया जाय तो यावत्तावत्वर्ग-कालकवर्गभावित होगा, यहाँ पर लाघव के लिये यावत्तावत्कालकभावित के स्थान पर केवल 'याकाभा' उन के आद्याक्षर लिखते हैं। इस प्रकार, गुणन की रीति कहकर, अब भागहार आदि कहते हैं—भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल ये जिस प्रकार व्यक्तगणित (लीलावती) में कहे हैं वैसा ही यहाँ पर भी जानना अर्थात् 'भाज्याद्धर: शुध्यति—' सूत्र के अनुसार भागहार और 'समद्विघात: कृति:—' सूत्र के अनुसार वर्ग और '—वर्गघनप्रसिद्धावाद्याङ्कतोवाविधिरेष कार्य:' सूत्र के अनुसार जैसे व्यक्तगणित में आदि-अङ्क से वर्ग और घन सिद्ध किये जाते हैं, वैसे ही यहाँ पर भी सिद्ध करना।

उपपत्ति—

'रूप' से १, २, ३, आदि ज्ञात संख्या जाननी चाहिए। उन को रूप से गुण देने से गुणनफल रूपात्मक ही होता है। रूप से वर्ण को गुणने में गुणनफल रूप होगा अथवा वर्ण, इस संदेह की निवृत्ति के लिये अज्ञातराशि को रूपसमूह मानकर, युक्ति दिखलाते हैं—कोई अन्न सात आढक के मान पात्र से मापने में एक मान होता है। यदि उसको सात से गुण देवें तो गुणनफल रूपात्मक होगा या समूहात्मक? जो रूपात्मक मानें, तो सात आढक अन्न होगा, पर ऐसा मानना उचित नहीं है। क्योंकि गुणन करने के प्रथम ही सात-आढक अन्न विद्यमान था, अब गुणन के बाद उनचास आढक अन्न

होंगे, इस कारण समूहात्मक कहना उचित है। सात-आढक अन्न का समूह सात है, इससे 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ वर्णः' यह सूत्रखण्ड उपपन्न हुआ। 'रूप' यह एक व्यक्त संख्या का बोधक है, इससे गुणन करने में अङ्कों से गुणन होता है किंतु अक्षरों से नहीं; यदि ऐसा संदेह हो कि रूप और अव्यक्त संख्या के भेद के लिये संख्या के बोधक अङ्क ही लिखे जायँ। रूप के प्रथम अक्षर लिखने का क्या प्रयोजन है? पर यहाँ अङ्क में ऐसा कोई चिह्न भेद दिखलानेवाला नहीं है कि जिससे रूप और वर्णाङ्क के संनिधि में, उन का भेद स्पष्ट प्रतीत हो। इस कारण, रूप का आदि अक्षर लिखते हैं। अब सजातीय वर्णों के गुणन में वर्ण को रूप समूह मान कर, युक्ति दिखलाते हैं—जैसा सात आढक धान्य का १ एक समूह वर्तमान है, इस को इसी से गुण देने से १ हुआ, अब इस सात आढक के समूहात्मक होने से, एक से गुणित समूह अथवा, समूह से गुणित समूह, इस का भेद दुर्ज्ञेय होता है। पर, एक गुण्य में, गुणक के भेद होने से गुणनफल में अवश्य भेद होता है। इसलिये गुणनफल को, समूह-वर्गरूपी कहना उचित है, तो यहाँ उनचास आढक हुए। इस कारण सजातीय दो वर्णों का घात वर्ग होता है, यह बात सिद्ध हुई। इसी प्रकार दो, तीन, चार आदि सजातीय वर्णों के घात करने से उन के घन, और वर्गवर्ग आदि होते हैं। इससे 'द्वित्र्यादिकानां समजातिकानां वधे तु तद्वर्गघनादयः स्युः' सूत्रखण्ड उपपन्न हुआ।

अब विजातीय वर्णों के घात करने में उनका भावित होता है इसकी युक्ति दिखलाते हैं—सात आढक धान्यवाला १ एक समूह है और पाँच आढक धान्यवाला दूसरा १ एक समूह है, इन दोनों समूहों का घात १ हुआ। अब इसको सात आढक धान्यवाला समूह नहीं कह सकते हैं; क्योंकि, एक गुणित और समूहगुणित का अभेद होगा। एवं समूहवर्ग भी नहीं कह सकते, क्योंकि, समूह को अपने से गुणाने से और दूसरे समूह के गुणाने से, जो गुणनफल उत्पन्न होंगे, उन का भेद होना उचित है। इस कारण, उन दोनों समूहों का घात एक विलक्षण ही है, ऐसा मानने से ३५ आढक

होते हैं । इसलिये विजातीय वर्णों का घात अन्तर से होना युक्त है। यहाँ आचार्यों ने घात की 'भावित' यह संज्ञा रक्खी है। यदि 'वध' यह संज्ञा की जाती तो कदाचित् यावत्तावत्वर्ग के साथ संकर (मेल) होता, 'घात' संज्ञा करने से कभी यावत्तावत् घन के साथ भी संकर होना संभव था। इस से 'तद्भावितं चासमजातिघाते' यह सूत्र-खण्ड उपपन्न हुआ॥ ८। ६॥

गुण्यः पृथग्गुणकखण्डसमो निवेश्य-
स्तैः खण्डकैः क्रमहतः सहितो यथोक्त्या।
अव्यक्तवर्गकरणीगुणनासु चिन्त्यो
व्यक्तोक्तखण्डगुणनाविधिरेवमत्र॥ १०॥

अथ शिष्यजनसौकर्यार्थं 'गुण्यस्त्वधोधो गुणखण्डतुल्यः–' इत्यादिव्यक्तोक्तखण्डगुणनं वसन्ततिलकया विशदयति–गुण्य इति। गुणकस्य यावन्ति खण्डानि तावत्सु स्थानेषु पृथग्गुण्यो निवेश्यः। अत्र खण्डानि संज्ञाभेदेन अवगन्तव्यानि। अथ पृथङ्-निवेशितो गुण्यस्तैर्गुणकखण्डैः प्रथमस्थाने प्रथमखण्डेन, द्वितीय-स्थाने द्वितीयखण्डेन, तृतीयस्थाने तृतीयखण्डेन, एवं क्रमेण 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णः–' इत्यादिना गुणितः सन् यथो-क्त्या पूर्वोक्तप्रकारेण 'योगोऽन्तरं तेषु समानजात्योः–' इत्यादिना 'योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा–' इत्यादिना च सहितः। अत्र अव्यक्तगणिते अव्यक्तवर्गकरणीगुणनासु तथा अव्यक्तगुण-नासु वर्गार्थं वर्गगुणनासु करणीगुणनासु च व्यक्तोक्तखण्डगुणना-विधिरेवं चिन्त्यः। एवमन्येऽपि गुणनप्रकारा द्रष्टव्याः॥ १०॥

अब 'गुण्यस्त्वधोधो गुणखण्डतुल्यः–' इस खण्ड गुणन की रीति को विशद करते हैं—

गुणक के जितने खण्ड किये जायँ उतने स्थानों में अलग-

अलग गुण्य को स्थापन करके प्रथम स्थान में प्रथम खण्ड से, दूसरे में दूसरे खण्ड से, तीसरे में तीसरे खण्ड से गुणा करना। 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णः—' के अनुसार गुणन फल को उक्त 'योगोऽन्तरं तेषु समानजात्योः—' और 'योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा—' इस सूत्र की रीति से जोड़ने से वह गुणनफल होगा। यहां भी अव्यक्त के गुणन में वर्ग के गुणन और करणी के गुणन में, खण्डगुणन का प्रकार जानना चाहिए।

उपपत्ति—

इस की उपपत्ति लीलावती की टीका में देखनी चाहिए॥

उदाहरणम्—

यावत्तावत्पञ्चकं व्येकरूपं
यावत्तावद्भिस्त्रिभिः सद्विरूपैः।
संगुण्य द्राग् ब्रूहि गुण्यं गुणं वा
व्यस्तं स्वर्णं कल्पयित्वा च विद्वन्॥ ९॥

न्यासः। गुण्यः या ५ रू १̇। गुणकः या ३ रू २।
गुणनाज्जातं फलम् याव १५ या ७ रू २̇।

गुण्यस्य धनर्णत्वव्यत्यासे

न्यासः। गुण्यः या ५̇ रू १ गुणकः या ३ रू २
गुणनाज्जातम् याव १५̇ या ७̇ रू २।

गुणकस्य धनर्णत्वव्यत्यासे

न्यासः। गुण्यः या ५ रू १̇ गुणकः या ३̇ रू २̇
गुणनाज्जातम् याव १५̇ या ७̇ रू २।

द्वयोर्धनर्णत्वव्यत्यासे

न्यासः। गुण्यः या ५̇ रू १ गुणकः या ३̇ रू २̇
गुणनाज्जातम् याव १५ या ७ रू २̇

उदाहरण—

रूप १ से हीन यावत्तावत् ५ को रूप २ से युक्त यावत्तावत् ३ से गुणा कर और गुण्य-गुणक को धन-ऋण अथवा, व्यस्त अर्थात ऋण-धन मान कर, गुणन करने से जो अलग अलग गुणनफल हों उन्हें कहो।

(१) न्यास। गुण्य=या ५ रू १̇। गुणक=या ३ रू २। अब स्थान गुणन की रीति से—

या ५ रू १̇
या ३ रू २
―――――
याव १५ या ३̇
या १० रू २̇
―――――
गुणनफल=याव १५ या ७ रू २̇ हुआ।

(२) गुण्य या ५ रू १̇ में यावत्तावत् पांच को ऋण और ऋण रूप एक को धन मानकर स्थान गुणन की रीति से—

या ५̇ रू १
या ३ रू २
―――――
याव १५̇ या ३
या १̇० रू २
―――――
गुणनफल=याव १५̇ या ७̇ रू २ हुआ।

(३) गुणक या ३ रू २ में यावत्तावत् तीन और रूप दो को ऋण मान कर स्थान गुणन की रीति से—

या ५ रू १ं
या ३ं रू २ं

याव १५ं या ३
या १०ं रू २

गुणनफल=याव १५ं या ७ं रू २ हुआ।

(४) गुण्य या ५ रू १ं और गुणक या ३ रू २ में धन ऋण का व्यत्यास करके स्थान गुणन की रीति से—

या ५ं रू १
या ३ं रू २ं

याव १५ या ३ं
या १० रू २ं

गुणनफल=याव १५ या ७ रू २ं हुआ।

भागहारे करणसूत्रं वृत्तम्—

भाज्याच्छेदः शुध्यति प्रच्युतः सन्
स्वेषु स्वेषु स्थानकेषु क्रमेण।
यैर्यैर्वर्णैः संगुणो यैश्च रूपै-
र्भागाहारे लब्धयस्ताः स्युरत्र॥ ११॥

पूर्वगुणनफलस्य स्वगुणच्छेदस्य प्रथमपक्षस्य भागहारार्थं न्यासः।

भाज्यः। याव १५ या ७ रू २ं।
भाजकः। या ३ रू २।
भजनादाप्तो गुण्यः या ५ रू १ं

द्वितीयस्य न्यासः ।

भाज्यः । याव १५ं या ७ं रू २ ।

भाजकः । या ३ रू २ ।

भजनेन लब्धो गुणयः या ५ं रू १ ।

तृतीयस्य न्यासः ।

भाज्यः । याव १५ं या ७ं रू २ ।

भाजकः । या ३ं रू २ं ।

हरणादाप्तो गुणयः या ५ रू १ं ।

चतुर्थस्य न्यासः ।

भाज्यः । याव १५ या ७ रू २ं

भाजकः । या ३ं रू २ं

हृते लब्धो गुणयः या ५ रू १ ।

इत्यव्यक्तगुणनभजने

अथ 'भाज्याद्धरः शुध्यति–' इत्यादिना भजनफलसिद्धावपि वर्णसंज्ञावधानार्थं मन्दावबोधनार्थं च पुनः शालिन्या विशदयति–भाज्यादिति । छेदो हरः । स यैर्यैर्वर्णैर्यैर्यै रूपैश्च गुणितः सन् भाज्यात् स्वेषु स्वेषु स्थानेषु यथास्वं समानजातिषु प्रच्युतः सन् शुध्यति नावशिष्यते ता अत्र लब्धयः स्युः । ते वर्णाः तानि च रूपाणि लब्धयः स्युरित्यर्थः ॥ ११ ॥

अव्यक्त-राशि के भागहार का प्रकार—

अब 'भाज्याद्धरः शुध्यति—' इस सूत्र के अनुसार भजनफल के सिद्ध होने पर भी, वर्णसंज्ञा का परिचय स्पष्ट करते हैं——जिन-जिन वर्ण और रूपों से गुणित भाजक, भाज्य से अपने अपने स्थानों में घटाने से शुद्ध हो अर्थात् शेष न रहे, वे वर्ण और रूप यहां लब्धि अर्थात् भजनफल होते हैं।

उपपत्ति——

इसकी उपपत्ति मेरी लीलावती की टीका में स्पष्ट लिखी है।

(१) भाज्य=याव १५ या ७ रू २। भाजक=या ३ रू २ यहां भाज्य में पहले यावत्तावत् वर्ग १५ हैं, इस कारण उनमें यावत्तावत् वर्ग को ही घटाना युक्त है। भाजक में पहले यावत्तावत् ३ हैं, उनको रूप से गुणाने से 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णः' सूत्र के अनुसार वर्ण ही होता है, किंतु उन का वर्ग नहीं होता। यावत्तावत् से गुण देने में समान जातियों के घात होने से यद्यपि यावत्तावत् वर्ग होगा, तो भी अङ्कों में तीन होंगे। इसलिये शोधन करने पर भी, भाज्य में यावत्तावत् वर्ग न घट सकेगा। इस कारण, यावत्तावत् पांच से भाजक को गुणाने से, यावत्तावत्वर्ग पंद्रह होगा तो घट जायगा। अब या ५ से भाजक 'या ३ रू २̇' को गुणाने से 'याव १५ या १०' को भाज्य 'याव १५ या ७ रू २̇' में यथास्थान घटाने से शेष 'या ३̇ रू २̇' बचा। यावत्तावत् पांच से गुणित भाजक शुद्ध हुआ है, इसलिये यावत्तावत् ५ लब्धि आई। अब भाज्य शेष में यावत्तावत् तीन हैं, इस कारण भाजक को रूप से गुण देने से जो गुणनफल होगा, वह भाज्यशेष में घट सकेगा। परंतु धन रूप से गुणन करने में 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति' सूत्र के अनुसार दोनों के ऋण होने से योग होगा तो शुद्धि न होगी। इस कारण ऋणरूप के गुणाने से शुद्धि होगी। अब 'रू १̇' से भाजक 'या ३ रू २' को गुणाने से 'या ३̇ रू २̇' हुआ इस को 'यां ३̇ रू २̇' इस भाज्य शेष में घटाने से

ऋणरूप १̇ लब्धि मिली, इस प्रकार 'या ५ रू १̇' यह संपूर्ण लब्धि हुई यही पहला गुण्य था ।

(२) भाज्य=याव १५̇ या ७̇ रू २ । भाजक = या ३ रू २ । यहां पर भी उक्त रीति के अनुसार 'या ५̇ रू १' यह लब्धि मिली ।

(३) भाज्य=याव १५̇ या ७ रू २ । भाजक=या ३̇ रू २ । यहां पर भी उक्त प्रकार के अनुसार लब्धि 'या ५ रू १̇' आई ।

(४) भाज्य=याव १५ या ७ रू २̇ भाजक=या ३̇ रू २̇ । उक्त प्रकार से लब्धि मिली या ५̇ रू १ ।

अव्यक्त-राशि का गुणन भागहार समाप्त ।

वर्गोदाहरणम्—

रूपैः षड्भिर्वर्जितानां चतुर्णा-
मव्यक्तानां ब्रूहि वर्गं सखे मे ॥ ६ ॥

न्यासः या ४ रू ६̇ । जातो वर्गः याव १६ या ४८̇ रू ३६ ।

अथ यद्यपि वर्गसूत्रमन्तरा तदुदाहरणं वक्तुमनुचितं तथापि वर्गस्य समद्विघातरूपत्वाद् गुणनसूत्रेणैव तत्सिद्धेः 'अव्यक्तवर्ग-करणीगुणनासु चिन्त्यः' इति विशेषोक्तेश्च तदुचितमेवेति शालि-न्युत्तरार्धेन तदाह—रूपैरिति । स्पष्टोऽर्थः ।

अब वर्ग के समद्विघातरूप होने से गुणनसूत्र ही से उसका साधन कहते हैं—ऋणरूप छह (६̇) से घटा हुआ यावत्तावत् चार (४) का वर्ग क्या है ?

न्यास । या ४ रू ६̇ इनके वर्ग के लिये स्थान-गुणन की रीति से—

या ४ रू ६
या ४ रू ६

याव १६ या २४
या २४ रू ३६

* गुणनफल=याव १६ या ४८ रू ३६ यही वर्ग हुआ।

वर्गमूले करणसूत्रं वृत्तम्-

कृतिभ्य आदाय पदानि तेषां
द्वयोर्द्वयोश्चाभिहतिं द्विनिघ्नीम्।
शेषात्त्यजेद्रूपपदं गृहीत्वा
चेत्सन्ति रूपाणि तथैव शेषम् ॥ १२ ॥

अथ वर्गे दृष्टे कस्यायं वर्ग इति मूलाङ्कज्ञानार्थमुपायमुपजातिकयाह-कृतिभ्य इति। तेषां वर्गराशिगताव्यक्तानां मध्ये कृतिभ्यो वर्गेभ्यः पदानि मूलान्यादाय तेषां पदानां परस्परं द्वयोर्द्वयोरभिहतिं द्विनिघ्नीं शेषाद्विशोधयेत्, यदि शुद्धिर्भवेत्तदा तानि तस्य वर्गस्य पदानि भवेयुरित्यर्थादुक्तं भवति। कृत्योरित्यपि द्रष्टव्यम्। अथ यदि वर्गराशौ रूपाणि सन्ति तर्हि रूपपदं गृहीत्वा शेषं तथैव द्वयोर्द्वयोश्चाभिहतिं द्विनिघ्नीं शेषात्त्यजेदिति। रूपेषु सत्सु यदि रूपपदं न लभ्यते तदा स वर्गराशिर्नेत्यर्थादुक्तं भवति॥ १२॥

---

* यहां पर 'गुण्यस्त्वधोधो गुणखण्डतुल्यः-' इस खण्डगुणन से भी 'स्थानैः पृथग्वा गुणितः समेतः' इस स्थानगुणन में अधिक सौकर्य होता है। इस कारण प्रायः सर्वत्र स्थानगुणन की ही रीति पर गणित दिखलाया है। वर्ग भी इस रीति से तुरंत सिद्ध होता है। इस कारण—'वर्गघनप्रसिद्धावाद्याङ्कतो वा विधिरेष कार्यः' इस सूत्र के अनुसार, जो आद्याङ्कविधि से लाघव से वर्ग आदि सिद्ध किये जाते हैं, उसकी भी कुछ विशेष आवश्यकता नहीं है।

अव्यक्तराशि के वर्गमूल का प्रकार--

वर्गराशि में जितने अव्यक्त अर्थात् वर्ण हों उनका मूल लेकर उन मूलों में से, दो-दो मूलों के दूने घात को, शेष में (जिस वर्गात्मक राशि से मूल लिया गया था, उसमें) घटा दें तो वे मूल होते हैं । इसी प्रकार, यदि वर्गराशि में रूप हों तो उनका मूल ले कर उक्त क्रिया करनी, जो रूपों के होने पर उनका मूल न मिले, तो वह वर्गराशि ही नहीं है ।

उपपत्ति—

राशि का समान दो घात वर्ग होता है, यह पारिभाषिक संज्ञा है । जिसका वर्ग किया जाता है, वह राशि गुण्य और गुणक दोनों होती है । वहां एक खण्डात्मक वर्ग में, किसका यह समद्विघात है, उस समद्विघात के खोज करने से, मूल का जानना सुगम है । अब दो खण्डवाली राशि के वर्ग के लिये न्यास ।

गुण्य=या ४ रू ६

गुणक=या ४ रू ६

पहली पङ्क्ति=याव १६ या २४

दूसरी पङ्क्ति= या २४ रू ३६

गुणनफल=याव १६ या ४८ रू ३६

यहां पहली पङ्क्ति में पहले खण्ड का (या ४ का वर्ग १६) वर्ग और दोनों खण्डों का घात (या ४ रू ६ का घात था २४) है इसी प्रकार, दूसरी पङ्क्ति में, दोनों खण्डों का घात (या ४ रू ६ का घात या २४) और दूसरे खण्ड का वर्ग (रू ६ का वर्ग रू ३६) है । अर्थात् दोनों पङ्क्ति में दोनों खण्डों का घात है । अब उन दोनों खण्डों का योग करने से दूना दोनों खण्डों का घात होता है । वही द्विगुण दोनों खण्डों का घात या ४८ गुणनफल की पङ्क्ति में लिखा है । इस से स्पष्ट मालूम होता है कि, दो खण्डवाली राशि के वर्ग करने में, तीन खण्ड होते हैं । खण्डों के वर्ग और दूना खण्डों का घात=याव १६ या ४८ रू ३६ ।

तीन खण्डवाली राशि के वर्ग के लिये न्यास—

गुण्य = या ३ का ४ नी ५

गुणक = या ३ का ४ नी ५

पहली पङ्क्ति = याव ६ या·का १२ या·नी १५

दूसरी पङ्क्ति =का·या १२ काव १६ का·नी २०

तीसरी पङ्क्ति =नी·या १५ नी·का २० नीव २५

गुणनफल=याव ६ या·का २४ या·नी ३० काव १६ कानी ४० नीव २५

यहां पहली पङ्क्ति में, पहले खण्ड का वर्ग, पहले खण्ड का दूसरे का घात और पहले खण्ड का तीसरे का घात है। दूसरी पङ्क्ति में, दूसरे खण्ड का वर्ग, पहले खण्ड का दूसरे का घात और दूसरे खण्ड का तीसरे का घात है। तीसरी पङ्क्ति में, तीसरे खण्ड का वर्ग, पहले खण्ड का तीसरे का घात और दूसरे खण्ड का तीसरे का घात है। अर्थात् वर्ग करने में, हर एक खण्डों का वर्ग और दूना दोनों खण्डों का घात होता है। इसको देखने से 'कृतिभ्य आदाय—'इस सूत्र की उपपत्ति स्पष्ट ज्ञात होती है ॥ १२ ॥

पूर्वसिद्धस्य वर्गस्य मूलार्थं न्यासः। याव १६ या ४८ रू ३६। लब्धं मूलम् या ४ रू ६ इत्यव्यक्तवर्गवर्गमूले।

इत्यव्यक्तषड्विधम्।

'रूपैः षड्भिः—' इस प्रश्न के अनुसार साधित वर्ग का वर्गमूल दिखलाते हैं—

न्यास। याव १६ या ४८ रू ३६। इस वर्गराशि में यावत्तावत वर्ग सोलह और रूप छत्तीस दो वर्ग हैं, इनका मूल या ४ रू ६ मिला, इन दोनों के द्विगुण घात या ४८ को 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति'—— के अनुसार, शेष या ४८ में घटाने पर ऋणों का योग हो जाने से न घट सका, इसलिये उन दोनों में से, एक को ऋण

कल्पना किया तो द्विगुण दोनों का घात या ४८ 'संशोध्यमानमृणं धनं भवति' इस रीति से धन होने पर 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः।' के अनुसार घट गया तो या ४ रू ६ अथवा या ४̇ रू ६ मूल मिला परंतु यहां पर पूर्व मूल ही अपेक्षित है, क्योंकि इसी मूल का वर्ग किया गया था ॥

अव्यक्त राशि का वर्ग-वर्गमूल समाप्त ।

अथानेकवर्णषड्विधम् ।

तत्र संकलनव्यवकलनयोरुदाहरणम्—
यावत्तावत्कालक—
नीलकवर्णास्त्रिपञ्चसप्तधनम् ।
द्वित्र्येकमितैः क्षयगैः
सहिता रहिताः कति स्युस्तैः ॥ १० ॥

न्यासः । या ३ का ५ नी ७ । या २̇ का ३̇ नी १̇ । योगे जातम् या १ का २ नी ६ । वियोगे जातम् या ५ का ८ नी ८ ।

इत्यनेकवर्णसंकलनव्यवकलने

अब अनेकवर्णषड्विध के उदाहरण कहते हैं—अनेकवर्ण के संकलन और व्यवकलन का उदाहरण—

धन यावत्तावत् तीन, कालक पांच और नीलक सात ये ऋण यावत्तावत् दो, कालक तीन और नीलक एक से सहित और रहित क्या होंगे ।

(१) न्यास।

योज्य = या ३ का ५ नी ७ } इनका योग या १ का २ नी ६
योजक = या २̇ का ३̇ नी १̇ } हुआ।

(२) न्यास।

वियोज्य = या ३ का ५ नी ७ } इनका अन्तर उक्त प्रकार से
वियोजक = या २̇ का ३̇ नी १̇ } या ५ का ८ नी ८ हुआ।

अनेकवर्णों का संकलन व्यवकलन समाप्त।

गुणनादेरुदाहरणम्—

यावत्तावत्त्रयमृणमृणं कालकौ नीलकः स्वं
रूपेणाढ्या द्विगुणितमितैस्ते तु तैरेव निघ्नाः।
किं स्यात्तेषां गुणनजफलं गुण्यभक्तं चाकिंस्याद्
गुण्यस्याथप्रकथयकृतिंमूलमस्याःकृतेश्च ११॥

न्यासः।

गुण्यः या ३̇ का २̇ नी १ रू १
गुणकः या ६̇ का ४̇ नी २ रू २

गुणिते जातम् याव १८ काव ८ नीव २ या का भा २४। या नी भा १२̇ का नी भा ८̇ या १२̇ का ८̇ नी ४ रू २।

अस्मादेव गुणनफलाद् गुण्येनानेन या ३̇ का २̇ नी १ रू १ भक्तादाप्तो गुणकः या ६̇ का ४̇ नी २ रू २।

इत्यनेकवर्णगुणनभजने।

पूर्वगुण्यस्य वर्गार्थं न्यासः।

या ३̇ का २̇ नी १ रू १

जातो वर्गः याव ९ काव ४ नीव १ याकाभा १२ यानीभा ६̇

कानीभा ४̇ या ६̇ का ४̇ नी २ रू १।

वर्गादस्मान्मूलम् या ३̇ का २̇ नी १ रू १

इत्यनेकवर्णवर्गवर्गमूले।

इत्यनेकवर्णषड्विधम्॥

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसाद-सुतदुर्गाप्रसादोन्नीते लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिन्यनेकवर्णषड्विधं समाप्तम्।

अनेक-वर्ण के गुणन का उदाहरण--

धनरूप एक से जुड़ा हुआ ऋण यावत्तावत् तीन, ऋण कालक दो और धन नीलक एक, इनको धनरूप दो से युक्त ऋण यावत्तावत् छ, ऋण कालक चार और धन नीलक दो से गुण करो गुणन-फल कहो।

(१) न्यास।

गुण्य=या ३̇ का २̇ नी १ रू १

गुणक=या ६̇ का ४̇ नी २ रू २

याव १८ या. का १२ या. नी ६̇ या ६̇

का. या १२ काव ८ का. नी ४̇ का ४̇

नी. या ६̇ नी. का ४̇ नीव २ नी २

या ६̇ का ४̇ नी २ रू २

गुणनफल=याव १८ या·का २४ या.नी १२ं या १२ं काव ८का.
नी ८ं का ८ं नीव २ नी ४ रू २।

अनेकवर्णों के भजन का उदाहरण—

याव १८ या·का २४ या· नी १२ं या १२ं काव ८ का· नी ८ंका ८ं
नीव २ नी ४ रू २ इस में या ३ं का २ं नी १ रू १ इस का भाग
देने से क्या लब्धि मिलेगी ?

(१) यहाँ पर 'भाज्याच्छेदः शुध्यति'—इस रीति के अनुसार लब्धि लेनी चाहिये। भाज्य में प्रथम यावत्तावद्वर्ग अठारह हैं और भाजक में यावत्तावत् तीन हैं। भाजक को यावत्तावत् तीन से गुण देने से ऋण यावत्तावद्वर्ग अठारह होते हैं। इन को यदि घटा देवें तो धन हो जाने के कारण, योग होगा, अन्तर न होगा। किंतु ऋण यावत्तावत् छः से भाजक को गुण देने से शोधन होगा। इस कारण या ६ं से भाजक को गुणने से 'याव १८ या· का १२ या· नी ६ं या ६ं' इस को भाज्य में यथास्थान घटाने से 'या. का १२ या· नी ६ं या ६ं काव ८ का·नी ८ं का ८ं नीव २ नी ४ रू २' शेष रहा। लब्धि या ६ं मिली। अब भाज्य में यावत्तावत्कालक भावित है, तो ऋण कालक चार से भाजक को गुणने से 'या· का १२ काव ८ का· नी ४ं का ४ं'। इस को भाज्य में यथास्थान घटा देने से 'या. नी ६ं या ६ं का· नी ४ं का ४ं नीव २ नी ४ रू २' शेष बचा और लब्धि का ४ं मिली। फिर भाज्य में यावत्तावन्नीलक भावित है, तो नीलक २ से भाजक को गुण देने से 'या· नी ६ं का· नी ४ं नीव २ नी २' इसको भाज्य में यथास्थान घटाने से 'या ६ं का ४ं नी २ रू २' शेष रहा। लब्धि नी २ मिली। फिर भाज्य में यावत्तावत् ६ं हैं, भाजक को रूप दो से गुणने से जो गुणनफल होगा वह भाज्य से शुद्ध होगा। इस कारण रूप २ से भाजक 'या ३ं का २ं नी १ रू १' को गुणने से या ६ं का ४ं नी २ रू २' इसको भाज्य शेष 'या ६ं का ४ं नी २ रू २' में घटाने से शेष कुछ नहीं बचा और सब लब्धि या ६ं का ४ं नी २ रू २ मिली।

अनेकवर्णों का गुणन-भजन समाप्त।

अनेकवर्ण के वर्ग का उदाहरण—

रूप एक से सहित ऋण यावत्तावत् तीन, ऋण कालक दो और धन नीलक एक, इन का वर्ग क्या होगा ?

(१) वर्ग के लिये न्यास—

या ३̇ का २̇ नी १ रू १
या ३̇ का २̇ नी १ रू १

याव ९ या· का ६ या· नी ३̇ या ३̇
का· या ६ काव ४ का· नी २̇ का २̇
नी· या ३̇ नी. का २̇ नीव १ नी १
या ३̇ का २̇ नी १ रू १

वर्ग=याव ९ या· का १२ या. नी ६̇ या ६̇ काव ४ का· नी ४̇ का ४̇ नीव १ नी २ रू १ ।

अनेकवर्ण के मूल का उदाहरण—

'याव ९ या· का १२ या. नी ६̇ या ६̇ काव ४ का· नी ४̇ का ४̇ नीव १ नी २ रू १' इस वर्गात्मक संख्या का मूल क्या होगा ?

(१) यहां 'कृतिभ्य आदाय पदानि' सूत्र के अनुसार याव ९ काव ८ नीव १ और रू १ इन के मूल 'या ३ का २ नी १ रू १' मिले । इन में दो, दो का दूना घात करने से 'या. का १२ या.नी ६ या ६' हुआ, इस को वर्ग शेष में घटाना है तो 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति—' इस रीति के अनुसार यद्यपि यावत्तावत्कालकभावित के ऋण होने के कारण 'धनर्णयोरन्तरमेव योग:' इस से शुद्धि होगी, तो भी यावत्तावन्नीलकभावित और यावत्तावद् वर्ण साजात्य के कारण दूने हो जायँगे तो शुद्धि न होगी । इसलिये ऋण यावत्तावत् तीन मूल कल्पना किया क्योंकि 'स्वमूले धनर्णौ' कहा है । अब दो, दो राशि के दूना घात करने से 'या. का १२̇ या· नी ६̇ या ६̇' हुआ यहां पर यद्यपि 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति—' के अनुसार यावत्तावन्नीलकभावित और यावत्तावत् की शुद्धि होगी । तो भी यावत्तावत्कालकभावित के दूना हो जाने से शुद्धि न होगी । इसलिये यावत्तावन्नीलकभावित और यावत्तावत् के व्यत्यास के लिये

नीलक और रूप को ऋण कल्पना करना चाहिये अथवा यावत्ता-वत्कालकभावित के लिये कालक को ऋण मानना चाहिये। इस प्रकार दो पक्ष हैं, तो मूल 'या ३̇ का २̇ नी १ रू १' अथवा 'या ३ का २ नी १̇ रू १̇' यह हुआ। इन दोनों मूलों का आपस में दो, दो का दूना घात तुल्य ही होता है या· का १२ या· नी ६̇ या ६̇ का· नी ४̇ का ४̇ नी २' इसके घटाने से सर्वशुद्धि होती है। इस कारण उन दोनों का मूलत्व सिद्ध हुआ। अनेकवर्णषाड्विध समाप्त।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे।
वासनाभङ्गिसुभगं संपूर्णं वर्णषड्विधम्॥

अथ करणीषड्विधम्।

तत्र संकलनव्यवकलनयोः करणसूत्रं वृत्तद्वयम्—

(योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य
घातस्य मूलं द्विगुणं लघुं च।
योगान्तरे रूपवदेतयोः स्तो
वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च॥ १३॥
लघ्व्या हतायास्तु पदं महत्याः
सैकं निरेकं स्वहतं लघुघ्नम्।
योगान्तरे स्तः क्रमशस्तयोर्वा
पृथक्स्थितिः स्याद्यदि नास्ति मूलम् १४)

अथ करणीषड्विधं व्याख्यायते—तत्र तावदिन्द्रवज्रोपजाति-काभ्यां करणीसंकलनव्यवकलने गुणनभजनयोश्च विशेषं प्रति-पादयति—यस्य राशेर्मूलेऽपेक्षिते निरग्रं मूलं न संभवति स 'करणी'

इत्युच्यते । करण्योर्योगेऽन्तरे वा कर्तव्ये रूपवत् कृतो यः करणी-योगः सा 'महती करणी' इति कल्पयेत् । करण्योर्घातस्य मूलं द्विगुणं सा 'लघुः करणी' इति कल्पयेत् । तयोर्लघुमहत्योः कल्पितकरण्यो रूपवत्कृते ये योगान्तरे ते प्रथमकरण्योर्योगान्तरे स्तः । अथ 'अव्यक्तवर्गकरणीगुणनासु चिन्त्यः' इत्यादिना 'भाज्याद्धरः शुध्यति—' इत्यादिना च करणीगुणनभजनयोः सिद्धौ सत्यामपि तत्र विशेषमाह—'वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च' इति । एतदुक्तं भवति—करणीगुणने कर्तव्ये यदि रूपाणां गुण्यत्वं गुणकत्वं वा स्यात् करणीभजने कर्तव्ये यदि रूपाणां भाज्यत्वं भाजकत्वं वा स्यात्तर्हि रूपाणां वर्गं कृत्वा गुणनभजने कार्ये । करण्या वर्गरूपत्वादिति । वर्गस्यापि समद्विघाततया गुणनविशेषत्वादुक्तवत्सिद्धिः । 'स्थाप्योऽन्त्यवर्गो द्विगुणान्त्यनिघ्नाः—' इत्यादिना व्यक्तोक्तप्रकारेण वा करणीवर्गस्य सिद्धिः स्यात् । किंतु 'वर्गेण वर्गं गुणयेत्' इत्युक्त्वात् 'द्विगुणान्त्यनिघ्नाः' इत्यत्र चतुर्गुणान्त्यनिघ्ना इति द्रष्टव्यम् । मूलज्ञानार्थं तु सूत्रं वक्ष्यति ॥१३॥ अथ प्रकारान्तरेण योगान्तरे 'लघ्व्या हृतायाः—' इत्यादिना निरूपयति—लघ्व्या करण्या हृतायाः महत्याः करण्या यत्पदं तदेकत्र सैकमपरत्र निरेकं कार्यम् । उभयमपि वर्गितं लघुकरणीगुणितं च क्रमेण करण्योर्योगान्तरे स्तः । अत्र लघ्व्या महत्या भागे यदि भिन्नता स्यात्तर्हि मूलाभावे मूलार्थं यथासंभवमपवर्तो द्रष्टव्यः । अत्र करण्योर्मध्ये याङ्कतो लघुः सा लघुः । याङ्कतो महती सा महतीति ज्ञेयम् । अत्र लघ्व्या हृताया महत्या यदि मूलं न लभ्यते तर्हि योगान्तरे कथं कर्तव्ये इत्यत आह—'पृथक्स्थितिः स्याद्यदि नास्ति मूलम्' इति ॥ १४ ॥

करणी के जोड़ने-घटाने का प्रकार—

जिस राशि का पूरा मूल न मिले उसको 'करणी' कहते हैं ।

योज्य-योजक अथवा वियोज्य-वियोजक रूप जो करणी हों उन का योग करके उस को महती संज्ञा रख लो। फिर उन्हीं करणियों के घात को दूना करके उसकी लघु संज्ञा रखनी। इस प्रकार महती और लघु संज्ञक करणियों का रूप के समान योग और अन्तर करना। करणी के गुणन में जो रूप गुण्य और गुणक हों, भजन में भाज्य और भाजक हों, तो रूपों का वर्ग करके फिर गुणन और भजन करना चाहिए।

दूसरा प्रकार–

योज्य-योजक और वियोज्य-वियोजक रूप दो करणियों में जो अङ्क से बड़ी हो उसको 'महती' और जो छोटी हो उसे 'लघु' कहते हैं। महती में लघु का भाग देकर, फल के मूल को दो स्थानों में रखना। प्रथम स्थान में १ जोड़ दूसरे स्थान में घटाकर उन के वर्ग को लघुकरणी से गुणा देना। फिर उनका योग और अन्तर रूपराशि के समान करना। यदि महती-करणी में लघुकरणी का भाग देने से मूल न मिले, तो उन को एक पङ्क्ति में अलग-अलग लिख देना।

पहले प्रकार की उपपत्ति—

(१) योज्य और योजकरूप करणियों के मूलों का योग, जिस का मूल होगा, वह करणियों का योग है और वही मूलों के योग का वर्ग है। अन्यथा उसका मूल मूलों का योग कैसे होगा ? इसी प्रकार वियोज्य-वियोजक रूप करणियों के मूलों का अन्तर जिस का मूल होगा, वह करणियों का अन्तर है और वही मूलों के अन्तर का वर्ग है। अन्यथा उस का मूल मूलों का अन्तर न होगा। यहां जो करणी हैं वे मूलवर्ग हैं, इस कारण, प्रथम करणियों का मूल लेकर, पीछे जो योग वर्ग किया जायगा वह उनका योग होगा। इसी प्रकार करणियों के मूलों के अन्तर का वर्ग उन का अन्तर होगा। परंतु करणी का मूल नहीं मिलता, इस कारण उपाय करते हैं—यहां पर योगवर्ग और अन्तरवर्ग साधना है, वे वर्गयोग के ज्ञान से जाने जाते हैं। वह इस स्थान में करणियों के वर्गरूप होने

के कारण इन का योग ही वर्गयोग है। वर्गयोग के ज्ञान से योगवर्ग और अन्तरवर्ग जाने जाते हैं—जैसा ३ और ५ राशि के वर्गयोग ३४ में, इन्हीं का दूना घात ३० जोड़ने से योगवर्ग ६४ सिद्ध हुआ। ऐसे ही ३ और ८ राशि को वर्गयोग ७३ में, इन्हीं का दूना घात ४८ घटा देने से, अन्तरवर्ग २५ सिद्ध हुआ। इस से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि, उद्दिष्ट दो राशियों के वर्गयोग में, उन का द्विगुण घात जोड़ने से युतिवर्ग और घटाने से अन्तरवर्ग सिद्ध होता है। यह प्रकार और इसकी वासना एकवर्ण मध्यमाहरण में लिखी है। यहां मूलों का जो वर्गयोग है, वही करणियों का योग होता है। इस कारण इसमें दो करणियों का दूना मूलघात युतिवर्ग के लिये जोड़ते और अन्तरवर्ग के लिए घटाते हैं। करणियों के मूलों का घात और करणियों के घात का मूल एक ही होता है कारण कि जो वर्गों का मूलघात होता है, वही घातमूल भी होता है। वर्गक्रिया में उद्दिष्ट राशि का समान दो घात होने से वर्गघात चतुर्घात होता है, इसी प्रकार, उद्दिष्ट दो राशि को दो स्थानों में रखकर और उनका घात करने से वह चतुर्घात—वर्गघात होता है। जैसा—३ । ५ दो राशि हैं। इन के वर्गघात अथवा घातवर्ग के लिये चार राशि होंगी ३ । ३ । ५ । ५ इनका वर्ग ९ । २५ और घात १५ । १५ हुआ। अब उन वर्गों का घात २२५ और घातों का घात २२५ पहिले के चार राशियों का घात है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वर्गघात और घातवर्ग का भेद न होने से, जो घातवर्ग का मूल होता है, वही वर्गघात का मूल है। और घातवर्ग वर्गघात इन का मूल घात ही होता है। इससे 'योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य घातस्य मूलं द्विगुणं लघुं च। योगान्तरे रूपवदेतयोः स्तः—' इतना सूत्र उपपन्न हुआ।

(२) करणीषड्विध में करणियों के मूलों का षड्विध साधन करते हैं जैसा—क २ । क ८ का योग १० सिद्ध होने पर भी, मूलों के योग के लिये क १८ सिद्ध की है। वैसा ही करणियों का गुणन, ऐसा करना चाहिये जिस में उन के मूल गुणे जावें, केवल करणियों को दो आदि संख्याओं से गुण देने से, उन के मूल दो आदि

संख्याओं से नहीं गुणे जाते। इसलिये उन को दो आदि संख्याओं के वर्ग से गुणना योग्य है। जैसा–४ राशि को दूना करना है, तो इसके वर्ग १६ को दूना किया ३२ हुआ, परंतु इस का मूल दूना नहीं हुआ। इस कारण राशि के वर्ग को दो के वर्ग से गुण देने से मूल दूना हो जायगा। इसी प्रकार, भजन में भी युक्ति जाननी चाहिए इस प्रकार 'वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च' यह सूत्र शेष भी उपपन्न हुआ।

दूसरे प्रकार की उपपत्ति—

(३) यहाँ पर भी करणियों का मूलयोगवर्ग और मूलान्तरवर्ग साधना है। परंतु करणियों का मूल नहीं मिलता, इस कारण दोनों करणियों में ऐसा अपवर्तन देना चाहिये जिससे मूल मिले। परंतु वैसे मूल मिलने पर भी, उन के योगवर्ग और अन्तरवर्ग अपवर्तित आवेंगे। क्योंकि अपवर्तित करणी का मूल अपवर्तनाङ्क के मूल से अपवर्तित है। और उन के मूलों का योग भी अपवर्तनाङ्क के मूल से अपवर्तित आवेगा। योगवर्ग अपवर्तनाङ्क के मूलवर्ग से अपवर्तित है और अपवर्तनाङ्कमूलवर्ग अपवर्तन का अङ्क है। इससे यह सिद्ध होता है कि, योगवर्ग और अन्तरवर्ग को अपवर्तन के अङ्क से गुण देना चाहिये। अब जो महती करणी को अपवर्तनाङ्क कल्पना करें, तो उसका लघुकरणी में अपवर्तन न लगेगा। इस कारण लघुकरणी का अपवर्तन देने से, उसके स्थान में रूप होगा, उसका मूल रूप ही है। और महतीकरणी में अपवर्तन देने से, लब्धि का मूल लेना चाहिये, इसलिये 'लघ्व्या हृतायास्तु पदं महत्याः' यह कहा है। अपवर्तित महती-करणी का मूल रूप से भिन्न है और अपवर्तित लघु-करणी का मूल रूप अर्थात् १ है। इसलिये इनके योग और अन्तर करने में, महती करणी के मूल में एक जोड़ना और घटाना कहा है। इस कारण 'सैकं निरेकं' यह सूत्रखण्ड उपपन्न हुआ। इस प्रकार करणियों का मूलयोग और मूलान्तर सिद्ध हुआ। अब इन का वर्ग करने से योगवर्ग और अन्तरवर्ग होता है। परंतु यह अपवर्तित हैं, इस कारण, लघुकरणी रूप अपवर्तनाङ्क से इन को गुण दिया है। इससे 'स्वहतं लघुघ्नम्' यह उपपन्न हुआ।

यहाँ पर जो लघुकरणियों का अपवर्तन देना कहा है, वह उपलक्षण है । इस कारण जिस का अपवर्तन देने से, करणियों का मूल मिले, उसका अपवर्तन देकर, करणियों का मूल लेना और उनके युतिवर्ग, अन्तरवर्ग को अपवर्तन के अङ्क से गुण देना तब वह करणियों का योग और अन्तर होगा । इसी अभिप्राय से—

'आदौ करण्यावपवर्तनीये
तन्मूलयोरन्तरयोगवर्गौ ।
इष्टापवर्ताङ्कहतौ भवेतां
क्रमेण विश्लेषयुती करण्योः ॥'

इस श्लोक को किसी गणितज्ञ ने बनाया है ॥ १४ ॥

उदाहरणम्—

द्विकाष्टमित्योस्त्रिभसंख्ययोश्च
योगान्तरे ब्रूहि पृथक्करण्योः ।
त्रिसप्तमित्योश्च चिरं विचिन्त्य
चेत्षड्विधं वेत्सि सखे करण्याः ॥ १२ ॥

न्यासः । क २ क ८ योगे जातम् क १८ ।
अन्तरे च क २ ।

द्वितीयोदाहरणे—

न्यासः । क ३ क २७ योगे जातम् क ४८ ।
अन्तरे च क १२ ।

तृतीयोदाहरणे—

न्यासः । क ३ क ७ अनयोर्घाते मूलाभावा-

रपृथक्स्थितिरेव योगे जातम् क ३ क ७।
अन्तरे च क ३ क ७।

इति करणीसंकलनव्यवकलने

उदाहरण—

करणी दो, करणी आठ और करणी तीन, करणी सत्ताईस एवं करणी तीन, करणी सात, इन दो-दो करणियों के योग और अन्तर अलग-अलग क्या हैं ?

(१) क २ क ८ का योग क १० हुआ, इस की महती संज्ञा है। फिर क २ क ८ का घात १६ के मूल ४ को दूना किया तो ८ हुआ इस की लघुसंज्ञा है अब महती क १० और लघु क ८ का योग क १८ और अन्तर क २ हुआ।

(२) क ३ क २७ का योग क ३० हुआ, फिर इन के घात ८१ के मूल ९ को दूना किया तो क १८ हुआ अब महती और लघुकरणियों का योग क ४८ अन्तर क १२ हुआ।

(३) क ३ क ७ का योग क १० और इन का घात क २१ हुआ। अब करणीघात इक्कीस का मूल नहीं मिलता, इस कारण क ३ क ७ यह पृथक् स्थिति ही योग हुआ। इसी प्रकार क ३ क ७ अन्तर हुआ।

इस प्रकार, प्रथम विधि के अनुसार करणियों के योग और अन्तर का गणित दिखलाया। अब दूसरी विधि के अनुसार गणित दिखलाते हैं—

(१) क ८ में क २ का भाग देने से लब्धि ४ आई इसका मूल २ हुआ, इस में १ जोड़ा और घटाया तो क ३। क १ हुई इन का वर्ग रू ९। रू १ हुआ। बाद इनको लघु करणी से गुण दिया तो योग क १८ और अन्तर क २ हुआ।

(२) क २७ में क ३ का भाग देने से ९ लब्धि मिली इस का मूल ३ हुआ। इसमें १ जोड़ा और घटाया तो क ४, क २

हुई। इन का वर्ग रू १६, रू ४ हुआ इन को लघु करणी से गुणा दिया तो योग क ४८ और अन्तर क १२ हुआ।

(३) क ७ में क ३ का भाग देने से मूल नहीं मिलता, इस कारण अलग-अलग रख देने से क ७ क ३ योग और क ३ क ७ अन्तर हुआ।

करणी का जोड़ना-घटाना समाप्त।

गुणनोदाहरणम्—

द्वित्र्यष्टसंख्या गुणकः करण्यो-
गुण्यस्त्रिसंख्या च सपञ्चरूपा।
वधं प्रचक्ष्वाशु विपञ्चरूपे
गुणेऽथवा त्र्यर्कमिते करण्यौ ॥१३॥

न्यासः। गुणकः। क २ क ३ क ८

गुण्यः। क ३ रू ५

अत्र गुण्ये गुणके वा, भाज्ये भाजके वा, करणीनां करण्योर्वा, यथासंभवं लाघवार्थं योगं कृत्वा गुणनभजने कार्ये। तथा कृते जातः।

गुणकः। क १८ क ३

गुण्यः। क २५ क ३

गुणिते जातम् रू ३ क ४५० क ७५ क ५४।

अथ गुणने उदाहरणद्वयमुपजातिकयाह—द्वित्र्यष्टेति। अत्र

पञ्चरूपसहिता त्रिसंख्या करणी गुण्यः। गुणकस्तु द्वित्र्यष्टसंख्याः करण्यः। पञ्चरूपोने त्र्यर्कमिते करण्यौ वा। अत्र गुणकद्वयादुदाहरणद्वयं ज्ञेयम् ॥

उदाहरण—

रूप पाँच से युक्त करणी तीन को, करणी-दो, करणी-तीन, करणी-आठ से, और रूप पाँच से सहित करणी-तीन को, रूप पाँच से रहित करणी-तीन, करणी-बारह से गुणा करें तो गुणनफल अलग-अलग क्या होगा।

यहाँ पर गुण्य, गुणक और भाज्य, भाजक में लाघव के लिए जिन-जिन करणियों का उक्त रीति के अनुसार योग हो सके, उनका योग करके गुणन तथा भजन करते हैं और उदाहरण में रूप हो तो उसको करणी के स्वरूप में बदल लेते हैं।

(१) क २ क ३ क ८ इस गुणक में 'क २ क ८' का योग क १८ होता है। इस लिये क १८ क ३ गुणक हुआ। गुण्य में रूप पाँच का करणीगत रूप करने से क २५ हुआ। अब स्थान गुणन की रीति से—

गुण्य=क २५ क ३
गुणक=क १८ क ३

क ४५० क ५४
क ७५ क ९

गुणनफल=रू ३ क ४५० क ७५ क ५४

विशेषसूत्रं वृत्तम्—

क्षयो भवेच्च क्षयरूपवर्ग-
श्चेत्साध्यतेऽसौ करणीत्वहेतोः।
ऋणात्मिकायाश्च तथा करण्या
मूलं क्षयो रूपविधानहेतोः॥ १५॥

द्वितीयोदाहरणे न्यासः ।

गुणकः क २५ क ३ क १२ ।

गुण्यः क २५ क ३ ।

अत्र गुणके करण्योर्योगे कृते गुणकः क २५ क २७ गुणिते जातम् क ६२५ क ६७५ क ७५ क ८१ । एतास्वनयोः क ६२५ क ८१ मूले रू २५ रू ९ अनयोर्योगे जातम् रू १६ अनयोः क ६७५ क ७५ अन्तरे योग इति जातो योगः क ३०० यथाक्रमं न्यासः रू १६ क ३०० इति करणीगुणनम् ॥

अथोपजातिकया विशेषमाह—क्षय इति । यदि क्षयरूपाणां वर्गस्तर्हि क्षयो भवेत् असौ क्षयरूपवर्गश्चेत्करणीत्वनिमित्तं साध्यते । 'न मूलं क्षयस्यास्ति'—इत्यस्यापवादमाह—ऋणात्मिकाया इति । ऋणात्मिकायाः करण्या मूलं तर्हि क्षयो भवेच्चेन्मूलं रूपविधाननिमित्तं साध्यते इति ॥ १५ ॥

विशेष—

यदि ऋणरूप का वर्ग करणी के रूप में सिद्ध किया जाय तो वह ऋण होता है । और ऋणकरणी का मूल जो उसको रूप करना हो तो ऋण होता है । यह ' न मूलं क्षयस्यास्ति तस्याकृतित्वात्' इस सूत्र का अपवाद है ।

उपपत्ति-

यहाँ पर जो करणीगुणन के लिये रूप का वर्ग किया जाता है, वह यद्यपि धन है, तो भी उस का मूल ऋण होगा, क्योंकि 'स्वमूले धनर्णे' अर्थात् धन का मूल धन और ऋण होता है। करणी के योग से मूलों का योग-वर्ग साधा जाता है, वहाँ जो ऋणरूप वर्गकरणी को धन कल्पना कर लें तो, उस धन करणी का योग हो जायगा और उसका मूल मूलयोग होगा। परंतु वहाँ पर मूलान्तर होना उचित है, क्योंकि 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः' अर्थात् धन और ऋण राशि का अन्तर ही योग होता है। इस कारण, करणी की ऋणसंज्ञा से मूल की ऋणता को बतलाया है। जैसा, रू ३̇ रू ७ का योग ४ वर्ग १६ होता है, परंतु यह करणी को धन मानने से नहीं सिद्ध होता। जैसा—पूर्व रूपों की करणियों का योग 'योगं करण्योर्महतीं—' इस प्रकार से क १०० होता है, पर यह योगवर्ग नहीं है। इस कारण, करणी ऋण कल्पना करनी चाहिये। यहाँ करणी यह उपलक्षण है, जहाँ कहीं करणी योग के समान वर्गयोग से योगवर्ग आदि साधे जायँ वहाँ ऋणरूप वर्ग को ऋण ही मानना उचित है।

(१) उदाहरण में क २५ क ३ गुण्य और रू ५̇ क ३ क १२ गुणक है। यहाँ गुणक की क ३ क १२ करणियों का योग करने से क २७ और रूप ५̇ का वर्ग क २५̇ हुआ।

गुण्य = क २५ क ३
गुणक = क २५̇ क २७

क ६२५̇ क ७५̇
क ६७५ क ८१

गुणनफल = रू १६ क ३००

यहाँ क ६२५̇ का मूल रू २५̇ और क ८१ का मूल रू ९ का योग रू १६̇ हुआ। अब क ६७५ का ७५̇ का योग 'योगं करण्योर्महतीं—' इस प्रकार से क ७५̇० यह महती करणी हुई

और करणियों के घात ५०६२५ का मूल २२५ आया, इसको दूना करने से ४५० हुआ। फिर महतीकरणी ७५० और लघु-करणी ४५० का अन्तर करने से क ३०० यह योग हुआ।

करणी-गुणन समाप्त।

पूर्वगुणनफलस्य स्वगुणच्छेदस्य भागहारार्थं न्यासः। भाज्यः क ९ क ४५० क ७५ क ५४। भाजकः क २ क ३ क ८। अत्र 'क २ क ८' एतयोः करण्योर्योगे कृते जातम् क १८ क ३। 'भाज्याच्छेदः शुध्यति प्रच्युतः सन्' इत्यादिकरणेन लब्धो गुणयः रू ५ क ३।

भागहार—

(१) भाज्य क ९ क ४५० क ७५ क ५४ और भाजक क २ क ३ क ८ है। यहाँ भाजक के क २, क ८ इन करणियों का योग करने से क १८, क ३ भाजक हुआ।

भाजक।	भाज्य।	लब्धि।
क १८ क ३)	क ९ क ४५० क ७५ क ५४	(रू ५ क ३
	क ४५० क ७५	
	क ९ क ५४	
	क ९ क ५४	
	....	

यहाँ 'भाज्याच्छेदः शुध्यति—' इस रीति से क २५ क ३ अर्थात् रू ५ क ३ लब्धि मिली।

द्वितीयोदाहरणे–

न्यासः । भाज्यः क २५६ क ३०० । भाजकः क २५ क ३ क १२ करण्योर्योगे कृते जातम् क २५ क २७ । [* अत्रादौ त्रिभिर्गुणयित्वा धनकरण्योः ऋणकरण्योश्च योगं विधाय पश्चात्पञ्चविंशत्या गुणयित्वा शोधिते लब्धम् रू ५ क ३] अत्रापि पूर्ववल्लब्धो गुणयः रू ५ क ३ ॥

(२) भाज्य क २५६ क ३०० । भाजक क २५ क ३ क १२ है । भाजक की क ३ क १२ का योग करने से क २७ हुई तो क २५ क २७ भाजक हुआ ।

भाजक । भाज्य । लब्धि ।

क २५ क २७) क २५६ क ३०० (रू ५ क ३
क ७५ क ८१
―――――――
क ६७५ क ६२५
क ६७५ क ६२५
―――――――

यहाँ पर क २५ और क ३ के समान लब्धि अपेक्षित है, इसलिये पहले तीन से गुणित भाजक को भाज्य में घटा देने से क ७५ क ८१ शेष रहीं । क्योंकि, यहाँ धन और ऋण भाजकों का अन्तर नहीं होता । फिर क २५६ क ८१ इन करणियों के मूल-योग का वर्ग करने से क ६२५ हुआ और क ३०० क ७५ का योग उक्त प्रकार से क ६७५ हुआ । इन का क्रम से न्यास 'क ६७५ क ६२५' यह भाज्य शेष रहा, इस में क २५ क २७ का भाग देने से क २५ लब्धि मिली ॥

―――――

* कुत्रचित्पाठोऽयं नोपलभ्यते ।

अथान्यथोच्यते—

धनर्णताव्यत्ययमीप्सिताया-
श्छेदे करण्या असकृद्विधाय ।
तादृक्छिदा भाज्यहरौ निहन्या-
देकैव यावत्करणी हरे स्यात् ॥ १६ ॥
भाज्यास्तया भाज्यगताः करण्यो
लब्धाः करण्यो यदि योगजाः स्युः ।
विश्लेषसूत्रेण पृथक्च कार्या-
स्तथा यथा प्रष्टुरभीप्सिताः स्युः॥१७॥

तथा च विश्लेषसूत्रं वृत्तम्—

'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्ये-
त्खण्डानि तत्कृतिपदस्य यथेप्सितानि।'
कृत्वा तदीयकृतयः खलु पूर्वलब्ध्या
क्षुण्णाः भवन्ति पृथगेवमिमाः करण्यः १८

अत्र द्वितीयोदाहरणे (भाज्यः क २५६ क ३०० । भाजकः क २५ क २७) कियद्गुणो भाजको भाज्याच्छुध्यतीति दुरवबोधमतः परमकरुणाशालिन आचार्याः शिष्यबोधार्थमुपायान्तरमुपजातिकाद्वयेन निरूपयन्ति—धनर्णतेति । छेदे ईप्सिताया एकस्याः करण्या धनर्णताविपर्यासं कृत्वा तादृशेन छेदेन यथास्थितौ भाज्यहरौ गुणयेत् । एवं कृते करणीनां यथोक्त्या योगे च कृते भाज्यभाजकौ स्तः। अथास्मिन्नपि भाजके यदि द्व्यादीनि

करणीखण्डानि स्युस्तदात्रापि एकस्याः करण्या धनर्णताविपर्यासं कृत्वा तादृशभाजकेन पूर्वगुणनसंपन्नौ भाज्यभाजकौ गुणयेत् । तत्रापि यथासंभवं करणीयोगे कृते तौ भाज्यभाजकौ स्तः एवमसकृत तावद्विधेयं यावद् भाजके एकैव करणी भवेत् । अथ संपन्नया भाजककरण्या भाज्यकरण्यो रूपवदेव भाज्याः, यल्लभ्यते ता लब्धिकरण्यो भवन्ति । अथ यदि लब्धाः करण्यो योगजाः स्युर्न पुनः प्रष्टुरभीप्सितास्तदा वक्ष्यमाणविश्लेषसूत्रेण तथा पृथक्कार्या यथाभीप्सिताः स्युः ॥१६-१७॥

अथ पृथक्करणसूत्रम् वसन्ततिलकया निरूपयति—वर्गेणेति । योगकरणी येन वर्गेण विहृता सती विशुध्येत्तत्कृतिपदस्य यथेप्सितानि खण्डानि कृत्वा तदीयकृतयः पूर्वलब्ध्या चुण्णाः । पृथक्करण्यो भवन्ति । सा चासौ कृतिश्चेति कर्मधारयो द्रष्टव्यः । एतदुक्तं भवति—योगकरणी येन वर्गेण विहृता सती निःशेषा भवेत्तस्य वर्गस्य मूलं ग्राह्यम्, तस्य खण्डानि प्रष्टुर्यावन्त्यभीष्टानि तावन्ति कृत्वा तेषां खण्डानां वर्गाः कर्तव्याः । ते वर्गाः पूर्वलब्ध्या चुण्णाः वर्गेण हृतायां योगकरण्यां या लब्धिः सा पूर्वलब्धिः । तया गुणितास्ते वर्गाः पृथक्करण्यो भवन्ति ॥ १८ ॥

दूसरे उदाहरण में कितने से गुणित (गुण) भाजक भाज्य में घट सकेगा, यह जानना कठिन है, इसलिये दूसरा प्रकार कहते हैं— छेद (भाजक) में किसी एक करणी के धन और ऋण चिह्न को बदल कर उस छेद से भाज्य और भाजक को गुण देना । यह क्रिया बार-बार तब तक करना जब तक छेद में एक ही करणी न हो जाय । फिर उस करणी का भाज्यगत करणियों में भाग देने से जो लब्धि मिले, वह इष्ट करणी होगी । यदि योगज करणी लब्ध आवें, तो उन को प्रश्नकर्त्ता की इच्छानुसार विश्लेष-सूत्र से अलग कर देना ।

विश्लेषसूत्र अर्थात् करणियों के अलगाने का प्रकार—

जिस वर्गसंख्या के भाग देने से योगकरणी निःशेष हो, उसका

मूल लेकर प्रश्नकर्त्ता को जितने खण्ड अपेक्षित हों, उतने उस मूल संख्या के खण्ड करना । फिर उन खण्डों के वर्ग को, योगकरणी में वर्गसंख्या का भाग देने से जो लब्धि मिली थी, उससे गुणने पर योगकरणी के खण्ड अलग-अलग हो जायँगे ।

उपपत्ति—

भाज्य और भाजक में किसी एक इष्ट अङ्क का अपवर्तन देने से अथवा उन को इष्ट से गुण देने से भजनफल में विकार नहीं होता, यह बात सुप्रसिद्ध है । यहाँ भाजक के तुल्य इष्टाङ्क से भाजक को गुण देने से भाजक के खण्डों का वर्ग होता है और पहले भाजक के खण्डों में, धन-ऋण का विपर्यास भी किया है । इस कारण वैसे भाजक से गुणने से भाजक के खण्डों में, धन और ऋण की समता हो जाती है, तो खण्डों के उड़ जाने से उन का अन्तर शून्य होता है, और भाजक में एक ही करणी खण्ड बचता है । उससे भाग देने में क्रिया का लाघव होता है । यहाँ जो भाजक में अनेक खण्ड हों, तो उनका एक बार नाश नहीं होता । इस कारण बार-बार क्रिया करने को कहा है । इस से 'धनर्णताव्यत्ययमीप्सितायाः—' यह प्रकार उपपन्न हुआ ।

विश्लेष-सूत्र की उपपत्ति—

दो वा अनेक करणियों में किसी का अपवर्त्तन देकर, उन के मूलों के योगवर्ग को अपवर्त्तन के अङ्क से गुण देने से वह योगकरणी होगी । क्योंकि प्रत्येक योगकरणी मूलयोगवर्ग और अपवर्तिनाङ्क का घात होती है, इसलिये वह वर्गाङ्क के भाग देने से निःशेष होगी । लब्धि अपवर्तनाङ्क है, एवं जिस के वर्ग का भाग देने से करणी निःशेष होती है, वह मूलयोग वर्ग है और उस का मूल मूलों का योग है । योग के खण्ड अपवर्तित करणियों के मूल हैं । उनके वर्ग अपवर्तित करणी होते हैं, इसलिये उन को अपवर्तन के अङ्क से गुण देने से, यथास्थित करणी हो जाती है । इस से 'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्येत्—' यह सूत्र उपपन्न हुआ ॥

न्यासः। भाज्यः क ९ क ४५० क ७५ क ५४।

भाजकः क १८ क ३ ।

अत्र भाजके त्रिमितकरण्याः ऋणत्वं प्रकल्प्य क १८ क ३̇ अनेन भाज्ये गुणिते योगे च कृते जातम् क ५६२५ क ६७५ । भाजके च क २२५ अनया हृते भाज्ये लब्धम् क २५ क ३ ।

जैसा (१) उदाहरण में भाज्य क ६ क ४५० क ७५ क ५४ और भाजक क १८ क ३ है । यहाँ क ३ को ऋण माना तो क १८ क ३̇ भाजक हुआ । अब इस भाजक से भाज्य को गुण दिया—

गुण्य = क ६ क ४५० क ७५ क ५४
गुणक = क १८ क ३̇

क १६२ क ८१०० क १३५० क ९७२
क २७̇ क १३̇५० क २२५̇ क १६̇२

गुणनफल = क ५६२५ क ६७५

यहाँ धन और ऋण करणियों का योग करने से क ८१०० क २२५̇ क ९७२ क २७̇ ये करणिया शेष रहीं । इन में पहली, दूसरी और तीसरी, चौथी करणी का योग करने से भाज्य में 'क ५६२५ क ६७५ हुई ।' इसी भाँति भाजक की करणियों को भी गुण दिया—

गुण्य = क १८ क ३
गुणक = क १८ क ३̇

क ३२४ क ५४
क ५̇४ क ९̇

गुणनफल = क २२५

यहाँ भी करणियों का योग करने से क २२५ शेष रही, यह छेद है, इस का भाज्य में भाग देना है—

भाजक ।	भाज्य ।	लब्धि ।
क २२५)	क ५६२५ क ६७५ (	रू ५ क ३
	क ५६२५	
	क ६७५	
	क ६७५	
	...	

द्वितीयोदाहरणे न्यासः ।
भाज्यः क २५६ क ३००
भाजकः क २५ क २७

अत्र भाजके पञ्चविंशतिकरण्या धनत्वं प्रकल्प्य क २५ क २७ भाज्ये गुणिते धनर्णकरणीनामन्तरे च कृते जातम् क ३०० क १२ । भाजके च क ४ । अनया भाज्ये हृते लब्धम् क २५ क ३ ॥

इदानीं पूर्वोदाहरणे गुण्ये भाजके च कृते न्यासः ।

भाज्यः क ९ क ४५० क ७५ क ५४

भाजकः क २५ क ३

अत्रापि त्रिकरण्याः ऋणत्वं प्रकल्प्य भाज्ये गुणिते युते च जातम् क ८७१२ क १४५२ । भाजके च क ४८४ । अनया

हृते भाज्ये लब्धो गुणकः क १८ क ३। पूर्वं गुणके खण्डत्रयमासीदिति योगकरणीयम् क १८ विश्लेष्या। तत्र 'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्येत्–' इति नवात्मकवर्गेण ९ विहृता सती शुध्यतीति लब्धम् २। नवानां ९ मूलम् ३। अस्य खण्डे १।२। अनयोः कृती १।४। पूर्वलब्ध्या गुणिते २।८ एवं जातो गुणकः क २ क ३ क ८।

इति करणीभजनम्।

(२) उदाहरण में भाज्य क २५̇६ क ३०० और भाजक क २̇५ क २७ है। भाजक क २५ को धन मान कर भाज्य को गुण दिया—

गुण्य=क २५̇६ क ३००
गुणक=क २५　क २७
　　क ६४̇०० क ७५००
　　क ६९१२̇ क ८१००

गुणनफल=क १०० क १२　यह हुआ।

यहाँ क ६४̇०० क ८१०० इन के मूल ८̇०, ९० का अन्तर १० हुआ। इस का वर्ग क १०० हुआ। क ७५०० क ६९१२̇ का मूल नहीं मिलता, इसलिये तीन का अपवर्तन देने से क २५०० क २३०̇४ के मूल क्रम से ५० और ४८̇ आये, इन का अन्तर २ हुआ, इस के वर्ग ४ को अपवर्तन के अङ्क से गुणने से क १२ हुई। इस प्रकार भाज्य में क १०० और क १२ हुई। इसी भाँति भाजक को भी गुण दिया—

गुण्य=क २५ क २७
गुणक=क २ं५ क २७

क६२ं५क६७५ं
क६७५ क७२९

गुणनफल=क४

करणियों का योग करने से क ४ छेद हुआ, इस का भाज्य में भाग दिया—

भाजक ।	भाज्य ।	लब्धि ।
क ४)	क १०० क १२ (	रू ५ क ३

क १००
क १२
क १२

(१) उदाहरण में गुण्य को भाजक मानने से क ९ क ४५० क ७५ क ५४ भाज्य और क २५ क ३ भाजक हुआ, यहाँ भी क ३ को ऋण मान कर, भाज्य को भाजक से गुण दिया—

गुण्य=क ९ क ४५० क ७५ क ५४
गुणक=क २५ क ३ं

क २२५ क ११२५० क १८७५ क १३५०
क २७ं क १३५ं० क २२५ं क १६२ं

गुणनफल=क ८७१२ क १४५२

यहाँ तुल्य धन और ऋण करणियों के नाश होने से क ११२५० क १८७५ क २७ं क १६२ं अवशिष्ट करणी रहीं । इनमें दूसरी, तीसरी और पहली, चौथी का योग करने से क १४५२ क ८७१२ भाज्य हुआ । इसी प्रकार भाजक की करणियों को गुण दिया—

गुण्य=क २५ क ३
गुणक=क २५ क ३ं

क ६२५क७५
क ७५ं क ९ं

गुणनफल=क ४८४

करणियों का योग करने से क ४८४ यह भाजक हुआ, इस का भाज्य में भाग दिया—

भाजक। भाज्य। लब्धि।

क ४८४) क ८७१२ क १४५२ (क १८ क ३
क ८७१२
क १४५२
क १४५२
. . .

यहाँ जो लब्धि आई है वह (१) उदाहरण में गुणकरूप थी और इस के तीन खण्ड थे, इसलिये १८ योगकरणी है। इस में नौ का भाग देने से २ लब्धि आई। नौ का मूल ३ हुआ। इस के दो खण्ड किये १ । २ इनके वर्ग १ । ४ हुए। अब इन को पूर्व-लब्धि २ से गुणने से २ । ८ हुए, यही योगजकरणी १८ के खण्ड थे। यथाक्रम न्यास करने से क २ क ३ क ८ गुणक हुआ॥

करणी का भागहार समाप्त।

करणीवर्गादेरुदाहरणम्–

द्विकत्रिपञ्चप्रमिताः करण्य-
स्तासां कृतिं त्रिद्विकसंख्ययोश्च।
षट्पञ्चकत्रिद्विकसंमितानां
पृथक् पृथङ् मे कथयाशु विद्वन्॥१४॥
अष्टादशाष्टद्विकसंमितानां
कृतीकृतानां च सखे पदानि॥

न्यासः । प्रथमः क २ क ३ क ५ ।
द्वितीयः क ३ क २ ।
तृतीयः क ६ क ५ क ३ क २ ।
चतुर्थः क १८ क ८ क २ ।

'स्थाप्योन्त्यवर्गश्चतुर्गुणान्त्यनिघ्नाः–' इत्यनेन 'गुण्यः पृथग्गुणकखण्डसमः–' इत्यनेन वा जाताः क्रमेण वर्गाः
प्रथमः रू १० क २४ क ४० क ६० ।
द्वितीयः रू ५ क २४ ।
तृतीयः रू १६ क १२० क ७२ क ६० क ४८ क ४० क २४ ।

अत्रापि करणीनां यथासंभवं योगं कृत्वा वर्गवर्गमूले कार्ये । तद्यथा–क १८ क ८ क २ आसां योगः क ७२ । अस्या वर्गः क ५१८४ अस्या मूलम् रू ७२ ।

इति करणीवर्गः ।

करणी के वर्ग आदि का उदाहरण–

क २ क ३ क ५, क ३ क २, क ६ क ५ क ३ क २ और क१८क८क२ इन का अलग अलग वर्ग और वर्गमूल क्या होगा ?

यहाँ 'स्थाप्योऽन्त्यवर्गः–' इस प्रकार से अथवा, अन्य प्रकारों से वर्ग करना व्यक्तगणित में राशि को दूना करके आगे के अङ्कों

को गुणाते हैं। परंतु यहाँ करणी को चौगुना करके आगे के अङ्कों को गुणाना चाहिए। यही विशेष है।

(१) क २ क ३ क ५

क ४ क २४ क ४०
क ९ क ६०
क २५

रू १० क २४ क ४० क ६० यह वर्ग हुआ। यहाँ सर्वत्र जिन करणी राशियों का मूल मिलता है, उन के मूलों का योग करके लिखते हैं। जैसा, इस उदाहरण में क ४ क ९ क २५ के क्रम से २, ३, ५ मूल मिलते हैं। इनका योग १० हुआ इसको 'रू १०' ऐसा लिखते हैं।

(२) क ३ क २

क ९ क २४
क ४

रू ५ क २४ यह वर्ग हुआ।

(३) क ६ क ५ क २ क ३

क ३६ क १२० क ४८ क ७२
क २५ क ४० क ६०
क ४ क २४
क ९

रू १९ क १२० क ७२ क ६० क ४८ क ४० क २४ वर्ग हुआ। यहाँ पर भी उक्त प्रकार से करणियों का योग करके, वर्ग और वर्गमूल साधते हैं जैसा—'क १८ क ८ क २' इन करणियों

का वर्ग करना है, तो पहले योग क ७२ हुआ। अब इसका वर्ग किया—

(४) क ७२

क ५१८४

रू ७२

क ५१८४ वर्ग और रू ७२ उस वर्ग का मूल हुआ।

वर्ग समाप्त।

करणीमूले सूत्रद्वयम्—

वर्गे करण्या यदि वा करण्यो-
स्तुल्यानि रूपाण्यथ वा बहूनाम्।
विशोधयेद्रूपकृतेः पदेन
शेषस्य रूपाणि युतोनितानि ॥ १९ ॥
पृथक्तदर्धे करणीद्वयं स्या-
न्मूलेऽथ बह्वी करणी तयोर्या।
रूपाणि तान्येवमतोऽपि भूयः
शेषाः करण्यो यदि सन्ति वर्गे ॥२०॥

अथ वर्गे दृष्टे कस्यायं वर्ग इति मूलज्ञानार्थमुपजातिकाद्वयेनाह— वर्ग इति। वर्गे करण्यास्तुल्यानि, करण्योर्वा तुल्यानि, बहूनां करणीनां वा तुल्यानि रूपाणि रूपकृतेर्विशोधयेत्। अत्र रूपग्रहणं योगवियोगयोः 'योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य—' इत्यादिप्रकारस्य व्यावृत्त्यर्थम्। शेषस्य पदेन रूपाणि पृथग्युतोनितानि कृत्वा तदर्धे कार्ये, मूले तत्करणीद्वयं भवति। यदि पुनर्वर्गे शेषाः करण्यः

सन्ति तर्हि तयोर्मूलकरण्योर्मध्ये अल्पा मूलकरणी, या महती तानि रूपाणि प्रकल्प्य अतो रूपेभ्यो भूयोऽप्येवम् । करणीतुल्यानि रूपाणि रूपकृतेर्विशोधयेदित्यादिना पुनरपि मूलकरणीद्वयं स्यात् । पुनरपि यदि शेषाः करण्यो भवेयुस्तदैवमेव पुनः कुर्यात् । अत्र महती रूपाणीत्युपलक्षणम्, क्वचिन्महती मूलकरणी अल्पा तु रूपाणीति द्रष्टव्यम् । वक्ष्यति चाचार्यः 'चत्वारिंशदशीतिः–' इत्युदाहरणावसरे ॥ १९–२० ॥

करणी के मूल का प्रकार—

रूपवर्ग में उद्दिष्टवर्ग के एक वा, दो वा, अनेक करणीखण्डों को यथा संभव घटा और शेष का वर्गमूल लेकर उसको रूप में जोड़ और घटा देना फिर उन का आधा करने से मूल में दो करणी होंगी। जो उद्दिष्ट वर्ग में करणी अवशिष्ट रहें तो उन दो करणियों में से बड़ी करणी को रूप मान कर उक्त क्रिया करनी । यहाँ रूपवर्ग में करणीखण्डों को घटाना कहा है, वह छोटे करणीखण्डों से घटाना आरम्भ करना चाहिये । क्योंकि यदि ऐसा न किया जाय, तो बड़ी रूप और छोटी मूलकरणी यह नियम न रहेगा । कहीं छोटी करणी रूप और बड़ी मूलकरणी होती है ।

उपपत्ति—

यहाँ करणीवर्ग 'स्थाप्योऽन्त्यवर्गश्चतुर्गुणान्त्यनिघ्नाः–' इस प्रकार से करते हैं। इस में प्रथम स्थान में प्रथम करणीवर्ग और प्रथम, द्वितीय आदि करणियों का चतुर्गुण-घात होता है । फिर द्वितीय करणीवर्ग और द्वितीय तृतीय आदि करणियों का चतुर्गुण-घात होता है । ऐसे ही आगे भी जानना । यहाँ जितने करणीखण्ड होते हैं, उनके अवश्य वर्ग होते हैं, वर्गत्व होने से उन के मूल मिलते हैं और वे मूलकरणी के समान होते हैं । वर्गराशि में जो रूपों का समूह होता है, वह मूलकरणियों का योग है । परंतु वह योग रूप की रीति से है, करणी की रीति से नहीं है । यदि करणीरीति से होता तो 'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्येत्– ' इस प्रकार से

अलग करना सुलभ था। परंतु प्रकृत में रूपरीति से करणियों का योग है इसलिये 'चतुर्गुणस्य घातस्य युतिवर्गस्य चान्तरम्। राश्यन्तरकृतेस्तुल्यं–' इस प्रकार से अलग करना चाहिये। यह प्रकार एकवर्णमध्यमाहरण में लिखा है। यहाँ रूप, करणीयोग और रूपवर्ग करणी योगवर्ग है, वर्गराशि में जितने करणीखण्ड हैं वे पहली, दूसरी आदि करणियों के चतुर्गुण घात हैं। उनका योग पहली करणी और शेष, करणी-योग का चतुर्गुण-घात है। पहली करणी और शेष करणियों का योग योगवर्ग है, इसलिये उन दोनों का अन्तर करने से पहली करणी और शेष करणियों के योग का अन्तरवर्ग सिद्ध होता है। इसलिये 'वर्गे करण्या यदि वा करण्योस्तुल्यानि रूपाण्यथ वा बहूनाम्। विशोधयेद्रूपकृतेः–' यह कहा है। इस प्रकार, अन्तर वर्ग का ज्ञान हुआ। इसका मूल पहली करणी और शेष करणियों के योग का अन्तर होता है। और रूप उन्हीं का योग है, तो योग और अन्तर ज्ञात होने से 'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितः–' इस संक्रमणसूत्र से उन राशियों का जानना सुलभ है। इसलिये 'पदेन, शेषस्य रूपाणि युतोनितानि, पृथक्तदर्धे करणीद्वयं स्यात्–' यह कहा है। इस प्रकार, पहली करणी और शेष करणी-योग हुआ। मूल में दो करणी आई, उन में से किस को पहली करणी मानें और किस को शेष करणियों का योग? करणीयोग में महत्त्व होना और एक करणी में अल्पत्व होना उचित है। इस कारण पहली लघुकरणी और शेष करणियों का योग महती अर्थात् बड़ी करणी कल्पना की जाती है इससे 'मूलेऽथ वृद्धी करणी तयोर्या–' इत्यादि सूत्र उपपन्न हुआ।

प्रथमवर्गस्य मूलार्थं न्यासः।

रू १० क २४ क ४० क ६०।

रूपकृतेः १०० चतुर्विंशतिचत्वारिंशत्करण्योस्तुल्यानि रूपाण्यपास्य शेषम् ३६ अस्य

मूलम् ६ अनेनोनाधिकरूपाणामर्धे जाते २।८ अत्रापीयं २ मूलकरणी द्वितीयां रूपाण्येव प्रकल्प्य पुनः शेषकरणीभिः स एव विधिः कार्यः। तत्रेयं रूपकृतिः ६४ अस्याः षष्टि-रूपाण्यपास्य शेषम् ४ अस्य मूलम् २ अने-नोनाधिकरूपाणामर्धे ३।५ जाते मूलकरण्यौ क ३ क ५ मूलकरणीनां यथाक्रमं न्यासः क २ क ३ क ५

द्वितीयवर्गस्य न्यासः।

रू ५ क २४।

रूपकृतेः २५ करणीतुल्यानि रूपाणि २४ अपास्य शेषम् १ अस्य मूलेनोनाधिकरूपा-णामर्धे जाते मूलकरण्यौ क २ क ३।

तृतीयवर्गस्य न्यासः।

रू १६ क १२० क ७२ क ६० क ४८ क ४० क २४।

रूपकृतेः २५६ करणीत्रितयस्यास्य 'क ४८ क ४० क २४' तुल्यानि रूपाण्यपा-स्योक्तवज्जाते खण्डे २।१४। महती रूपा-णीत्यस्याः १४ कृतिः १९६ अस्याः करणी-

द्वयस्यास्य 'क ७२ क १२०' तुल्यानि रूपाण्यपास्योक्तवज्जाते खण्डे ६ । ८ । पुना रूपकृतेः ६४ षष्टिरूपाण्यपास्योक्तवत्खण्डे ३ । ५ एवं मूलकरणीनां यथाक्रमं न्यासः क ६ क ५ क ३ क २ ।

चतुर्थवर्गस्य न्यासः ।

रू ७२ क० ।

इयमेव लब्धा मूलकरणी ७२ । पूर्वं खण्डत्रयमासीदिति 'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्येत्–' इति षट्त्रिंशता विहृता शुध्यतीति षट्त्रिंशतो मूलम् ६ । एतस्य खण्डानां १ । २ । ३ । कृतयः १ । ४ । पूर्वलब्ध्यानया २ क्षुण्णाः २ । ८ । १८ एवं पृथक्करण्यो जाताः क २ क ८ क १८ ।

अब पूर्व सिद्ध वर्गों का मूल साधन करते हैं—

(१) 'रू १० क २४ क ४० क ६०' यहाँ रूप १० का वर्ग १०० हुआ । इस में एक करणी के तुल्य रूप घटाने से मूल नहीं मिलता और तीन करणी के तुल्य रूप घट नहीं सकता, इस कारण दो, दो करणियों के तुल्य रूप 'क २४ क ४०' अथवा 'क २४ क ६०' अथवा 'क ४० क ६०' घटता है । अब यहाँ क २४ और क ४० को घटा कर मूल लाते हैं—रूप १० के वर्ग १०० में 'क २४ क ४०' के तुल्य रूप घटाने से शेष ३६

का मूल ६ हुआ इस को रूप में जोड़ने और घटाने से १६ और ४ का आधा ८ । २ हुआ, इस प्रकार मूल में दो करणी हुई । अब वर्ग में एक करणी और बाकी रही, इस कारण बड़ी मूलकरणी ८ को रूप मानकर उस के वर्ग ६४ में शेष क ६० के तुल्य रूप घटाने से मूल २ मिला, इसको रूप ८ में जोड़ने-घटाने से १० और ६ का आधा ५ और ३ हुआ, इस भाँति मूलकरणी सिद्ध हुई क २ क ३ क ५ । इसी प्रकार से 'क २४ क ६०' अथवा 'क ४० क ६०' को पहले घटाने से पहलेवाले करणीखण्ड मिलते हैं—

(२) 'रू ५ क २४' उदाहरण में रूप ५ वर्ग २५ में क २४ के तुल्य रूप घटाने से १ शेष रहा, इसके मूल १ को रूप में जोड़ने-घटाने से ६ और ४ का आधा ३ और २ हुआ इस प्रकार क २ क ३ मूलकरणी होती हैं ।

(३) 'रू १६ क १२० क ७२ क ६० क ४८ क ४० क २४' इस उदाहरण में रूप १६ के वर्ग २५६ में क १२० क ७२ और क ४८ के समान रूप घटाने से १६ शेष रहा, इस का मूल ४ हुआ इस को रूप में जोड़ने और घटाने से २० । १२ का आधा १० । ६ हुआ । इन में छोटी को मूलकरणी और बड़ी को रूप कल्पना करने से रूप १० का वर्ग १०० हुआ, इस में क ६० और २४ के तुल्य रूप घटाने से शेष १६ का मूल ४ हुआ, इस को रूप १० में जोड़ने और घटाने से १४ और ६ का आधा ७ और ३ हुआ, फिर ३ को मूलकरणी और ७ को रूप कल्पना करने से रूप ७ के वर्ग ४९ में क ४० के समान रूप घटाने से मूल ३ मिला, इस को रूप ७ में जोड़ने-घटाने से १० और ४ का आधा ५ । २ हुआ । इस प्रकार मूलकरणी क ६ क ३ क ५ क २ सिद्ध हुई ।

(४) 'रू ७२ क ०' उदाहरण में रूप ७२ के वर्ग ५१८४ में करणी शून्य के तुल्य रूप घटा देने से ७२ मूल मिला इस को रूप ७२ में जोड़ने और घटाने से १४४ और ० हुए इन का आधा ७२ और ० हुआ। इस प्रकार, यहाँ मूलकरणी ७२ सिद्ध हुई। यह योगकरणी

है, इसके पहले तीन खण्ड थे इसलिये 'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्येत्—' इस विश्लेष सूत्र से उसके खण्डों को अलग करना चाहिये तो क ७२ में ३६ का भाग देने से २ लब्धि मिली और भाजक ३६ का मूल ६ मिला, इसके ३ । २ । १ खण्ड किये और इनके वर्गों को पूर्व जो २ लब्धि मिली थी उससे गुण देने से क १८ क ८ क २ यह पूर्व करणीखण्ड हुए ।

अथ वर्गगतऋणकरण्या मूलानयनार्थं सूत्रं वृत्तम्—

> ऋणात्मिका चेत्करणी कृतौ स्या-
> द्धनात्मिकां तां परिकल्प्य साध्ये ।
> मूले करण्यावनयोरभीष्टा
> क्षयात्मिकैका सुधियावगम्या ॥ २१ ॥

अथ यत्र वर्गराशावृणकरणी भवति तत्र मूलग्रहणे विशेषमुपजातिकयाह—ऋणात्मिकेति । यदि वर्गे करणी ऋणात्मिका स्यात्तर्हि तां धनात्मिकां परिकल्प्य मूले करण्यौ साध्ये । अनयोर्मूलकरण्योर्मध्येऽभीष्टा एका करणी सुधिया क्षयात्मिका ज्ञेया । अत्र 'सुधिया' इति हेतुगर्भमुक्तम् । तेन वर्गे यद्येकैव क्षयकरिणी भवति तदैव एकस्या मूलकरण्याः क्षयत्वम् । यदि द्व्यादयो भवन्ति तदैकस्या द्वयोर्बहूनां वा मूलकरणीनां युक्त्या यथा संभवति तथा क्षयत्वं कल्प्यम् । यत्र वर्गे सर्वा अपि धनकरण्यस्तत्रापि सर्वासामपि मूलकरणीनां पक्षे क्षयत्वमवगन्तव्यम् ॥ २१ ॥

वर्गगत ऋणकरणी के मूल का प्रकार—

यदि वर्ग में कोई ऋणकरणी हो तो उसको धन मान कर 'वर्गे करण्या यदि वा करण्योः—' इस सूत्र की रीति से दो मूलकरणी सिद्ध करना और उन दो करणियों में से एक करणी को ऋण मान

लेना । जो उद्दिष्ट वर्ग में कई एक करणी ऋणागत हों तो, मूल-करणियों में से जिस करणी का ऋण होना संभव हो, उसको ऋण कल्पना करना और जो वर्ग में सब करणियाँ धन हों तो एक पक्ष में मूलकरणियों को ऋणात्मक भी जानना चाहिए ।

उपपत्ति—

ऋण और धन करणियों का वर्ग एक ही होता है । परंतु ऋण-करणी के वर्ग में करणी ऋण और धन करणी के वर्ग में करणी धन होती है, इस दशा में वर्ग में करणी ऋणात्मक अथवा धनात्मक हो, पर मूल तो अङ्कों में समान ही उचित है । उक्त विधि से रूप के वर्ग में ऋणकरणी घटा देने से धन हो जाती है । इस कारण रूप और उस करणी का योग धन होता है और रूपवर्ग में धनकरणी घटा देने से ऋण हो जाती है, इसलिये उसका और रूप का अन्तर होता है । बाद में मूलाङ्क का साधन सुलभ है, इसलिये 'धनात्मिकां तां परिकल्प्य—' यह कहा है । परंतु इस भाँति धनात्मक वर्ग ही का मूल आता है इस कारण 'क्षयात्मिकैका' यह कहा है ॥२१॥

उदाहरणम्–

त्रिसप्तमित्योर्वद मे करण्यो-
विश्लेषवर्गं कृतितः पदं च ॥ १५ ॥
द्विकत्रिपञ्चप्रमिताः करण्यः
स्वस्वर्णगा व्यस्तधनर्णगा वा ।
तासां कृतिं ब्रूहि कृतेः पदं च
चेत्षड्विधं वेत्सि सखे करण्याः॥१६॥

प्रथमोदाहरणे न्यासः ।

क ३̇ क ७ । वा क ३ क ७̇

अनयोर्वर्गः सम एव रू १० क ८४ अत्र वर्ग ऋणकरण्या धनत्वं प्रकल्प्य प्राग्वल्लब्धकरण्योरेकाभीष्टा ऋणगता स्यादिति जातम् क ३ क ७ । वा क ३ क ७

द्वितीयोदाहरणे न्यासः ।

क २ क ३ क ५ वा क २ क ३ क ५

आसां वर्गः सम एव जातः रू १० क २४ क ४० क ६० । अत्र ऋणकरण्योस्तुल्यानि धनरूपाणि १०० रूपकृतेः १०० अपास्यमूलम् ० अनेनोनाधिकरूपाणामर्धे क५ क ५। अत्रैका ऋणम् क ५ । अन्यानि रूपाणीति न्यासः रू५ क २४ । पूर्ववज्जाते करण्यौ धनमेव क३क२ । यथाक्रमं न्यासः क २ क ३ क ५ । अथवा अनयोः क २४ क ६० तुल्यानि धनरूपाणि ८४ रूपकृतेरपास्योक्तवज्जाते मूलकरण्यौ क ७ क ३ । अनयोर्महती ऋणम् क ७ तान्येव रूपाणि प्रकल्प्य रू ७ क ४० अतः प्राग्वत्करण्यौ क ५ । क ३ । अनयोरपि महती ऋणमिति यथाक्रमं न्यासः क ३ क २ क ५ ।

अथ द्वितीयोदाहरणे प्राग्वत्प्रथमपक्षे मूल-करण्यौ क ५ क ५ । अनयोरेक्या ऋणम् क ५ं । तान्येव रूपाणीति ऋणोत्पन्ने करणीखण्डे ऋण एवेति यथाक्रमं न्यासः क २ं क ३ं क ५ । द्वितीयपक्षेणापि यथोक्ता एव मूलकरण्यः क ३ं क २ं क ५ एवं बुद्धिमतानुक्तमपि ज्ञायत इति॥

उदाहरण—

करणी तीन, करणी सात के अन्तर का वर्ग और उस वर्ग का मूल क्या है ? करणी दो, करणी तीन, करणी पाँच ऋण अथवा करणी दो ऋण, करणी तीन ऋण, करणी पाँच धन का वर्ग और उस वर्ग का मूल क्या होगा ?

(१) क ३ं क ७ । अथवा क ३ क ७ं का वर्ग तुल्य ही हुआ रू १० क ८४ं इस वर्ग से मूल साधन करते हैं—रूप १० के वर्ग १०० में क ८ं४ के तुल्य रूप घटाने से १८४ शेष का मूल नहीं मिलता, इस कारण क ८४ं को धन मानकर रूप वर्ग में घटाने से १६ शेष बचा, इसके मूल को रूप में जोड़ने-घटाने से १४ और ६ का आधा ७ और ३ हुआ, इस प्रकार 'क ७ क ३' मूलकरणी सिद्ध हुई, इनमें से किसी एक करणी को ऋण कल्पना करने से क ३ं क ७ । या, क ३ क ७ं पूर्वोक्त मूलकरणी हुई ।

(२) क २ क ३ क ५ं, या क २ं क ३ं क ५ं इनका वर्ग रू१० क २४ क ४ं० क ६ं० यह समान ही हुआ । अब वर्गमूल साधते हैं—रूप १० का वर्ग १०० में धन क ४०, क ६० के समान रूप घटाने से शेष ० का मूल ० हुआ, इसको रूप में जोड़ने-घटाने से १० । १० का आधा ५ । ५ हुआ, इन में से एक को अवश्य ऋण मानना चाहिये । अन्यथा उद्दिष्टवर्ग में ऋणकरणी न होगी । अब मूलकरणी को ऋण और दूसरी को धन मानकर क्रिया करते

हैं—क ५̇ यह मूलकरणी है, शेष क ५ को रूप कल्पना करने से, उसका वर्ग २५ हुआ, इस में क २४ के तुल्य रूप घटाने से शेष १ का मूल १ मिला, इसको रूप ५ में जोड़ने-घटाने से ६ । ४ का आधा ३ और २ हुआ, इस प्रकार 'क ३ क २' सिद्ध हुईं। यहाँ दोनों करणी धन होनी चाहियें, क्योंकि यदि एक करणी ऋण मानी जाय तो वर्ग में क २४ धन न होगी, यदि दोनों करणियों को ऋण मान लें तो शेष क २४ ऋण न होगी, परन्तु वर्ग करने में चतुर्गुण—मूलकरणी २̇० से 'क ३̇ क २' मूलकरणियों को गुण देने में इन का ऋणत्व नष्ट हो जायगा। इस कारण उन दोनों करणियों को धन मान लेना योग्य है। इस रीति से 'क ५̇ क ३ क २' यह मूल सिद्ध हुआ।

अब मूलकरणी को धन मानकर गणित दिखलाते हैं—यहाँ मूलकरणी क ५ है और दूसरी करणी ५̇ को रूप मानकर वर्ग २५ हुआ, इस में शेष करणी २४ के तुल्य रूप घटाने से पूर्वप्रकार के अनुसार क ३ क २ सिद्ध हुईं, यहाँ दोनों करणी ऋण होनी चाहिये क्योंकि एक को ऋण मानने से उक्त रीति के अनुसार क २४ धन न होगी, यदि दोनों करणियों को धन मान लें, तो उक्त युक्ति से क ४० और क ६० यह ऋण न होंगी, इस प्रकार क ५ क ३̇ क २̇ यह मूल हुआ। अथवा रूपवर्ग में क २४ क ६० के तुल्य रूप घटाने से शेष १६ का मूल ४ हुआ, इस को रूप १० में जोड़ने-घटाने से १४ । ६ का आधा ७ । ३ हुआ, इस में से क ७ को रूप कल्पना करने से वर्ग ४९ हुआ, इस में धन क ४० के तुल्य रूप घटाने से शेष का ३ मूल मिला, इसको रूप ७ में जोड़ने-घटाने से १० और ४ का आधा ५ । २ हुआ, इन में से ५ को ऋण मानने से 'क ३ क २ क ५̇' यह मूल सिद्ध हुआ। इसी प्रकार रूप वर्ग में क २४ और धन क ४० के समान रूप घटाने से शेष ३६ का मूल ६ हुआ, इस को रूप में जोड़ने-घटाने से १६ और ४ का आधा ८ । २ हुआ। इन में से क ८ को रूप मानकर उक्त क्रिया करने से 'क २̇ क ३̇ क ५' यह मूलकरणी सिद्ध हुई।

पूर्वैर्नायमर्थो विस्तीर्योक्तो बालावबोधार्थं तु मयोच्यते–

एकादिसंकलितमित-
करणीखण्डानि वर्गराशौ स्युः ।
वर्गे करणीत्रितये
करणीद्वितयस्य तुल्यरूपाणि ॥ २२ ॥
करणीषट्के तिसृणां
दशसु चतसृणां तिथिषु च पञ्चानाम् ।
रूपकृतेः प्रोह्य पदं
ग्राह्यं चेदन्यथा न सत्क्वापि ॥ २३ ॥
उत्पत्स्यमानयैवं
मूलकरण्याऽल्पया चतुर्गुणया ।
यासामपवर्तः स्या-
द्रूपकृतेस्ता विशोध्याः स्युः ॥ २४ ॥
अपवर्ते या लब्धा
मूलकरण्यो भवन्ति ताश्चापि ।
शेषविधिना न यदि ता
भवन्ति मूलं तदा तदसत् ॥ २५ ॥

करणीवर्गराशौ रूपैरवश्यं भवितव्यम् ।

एककरण्या वर्गे रूपाण्येव, द्वयोः सरूपैका करणी, तिसृणां तिस्रः, चतसृणां षट्, पञ्चानां दश, षण्णां पञ्चदश इत्यादि। अतो द्वयादीनां करणीनां वर्गेष्वेकादिसंकलितमितानि करणीखण्डानि सरूपाणि यथाक्रमं स्युः। यद्युदाहरणे तावन्ति न भवन्ति तदा संयोज्य योगकरणीं विश्लेष्य वा तावन्ति कृत्वा मूलं ग्राह्यमित्यर्थः। 'वर्गेकरणीत्रितये करणीद्वितयस्य तुल्यरूपाणि–'इत्यादि स्पष्टार्थम्।

अथ 'वर्गे करण्या यदि वा करण्योः' इत्याद्युक्तेरनियमेन करणीशोधने सति मूलाशुद्धिः स्यादिति करणीवर्गे करणीसंख्यानियमपूर्वकं शोध्यकरणीनियमं गीतिद्वयेनार्याद्वयेन च निरूपयति एकादीति। अत्र द्वितीयगीतौ 'तिथिषु पञ्चानाम्' इति बहवः पठन्ति तत्र 'तिथिषु च पञ्चानाम्' इति पठनीयम्। अन्यथा छन्दोभङ्गः स्यात्। उत्पत्स्यमानयेति। अत्र 'अल्पया' इत्युपलक्षणम्। यत्र महती मूलकरणी अल्पा रूपाणि तत्र महत्या चतुर्गुणया यासामपवर्तः स्यात्ता एव विशोध्याः स्युः। आचार्यमते त्वल्पत्वं पारिभाषिकम्, यतोऽस्य सूत्रस्योदाहरणे 'यां मूलकरणीं रूपाणि प्रकल्प्यान्ये करणीखण्डे साध्येते सा महतीत्यर्थः, इति व्याकरिष्यति। पुनर्नियमान्तरमाह—अपवर्त इति। अल्पया क्वचिन्महत्या वा चतुर्गुणया अपवर्ते कृते याः करण्यो लब्धास्ता एव मूलकरण्यो भवन्तीति वस्तुस्थितिः। अथ यदि शेषविधिना 'मूलेऽथ बह्वी करणी तयोर्या–' इत्यादिना ता न भवन्ति तदा

तन्मूलमसदिति । अत्र 'अल्पया' इत्युपलक्षणमिति यद्व्याख्यातं तद्बृहत्खण्डशोधनपूर्वकं मूलग्रहणे, लघुखण्डशोधनपूर्वकं मूलग्रहणे त्वल्पयेत्येव ॥ २२–२५ ॥

करणीवर्ग में नियमित करणीखण्डों के शोधन का प्रकार–

एक से लेकर १, ३, ६, १०, १५, २१, २८, ३६, ४५ इत्यादि जितने संकलित हैं, उतने ही उद्दिष्ट वर्ग में करणीखण्ड होते हैं। *

---

* यह नियम व्यापक नहीं है, जैसा–'स्थाप्योऽन्त्यवर्गश्चतुर्गुणान्त्यनिघ्नाः—' इस रीति से जो वर्ग किया जाता है, उसमें संकलितमित ही करणीखण्ड होते हैं। परंतु कहीं यथासंभव करणियों का योग करने से, संकलितमित करणीखण्ड नहीं होते। उदाहरण—

(१) क २ क ३ क ५ क ६ क १०
क २ क ३ क ५ क ६ क १०

क ४ क २४ क ४० क ४८ क ८०
क ९ क ६० क ७२ क १२०
क २५ क १२० क २००
क ३६ क २४०
क १००

वर्ग=रू २६ क २४ क ४० क ४८ क ८० क ६० क ७२ क १२० क १२० क २०० क २४०। यहाँ पर संकलितमित करणीखण्ड हैं।

उक्तवर्ग में क १२० क १२०, क ६० क २४०, और क ७२ क २०० इन का योग करने से रू २६ क २४ क ४० क ४८ क ८० क ४८० क ५४० क ५१२ यह हुआ। अब यहाँ संकलितमित करणीखण्ड नहीं हैं। इसलिये आचार्य ने कहा है कि–'अथ यद्युदाहरणे तावन्ति न भवन्ति तदा संयोज्य योगकरणीं विश्लिष्य वा तावन्ति कृत्वा मूलं ग्राह्यमित्यर्थः।' यदि उदाहरण में संकलितमित करणीखण्ड न हों तो, योग करके अथवा योगजकरणी को अलग कर संकलितमित करणीखण्ड करने के बाद मूल लेना उचित है। परंतु जिस वर्ग में धनर्णसाम्य से कुछ करणी उड़ जाती हैं, वहाँ उन्हें संकलितमित करना कठिन है। उदाहरण—

(२) क १० क ६ क ५ क ३̇
क १० क ६ क ५ क ३̇

क १०० क २४० क २०० क १२०̇
क ३६ क १२० क ७२̇
क २५ क ६०̇
क ९

वर्ग=रू क २४० क २०० क १२०̇ क १२० क ७२̇ क [illegible]

यदि उद्दिष्टवर्ग में तीन करणीखण्ड हों तो रूप के वर्ग में दो करणी-खण्ड घटाकर जो छ करणीखण्ड हों तो, तीन करणीखण्ड घटाकर, जो दस करणीखण्ड हों तो, चार करणीखण्ड घटाकर जो पंद्रह करणीखण्ड हों तो, पाँच करणीखण्ड घटाकर मूल लेना। यदि इस नियम के विना मूल लिया जायगा तो वह अशुद्ध होगा। इस प्रकार जो छोटी मूलकरणी उत्पन्न होगी, उस को चतुर्गुण करना और उस का जिन करणीखण्डों में अपवर्तन लगे, वे रूपवर्ग में घटाने चाहिए। इस से यह अर्थ निकलता है कि—उक्त नियमानुसार करणी-खण्डों को रूप वर्ग में घटाने से जो मूलकरणी उत्पन्न होगी, उस से घटाये हुए करणीखण्ड अवश्य निःशेष होंगे, यदि निःशेष न हों तो मूल अशुद्ध होगा। और उन घटाये हुए करणीखण्डों में चतुर्गुण मूलकरणी का अपवर्तन देने से जो मूलकरणी होंगी, वे यदि शेष-विधि से न आवें तो वह मूल अशुद्ध होगा।

उपपत्ति—

एक करणी हो तो उसका वर्ग मूल लेने से रूप ही होगा। दो करणी हों तो 'स्थाप्योऽन्त्यवर्गश्चतुर्गुणान्त्यनिघ्नाः—' इस प्रकार से उन का चौगुना घातकरणी होगी और उन दो करणियों का योग रूप

अब यथासंभव करणियों का योग करने से रू २४ क ६० क ३२ यह वर्ग हुआ। यहाँ संकलितमित करणीखण्ड करना अशक्य है।

प्रायः कई वर्गों में संकलितमित करणीखण्ड रहते हैं, परंतु उक्त नियम के अनु-सार वर्गमूल नहीं मिलता। जैसा—

(३) क ३ क ५ क ६ क १०
क ३ क ५ क ६ क १०

क ९ क ६० क ७२ क १२०
क २५ क १२० क २००
क ३६ क २४०
क १००

वर्ग=रू २४ क ६० क ७२ क १२० क १२० क २०० क २४०

यथासंभव करणियों का योग करने से 'रू २४ क ४८० क ५१२ क ५४०' यह उद्दिष्टराशि का वर्ग हुआ। यहाँ पर संकलितमित करणीखण्ड तो हैं, परंतु उक्त नियमा-नुसार मूल नहीं मिलता। अब यह नहीं कह सकते कि जिस रूपयुक्त करणी का वर्गमूल न मिले, वह वर्ग ही नहीं है इत्यादि।

होगा। तीन करणी हों तो उक्त विधि से पहली से दूसरी और तीसरी को गुण देने से दो खण्ड और दूसरी से तीसरी को गुणने से एक खण्ड, इस प्रकार तीनखण्ड होंगे और करणियों का योग रूप होगा। इस भाँति एकोन पदसंकलित के समान करणीखण्ड होते हैं। जैसा—दो करणीखण्ड के वर्ग में एक करणीखण्ड होता है, आर तीन करणीखण्ड के वर्ग में तीन करणीखण्ड होते हैं, चार करणीखण्ड के वर्ग में छ करणीखण्ड होते हैं, इसी भाँति आगे भी जानना। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जो वर्गस्थान में तीन करणी-खण्ड और रूप हों तो तीन मूलकरणीखण्ड होंगे। यहाँ रूपवर्ग करणियों के योग का वर्ग है। पहली करणी पहला खण्ड और दूसरी, तीसरी करणी का योग दूसरा खण्ड है। इन खण्डों के योग का वर्ग रूपवर्ग के समान है। इसलिये दोनों करणियों के योग के तुल्य रूप घटाने से अन्तरवर्ग शेष रहता है। जैसा—क २ क ३ क ५ मूलकरणी हैं इनका वर्ग रू १० क २४ क ४० क ६० हुआ। यहाँ पहला खण्ड २ और शेष मूलकरणी के योग के समान दूसरा खण्ड ८ कल्पना करने से इन दोनों खण्डों का चौगुना घात ६४ यह वर्गस्थानीय क २४ और क ४० का योग है। क्योंकि वर्ग करने में, पहली करणी से दूसरी और तीसरी करणी को गुण दें, फिर उसको चौगुनी करके योग करें, अथवा दूसरी और तीसरी करणी के योग को पहली से गुण दें और उसे चौगुनी करें, फल समान ही होगा। अब २ । ८ करणीखण्डों का योग रूप १० होता है, इसका वर्ग १०० हुआ, इसमें चतुर्गुण खण्डों का घात ६४ घटा देने से शेष ३६ का मूल ६ हुआ, यह उन खण्डों का अन्तर है। इसलिये 'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितस्तौ राशी—' इस संक्रमण विधि से ८ और २ खण्ड हुए। यहाँ छोटा खण्ड २ पहली करणी है और बड़ा खण्ड ८ शेष करणी का योग है। इससे फिर क्रिया की है, इसलिये 'वर्गे करणीत्रितये करणीद्वितयस्य तुल्यरूपाणि' यह उपपन्न हुआ।

यहाँ चतुर्गुण प्रथम करणी और शेषकरणी का घात घटाते

हैं, इसलिये शोधित करणीखण्डों में चतुर्गुण प्रथम करणी का अपवर्तन अवश्य लगेगा, यदि अपवर्तन न लगे तो उदाहरण अशुद्ध होगा। जैसा—प्रकृत में छोटी करणी २ है चतुर्गुण ८ हुई, इसका वर्गस्थानीय 'क २४ क ४०' इन करणियों में अपवर्तन देने से ३। ५ खण्ड मिले। और यही खण्ड शेषविधि से भी आते हैं, जैसा—८ और २ प्रथम सिद्ध करणीखण्ड हैं। इनमें बृहत्खण्ड ८ को रूप मानकर वर्ग ६४ में शेषकरणी ६० घटाने से ४ शेष रहा, इसको मूल २ को रूप ८ में जोड़ने-घटाने से १०। ६ दो खण्ड सिद्ध हुए, इनका आधा ५ और ३ ये मूलकरणी के खण्ड हुए। इस प्रकार क २ क ३ क ५ मूलकरणी हुई। यहाँ शेषविधि और अपवर्तन देने से क ५ क ३ खण्ड आते हैं। इस कारण यह उदाहरण शुद्ध नहीं है। इसके विपरीत जो उदाहरण होंगे वे अशुद्ध हैं २२-२५

उदाहरणम्—

वर्गे यत्र करण्यो
दन्तैः सिद्धैर्गजैर्मिता विद्वन् ।
रूपैर्दशभिरुपेताः
किं मूलं ब्रूहि तस्य स्यात् ॥ १७ ॥

न्यासः। रू १० क ३२ क २४ क ८। अत्र वर्गे करणीत्रितये करणीद्वितयस्यैव तुल्यानि रूपाणि प्रथमं रूपकृतेरपास्य मूलं ग्राह्यम्, पुनरेकस्याः, एवं क्रियमाणेऽत्र पदं नास्तीत्यतोऽस्य करणीगतमूलाभावः। अथानियमेन सर्वकरणीतुल्यानि रूपाण्यपास्य मूलमानी-

यते तदिदं 'क २ क ८' समागच्छति। इदमसत्। यतोऽस्य वर्गोऽयम् रू १८। अथवा दन्तगजमितयोर्योगं कृत्वा रू १० क ७२ क २४ आनीयते तदिदमप्यसत् रू २ क ६॥

अथ 'वर्गे करणीत्रितये-' इत्यादि नियमं विना मूलग्रहणे मूलासत्त्वमित्यत्रोदाहरणमार्ययाह–वर्गे इति। हे विद्वन्! यत्र वर्गे करण्यः दन्तैः द्वात्रिंशता, सिद्धैः चतुर्विंशत्या, गजैः अष्टाभिः, मिताः संमिताः सन्ति। किं भूता दशभी रूपैः उपेताः संयुक्ताः। तस्य वर्गस्य मूलं किं स्यादिति ब्रूहि॥

अब 'वर्गे करणीत्रितये–' इस नियम के विना जो मूल ग्रहण करें तो, मूल नहीं मिलेगा। इस के लिये उदाहरण–

जिस वर्ग में रूप दस से सहित करणी बत्तीस, करणी चौबीस और करणी आठ हैं उसका मूल क्या होगा?

यहाँ वर्ग में करणीखण्ड तीन हैं, इसलिये पहले रूपवर्ग में दो करणीखण्ड के समान रूप घटाकर मूल लेना चाहिये। बाद एक करणीखण्ड के समान रूप घटाकर। परंतु इस नियम से मूल नहीं मिलता। जैसा–रूप १० के वर्ग १०० में क २४ क ८ के तुल्य रूप घटाने से शेष ६८ का मूल नहीं मिलता। अब अनियम से रूप वर्ग १०० में क ३२ क २४ क ८ के तुल्य रूप ६४ घटाने से ३६ शेष का मूल ६ हुआ, इसको रूप में जोड़ने-घटाने से १६।४ का आधा ८ और २ हुआ, यह दो मूलकरणी हुई। परंतु क ८ क २ यह मूल शुद्ध नहीं है, क्योंकि इसका वर्ग रू १८ होता है, अथवा उक्त प्रकार से क ३२ और क ८ का योग करने से वर्ग रू १० क ७२ क २४ हुआ अब रूपवर्ग १०० में क ७२ और क २४ के तुल्य रूप ९६ घटाने से शेष ४ मूल २ आया, इसको रूप में जोड़ने-घटाने से १२ और ८ का आधा ६ और ४ हुआ। यहाँ छोटी करणी चार का मूल दो मिलता है, इसलिये रू २ क ६ मूल

आ। परंतु यह मूल ठीक नहीं है, क्योंकि इसका वर्ग रू १० क ९६ होता है॥

उदाहरणम्—

वर्गे यत्र करण्य-
स्तिथिविश्वहुताशनैश्चतुर्गुणितैः।
तुल्या दशरूपाढ्याः
किं मूलं ब्रूहि तस्य स्यात्॥ १८॥

न्यासः। रू १० क ६० क ५२ क १२। अत्र किल वर्गे करणीत्रयमस्तीति तत्करणीद्वय-द्विपञ्चाशद्द्वादशमितस्य 'क ५२ क १२' तुल्य रूपाण्यपास्य ये मूलकरण्यावुत्पद्येते 'क ८ क २' तयोरल्पयानया चतुर्गुणया ८ द्विपञ्चाशद् द्वादशमितयोरपवर्तो न स्यात् अतस्ते न शोध्ये। यत उक्तम्—'उत्पत्स्यमानयैवम्—'इत्यादि। अत्र 'अल्पया' इत्युपलक्षणम्। तेन क्वचिन्महत्यापि। तदा (यां) मूलकरणीं रूपाणि प्रकल्प्यान्ये करणीखण्डे साध्ये सा महती प्रकल्प्येत्यर्थः॥

अथ 'वर्गे करणीत्रितये—' इत्यादिनियमेनापि मूलग्रहणेऽग्रिमनियमं विना मूलं दुष्टमित्यत्रोदाहरणमार्ययाह—वर्गे इति। स्पष्टार्थेयम्॥

अब 'वर्गे करणीत्रितये-' इस नियम के अनुसार मूल ग्रहण करने पर भी अगले नियम विना मूल अशुद्ध होगा, यह दिखलाने के लिये उदाहरण—

जिस वर्ग में रूप दस से सहित करणी साठ, करणी बावन और करणी बारह हैं, उसका मूल क्या होगा ?

यहाँ करणीखण्ड तीन हैं, इसलिये रूप वर्ग में क ५२ और क १२ के समान रूप घटाने से ३६ शेष का मूल ६ हुआ, इसको रूप १० में जोड़ने-घटाने से १६ और ४ का आधा ८। २ हुआ, इनमें २ मूलकरणी और ८ रूप कल्पना करने से, रूप के वर्ग ६४ में शेष करणी ६० के तुल्य रूप घटाने से ४ शेष का मूल २ हुआ, इसको रूप ८ में जोड़ने-घटाने से १० और ६ का आधा ५ और ३ हुआ, इस प्रकार क २ क ३ क ५ मूलकरणी हुई। परंतु यह मूल ठीक नहीं है, क्योंकि इसका वर्ग रू १० क २४ क ४० क ६० है। इसीलिये 'अल्पया चतुर्गुणया, यासामपवर्तः स्याद्रूपकृतेस्ता विशोध्याः स्युः' यह विशेष कहा है। यहाँ छोटी करणी २ है, यह चतुर्गुण करने से ८ हुई, इसका शोधित क ५२ क १२ में अपवर्तन नहीं लगता, इस कारण मूल अशुद्ध है। यहाँ जो छोटी करणी को चौगुनी करके शोधित करणीखण्डों में अपवर्तन देना कहा है वह उपलक्षण है। इसलिये कहीं चौगुनी बड़ी करणी का भी शोधित करणीखण्डों में अपवर्तन देते हैं। जिस मूलकरणी को रूप मानकर अन्य दो करणीखण्ड साधे जाते हैं, वह महती अर्थात् बड़ी करणी है॥

उदाहरणम्—

अष्टौ षट्पञ्चाशत्
षष्टिः करणीत्रयं कृतौ यत्र।
रूपैर्दशभिरुपेतं
किं मूलं ब्रूहि तस्य स्यात्॥ १६॥

न्यासः। रू १० क ८ क ५६ क ६०। अत्राद्यखण्डद्वये 'क ८ क ५६' शोधिते उत्पन्नयाऽल्पया चतुर्गुणया ८ तयोः खण्डयोरपवर्तनलब्धे खण्डे १।७परं शेषविधिना मूलकरण्यौ नोत्पद्येते अतः खण्डे न शोध्ये। अन्यथा शोधने कृते मूलं नायातीत्यतस्तदसत्॥

अथात्र 'उत्पत्स्यमानयैवं मूलकरण्याल्पया चतुर्गुणया। यासामपवर्तः स्याद्रूपकृतेस्ता विशोध्याः स्युः', इति नियमे सत्यपि मूलग्रहणेऽग्रिमनियमाभावे मूलमसदित्यत्रोदाहरणमार्ययाह— अष्टाविति। यत्र कृतौ वर्गे दशभी रूपैरुपेतं सहितम् 'अष्टौ षट्पञ्चाशत्, षष्टिः, इदं करणीत्रयं वर्तते यत्र वर्गे पदं किं यीदिति ब्रूहि॥

अब 'उत्पत्स्यमानयैवं—' इस नियम से मूल लाते हैं, वह मूल अगले नियम के विना अशुद्ध होता है, यह दिखलाने के लिये उदाहरण—

जिस वर्ग में रूप दश से सहित करणी आठ, करणी छप्पन और करणी साठ ह, वहाँ क्या मूल होगा ?

यहाँ उक्त नियम के अनुसार दो करणीखण्ड घटाना चाहिये। इसलिये रूपवर्ग १०० में क ५६ और क ८ के समान रूप घटाने से शेष ३६ का मूल ६ आया, इसको रूप में जोड़ने-घटाने से १६। ४ का आधा ८। २ हुआ, यह करणीखण्ड हुए। इनमें से बड़े करणीखण्ड को रूप मानकर वर्ग करने से ६४ में क ६० के तुल्य रूप घटा देने से ४ शेष रहा, इसका मूल २ हुआ, इसको रूप ८ में जोड़ने-घटाने से १०। ६ का आधा ५। ३ मूलकरणी हुईं। इस भाँति क २ क ३ क ५ मूल हुआ, परंतु यह मूल अशुद्ध

है। क्योंकि चौगुनी छोटी करणी का शोधित क ८ क ५६ में अपवर्तन देने से १ और ७ यह खण्ड उत्पन्न हुए और शेषविधि से क ५ क ३ आती हैं। इसलिये रूपवर्ग में क ८ क ५६ इन खण्डों को नहीं घटाना चाहिये ॥

उदाहरणम्—

चतुर्गुणाः सूर्यतिथीषुरुद्र-
नागर्तवो यत्र कृतौ करण्यः।
सविश्वरूपा वद तत्पदं ते
यद्यस्ति बीजे पटुताभिमानः ॥ २० ॥

न्यासः। रू १३ क ४८ क ६० क २० क ४४ क ३२ क २४। अत्र करणीषट्के तिसृणां करणीनां तुल्यानि रूपाणि प्रथमं रूपकृतेरपास्य मूलं ग्राह्यं,पश्चाद् द्वयोः,तत एकस्याः, एवं कृतेऽत्र मूलाभावः। अन्यथा तु प्रथमाद्यकरण्यास्तुल्यानि रूपाण्यपास्य, पश्चाद्द्वितीयतृतीययोः, ततः शेषाणां रूपकृतेर्विशोध्यानीतं मूलम् क १ क २ क ५ क ५ तदिदमप्यसत् यतोऽस्य वर्गोऽयम् रू २३ क ८ क ८० क १६० यैरस्य मूलानयनस्य नियमो न कृतस्तेषामिदं दूषणम्।एवंविधवर्गे करणी-

नामासन्नमूलकरणेन मूलान्यानीय रूपेषु प्रक्षिप्य मूलं वाच्यम् ।

अथ वर्गे षट्प्रभृतिषु करणीखण्डेष्वप्येवमेवेति व्याप्तिं प्रदर्शयितुमुपजातिकयोदाहरणमाह—चतुर्गुणा इति हे गणक, ते तव यदि बीजे पटुताभिमानः पाटवाहंकारोऽस्ति तर्हि यत्र कृतौ सूर्य १२ तिथी १५ षु ५ रुद्र ११ नाग ८ र्तवः ६ चतुर्गुणाः करण्यः सन्ति । किंभूताः । सविश्वरूपाः त्रयोदशसंख्याकै रूपैः सहिताः । तत्पदं वर्गमूलं वद कथय ॥

उदाहरण—

जिस वर्ग में रूप तेरह से सहित करणी अड़तालीस, करणी साठ, करणी बीस, करणी चौवालीस, करणी बत्तीस और करणी चौबीस हैं उसका वर्गमूल क्या होगा ?

यहाँ करणीखण्ड छ हैं, इसलिये पहले रूपवर्ग में तीन करणीखण्ड के समान रूप घटाकर मूल लेना चाहिये, फिर दो करणी के तुल्य, फिर एक करणी के तुल्य, इस प्रकार क्रिया करने से मूल नहीं आता तो अनियम से रूपवर्ग १६९ में पहली करणी ४८ के तुल्य रूप घटाने से १२१ शेष रहा, इसका मूल ११ आया, इसको रूप १३ में जोड़ने-घटाने से २४।२ का आधा १२ और १ हुआ, इनमें से बड़े खण्ड को रूप मानकर वर्ग १४४ हुआ, इसमें क ६० क २० के तुल्य रूप घटाने से ६४ का मूल ८ हुआ, इसको रूप १२ में जोड़ने-घटाने से २० । ४ का आधा १० और २ हुआ, इनमें से बड़े खण्ड १० को रूप मानकर, वर्ग १०० में क ४४ क ३२ और क २४ के तुल्य रूप घटाने से शेष ० बचा, इसके मूल को रूप में जोड़ने-घटाने से १० । १० का आधा ५। ५ हुआ । इस भाँति 'क १ क २ क ५ क ५' यह मूल आया, परंतु यह ठीक नहीं है । क्योंकि इसका वर्ग 'रू १३ क ८ क २० क २० क ४० क ४० क १००' यह है । इसमें यथासंभव करणी-

खण्डों का योग करने से, रू २९ क ८ क ८० क १६० हुआ।

जिन आचार्यों ने करणी मूल के आनयन में नियम नहीं किया उनका यह दूषण है। ऐसे स्थल में करणीखण्डों का आसन्न मूल लेकर, उसको रूप में जोड़कर मूल समझना चाहिए।

अथ 'महती रूपाणि' इत्युपलक्षणम्, यतः क्वचिदल्पापि। तत्रोदाहरणम्–

चत्वारिंशदशीति–
द्विशतीतुल्याः करण्यश्चेत्।
सप्तदशरूपयुक्ता-
स्तत्र कृतौ किं पदं ब्रूहि॥ २१॥

न्यासः। रू १७ क ४० क ८० क २००।

शोधिते जाते खण्डे क १० क ७। पुनर्लघ्वीं करणीं रूपाणि कृत्वा लब्धे करण्यौ क ५ क २। एवं मूलकरणीनां न्यासः। क १० क ५ क २।

इति करणीषड्विधम्।

*इति (षट्) त्रिंशत्परिकर्माणि॥

---

* अयं पाठष्टीकापुस्तके नोपलभ्यते, तथाच '––षड्विधचतुष्टयमुक्त्वा–' इति बीजनवाङ्कुरन्यस्तकुट्टकोपोद्घातलेखाच्चासंगतः प्रतीयते। किंच अनेकवर्णषड्विधगणनया कथंचित्त्रिंशत्परिकर्माणि संभवन्ति, परं टीकाविसंवादान्न सुष्ठु॥

क्वचिदल्पापि रूपाणीत्यत्रोदाहरणमुद्गीत्याह—चत्वारिंशदिति। 'अशीतिः' इति रेफान्तः पाठो न युक्तः । स्पष्टार्थः ॥

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत–दुर्गाप्रसादोन्नीते लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिनि करणीषड्विधं समाप्तम् ।

उदाहरण—

जिस वर्ग में, रूप सत्तरह से सहित करणी चालीस, करणी अस्सी और करणी दोसौ हैं वहाँ क्या वर्गमूल होगा ?

यहाँ रूपवर्ग २८९ में क ८० क २०० के तुल्य रूप घटाकर उक्त विधि से १० । ७ करणीखण्ड उत्पन्न हुए। इन में छोटे करणी-खण्ड को रूप मानकर, उक्त प्रकार से ५ । २ करणीखण्ड हुए, इस भाँति क १० क ५ क २ मूल हुआ । यह मूल शुद्ध है, क्योंकि इसका वर्ग रू १७ क ४० क ८० क २००, होता है । यहाँ पहली मूलकरणी १० और ७ हैं, इन में बड़ी करणी चतुर्गुण ४० का घटाये हुए 'क ८० क २००' इन करणीखण्डों में अपवर्तन देने से २ । ५ करणीखण्ड लब्ध हुए । और शेष विधि से भी यही खण्ड आते हैं, इसलिये यह मूल शुद्ध है । और जो (२४) वें सूत्र के भाष्य में कहा है कि चौगुनी छोटी करणी का जिन वर्गस्थानीय करणीखण्डों में अपवर्तन लगे वे रूपवर्ग में घटाने के योग्य हैं यह उपलक्षण है । इसीलिये यहाँ पर चौगुनी बड़ी करणी का शोधित करणीखण्डों में अपवर्तन दिया है ॥

करणीषड्विध समाप्त ।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे ।
वासनाभङ्गिसुभगं करणीषड्विधं गतम् ॥

अथ कुट्टकः।

भाज्योहारः क्षेपकश्चापवर्त्यः
केनाप्यादौ संभवे कुट्टकार्थम्।
येन च्छिन्नौ भाज्यहारौ न तेन
क्षेपश्चैतद्दुष्टमुद्दिष्टमेव॥ २६॥

एवं सामान्यतोऽव्यक्तक्रियोपयुक्तं षड्विधचतुष्टयमुक्त्वा सांप्रतमनेकवर्णसमीकरणप्रक्रियोपयुक्तं कुट्टकमाह—कुट्टको नाम गुणकः। हिंसावाचकशब्दैर्गुणनाभ्युपगमात्। योगरूढ्याः * गुणकविशेषश्चायम्। कश्चिद्राशिर्येन गुणित उद्दिष्टक्षेपयुतोन उद्दिष्टहरेण भक्तः सन्निःशेषो भवेत्स गुणकः कुट्टक इति पूर्वेषां व्यपदेशात्। तत्र कुट्टकज्ञानार्थं प्रथममितिकर्तव्यतामुद्देशखिलत्वं च शालिन्या निरूपयति—भाज्यो हार इति। कश्चिद्राशिर्येन गुणित उद्दिष्टक्षेपेण युतोन उद्दिष्टहरेण भक्तः सन्निशेषः स्यात् तस्य गुणकविशेषस्य 'कुट्टकः' इति संज्ञा, इति प्रागेवाभिहितम्। अत्रागता लब्धिर्लब्धिसंज्ञैव। हरो हरसंज्ञ एव। क्षेपोऽपि क्षेपसंज्ञ एव। अन्वर्थ संज्ञाश्चैताः। यो राशिर्गुण्यते तस्य 'भाज्यः' इति संज्ञा। भजनयोगात्। अस्य कुट्टकस्य ज्ञानार्थमादौ स भाज्यो हारः क्षेपकश्च केनापि तुल्येनाङ्केनापवर्त्यः। भाज्यहारक्षेपा एकेनैवाङ्केनापवर्त्या इत्यर्थः। कस्मिन्सति अपवर्तनसंभवे सति। अपवर्तनं नाम निःशेषभजनम्। तच्चैकातिरिक्तेनाभिन्नेन ज्ञेयम्। अन्यथा 'संभवे' इत्यस्यानुपपत्तेः। एकेन भिन्नेन वा केनचिदङ्केन सर्वत्रापवर्तनसंभवात्। 'तौ भाज्यहारौ दृढसंज्ञकौ स्तः' इत्यस्य व्याख्यानावसरे "दृढाः" इत्यन्वर्थसंज्ञा।

---

* यत्र त्ववयवशक्तिविषये समुदायशक्तिरप्यस्ति तद्योगरूढम्।

पुनर्नापवर्तन्ते न क्षीयन्त इत्यर्थः" इति बुद्धिविलासिन्यां श्रीगणेशदैवज्ञैरप्युक्त एवायमर्थः । भाज्यहारक्षेपाणमपवर्तनसंभवे सत्यवश्यमपवर्त्या एव । अन्यथा कुट्टको न संभवतीति सिद्धम् । उद्देशस्य खिलत्वज्ञापनार्थमाह—येनेति । येनाङ्केन भाज्यहारौ छिन्नावपवर्तितौ तेनेवाङ्केन क्षेपश्चेन्न छिन्नः अपवर्तितो न स्यात्तर्हि एतदुद्दिष्टं पृच्छकेन पृष्टं दुष्टमेव । अयं भाज्यो येन केनापि गुणितस्तेन क्षेपेण युतोनस्तेन हरेण भक्तः सन् कदाचिदपि निःशेषो न भवेदित्यर्थः ॥ २५ ॥

कुट्टक ।

अब अनेकवर्ण समीकरण को उपयोगि कुट्टक का निरूपण करते हैं—जिस अङ्क से उद्दिष्टराशि गुणित, इष्टक्षेपसहित किंवा रहित और इष्टभाजक से भाजित निःशेष हो, उस गुणक की 'कुट्टक' यह संज्ञा की है । यहाँ पर जो राशि गुणी जाती है उसको भाज्य, जो जोड़ी अथवा घटाई जाती है उसको क्षेप, जिसका भाग दिया जाता है उसको हार और जो लब्धि आती है उसको लब्धि कहते हैं ।

कुट्टक के ज्ञान के लिये पहले भाज्य, हार और क्षेप में किसी एक ही समान अङ्क का अपवर्तन देना (अपवर्तन वह कहलाता है कि जिसका पूरा-पूरा भाग लग जावे) और वह अपवर्तन की संख्या एक अथवा भिन्न न हो, क्योंकि एक वा, भिन्न-अङ्क का सर्वत्र अपवर्तन लग सकता है । इस भाँति अपवर्तन देने से भाज्य और हार अपवर्तित हों, परंतु यदि क्षेप में अपवर्तन न लगे तो, वह उदाहरण अशुद्ध होगा ।

उपपत्ति—

(१) जैसे—लब्धि अपवर्तित भाज्य भाज्यकों पर से आती है, वैसे ही किसी एक अङ्क से गुणित अथवा, अपवर्तित भाज्य-भाजकों पर से आती है, यह बात प्रसिद्ध है । प्रकृत में किसी गुण से गुणा, धन वा ऋण क्षेप से जुड़ा कल्पित-भाज्य, भाज्य होता है और भाजक

यथास्थित रहता है। इस प्रकार भाज्य के दो खण्ड होते हैं—गुण से गुणित पहला खण्ड, क्षेप दूसरा खण्ड, इन दोनों खण्डों का योग भाज्य है। भाज्य और भाजक में अपवर्तन देने से लब्धि में विकार नहीं होता, इसलिये जिस अङ्क से भाजक अपवर्तित हुआ है, उसी से खण्डद्वययोगरूप भाज्य भी अपवर्त्य (अपवर्तनयोग्य) है। वहाँ खण्डों का योग अपवर्तित अथवा, अपवर्तित खण्डों का योग तुल्य होते हैं। जैसा—$\frac{२७}{१५}$ इन भाज्य भाजकों में तीन का अपवर्तन देने से $\frac{९}{५}$ ये अपवर्तित भाज्य-भाजक हुए, अथवा ९।१८ ये भाज्य के खण्ड: तीन के अपवर्तन देने से ३।६ हुए, इन खण्डों का योग वही अपवर्तित भाज्य ९ हुआ। इसी भाँति भाज्य के दो से अधिक खण्ड करके उन में अपवर्तन दे और उन अपवर्तित खण्डों का योग करे तो भी वही अपवर्तित भाज्य होगा। इसलिये, भाजक के अपवर्तित होने से गुण से गुणित कल्पित भाज्य और क्षेप भी अपवर्त्य होता है। यद्यपि गुण के न जानने से गुण-गुणित भाज्य भी अज्ञात है तो उसमें कैसे अपवर्तन हो सकेगा, तथापि कल्पित भाज्य में अपवर्तन देकर पीछे उसको गुण से गुण दें तो कल्पित भाज्यरूपी भाज्यखण्ड ही अपवर्तित होगा। क्योंकि गुणित में अपवर्तन देने से अथवा, अपवर्तित को गुणने से कुछ विशेष नहीं होता। कल्पित-भाज्य जिस गुण से गुणित भाज्यखण्ड होता है, उसी से गुणित, अपवर्तित भाज्य भी अपवर्तित भाज्यखण्ड होगा और अपवर्तित क्षेप दूसरा खण्ड। इस भाँति भाज्य हार और क्षेप अपवर्तित हों अथवा, अनपवर्तित हों, तो भी गुण-लब्धि में विशेष नहीं होता। इस कारण, लाघवार्थ भाज्य, हार और क्षेप अपवर्तित किये जाते हैं। इससे 'भाज्यो हारः—' यह श्लोकार्ध उपपन्न हुआ।

(२) गुणगुणित भाज्य के समान एक खण्ड, क्षेप के समान दूसरा खण्ड, उन खण्डों का योग हर से भाजित और हर से भागा हुआ खण्डयोग, तुल्य होते हैं। जैसा—गुणगुणित भाज्य=५×२२१= ११०५। क्षेप=६५। हर १९५ से भाजित $\frac{११०५}{१९५}$, $\frac{६५}{१९५}$ इन का योग $\frac{११७०}{१९५}$ यह भाज्य ११०५ क्षेप ६५ के योग ११७० हर

१९५ से भाजित $\frac{११७०}{१९५}$ के समान है। इसी प्रकार केवल भाज्य और भाजक पर से जैसे—लब्धि आती है वैसे ही उनमें अपवर्तन देने से आती है। इसलिये $\frac{११०५}{१९५}$, $\frac{६५}{१९५}$ इन खण्डों में १३ का अपवर्तन देने से $\frac{८५}{१५}$, $\frac{५}{१५}$ इन का योग $\frac{९०}{१५}$ हुआ। अथवा, इन खण्डों के योग $\frac{११०५}{१९५} + \frac{६५}{१९५} = \frac{११७०}{१९५}$ में १३ का अपवर्तन देने से योग हुआ $\frac{९०}{१५}$। गुण से गुणित इष्टाङ्क से अपवर्तित, अथवा इष्टाङ्क से अपवर्तित और गुण से गुणित भाज्य में, अन्तर नहीं पड़ता तो यदि पहले लिखे खण्डों के योग में $\frac{११७०}{१९५} = \frac{९०}{१५}$ अपवर्तन देते हैं तो $\frac{११०५}{१९५}$, $\frac{६५}{१९५}$ इन खण्डों में भी अपवर्तन देना उचित है। नहीं तो फल की समता कैसे होगी। इसलिये भाज्य और हार के समान क्षेपक में भी अपवर्तन देना अत्यावश्यक है। इससे 'येन च्छिन्नौ भाज्यहारौ न तेन क्षेप:—' यह श्लोक का उत्तरार्ध उपपन्न हुआ॥

卐

परस्परं भाजितयोर्यर्योर्यः
शेषस्तयोः स्यादपवर्तनं सः।
तेनापवर्तेन विभाजितौ यौ
तौ भाज्यहारौ दृढसंज्ञकौ स्तः॥ २७॥
मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ
यावद्विभाज्ये भवतीह रूपम्।
फलान्यधोधस्तदधो निवेश्यः
क्षेपस्तथान्त्ये खमुपान्तिमेन॥ २८॥
स्वोर्ध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं
त्यजेन्मुहुः स्यादिति राशियुग्मम्।

ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः
फलं गुणः स्यादधरो हरेण ॥ २६ ॥

अथापवर्तनाङ्कं कुट्टकस्येतिकर्तव्यतां चोपजातित्रयेणाह—परस्परमित्यादि । ययो राश्योः परस्परमन्योन्यं भाजितयोः सतोर्यः शेषाङ्कः स तयोरपवर्तनं स्यात् । तेन तौ निःशेषं भाज्येते एव । एतदुक्तं भवति—हरेण भाज्ये भक्ते यच्छेषं तेनापि स हरो भाजनीयः, तच्छेषेणापि भाज्यशेषं, तेनापि हरशेषमिति। पुनः पुनः परस्परभजने क्रियमाणे यद्यन्ते रूपं शेषं स्यात्तदा तौ नापवर्तेते एव, रूपस्यैव शेषत्वात्तेनापवर्ते भाज्यहारक्षेपाणामविकार एव । यदा तु शून्यं शेषं स्यात्तदा हरीभूतं यत्प्राक् शेषमधः स्थापितं तदेव भाज्यहारयोरपवर्तनं स्यात् शेषो ह्यपवर्तनाङ्कः। तस्मादन्तिमशेषोङ्क एवापवर्तनाङ्कः । एवं ज्ञातेनापवर्तनाङ्केन यौ भाज्यहारौ विभाजितौ तौ दृढसंज्ञकौ स्तः । तेनैव क्षेपोऽप्यपवर्त्यः । 'भाज्यो हारः क्षेपकश्चापवर्त्यः' इत्युक्तत्वात् । सोऽपि दृढसंज्ञः स्यात् । अथ तौ दृढभाज्यहारौ उक्तवन्मिथः परस्परं तावद्भजेद्यावद्विभाज्ये भाज्यस्थाने रूपं भवेत् । इहैतेषु परस्परभजनेष्वागतानि फलान्यधोऽधोनिवेश्यानि। फलं च फले च फलानि च फलानि। द्वन्द्वैकशेषः । तेषां फलानां वल्लीवदधोधः स्थापितानामधोभागे क्षेपो निवेश्यस्तथा तेषामप्यधोऽन्ते खं निवेश्यम्, एवं वल्ली जायते । तत उपान्तिमेनाङ्केन स्वोर्ध्वे स्वोर्ध्वस्थितेऽङ्के हते अन्त्येनाङ्केन युते च सति तदन्त्यं त्यजेत् इति मुहुः।उपान्तिमेन स्वोर्ध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यजेत्, इति पुनः पुनः कृते राशियुग्मं स्यात् । तत्रोर्ध्वराशिर्दृढेन विभाज्येन तष्टः सन् फलं भवेत् । फलं नाम लब्धिः। अधरोऽधस्तनो राशिर्दृढेन हरेण तष्टः सन् गुणः स्यात् । तक्षू त्वक्षू तनूकरणे, इति धातोः कर्मणि क्तः । तष्टस्तनूकृतोऽव-

शेषित इति यावत्। अत्र 'तष्टः' इत्यनेन भक्तावशेषितो राशिर्ग्राह्यो नतु लब्धिरित्यर्थः। तेन गुणेन दृढभाज्ये गुणिते दृढक्षेपयुतोने दृढहरेण भक्ते शेषं न स्यादिति। उद्दिष्टेष्वपि भाज्यहारक्षेपेषु ते एव गुणलब्धी स्त इत्यर्थसिद्धमविशेषात् ॥

अपवर्तनाङ्क और दृढ भाज्य-हार-क्षेप का प्रकार—

आपस में उद्दिष्ट दो राशियों के भाग देने से जो शेष बचे वह उन का अपवर्तनाङ्क होगा अर्थात् उस से दोनों राशि नि:शेष भाजित हो जायँगे, तात्पर्य यह है कि भाज्य में हर का भाग देने से जो शेष बचे, उसका हर में भाग देना और उस हर शेष का भाज्य शेष में भाग देना, इस भाँति बार-बार क्रिया करने से, अन्त में जो रूप शेष रहे उससे वे भाज्य, हार, और क्षेप अविकृत ही रहेंगे अर्थात् छोटे न होंगे। यदि शून्य शेष बचे तो, भाजकरूप भाज्य के नीचे स्थापित पहला शेष ही उन का अपवर्तनाङ्क होगा। इस प्रकार ज्ञात होता है कि अपवर्तनाङ्क से अपवर्तित भाज्य, हार और क्षेप दृढ़ संज्ञक होते हैं। और उन दृढसंज्ञक भाज्यहारों का परस्पर तब तक भाग देते जाना जब तक कि भाज्य के स्थान में रूप न हो जाय। इस प्रकार जो लब्धि मिलें, उन्हें एक के नीचे एक इस क्रम से लिखना और उन लब्धियों के नीचे क्षेप को लिखकर शून्य लिखना इस प्रकार एक ऊर्ध्वाधर अङ्कों की पङ्क्ति उत्पन्न होगी, उस की 'वल्ली' संज्ञा है। उपान्तिम अर्थात् अन्त के समीपवाले अङ्क से उस के ऊपर-वाले अङ्क को गुणा देना और उस में अन्तवाले अङ्क को जोड़ देना बाद, उसको बिगाड़ देना, ऐसे ही बार बार क्रिया करना जब तक कि दो राशि न हो जाय। फिर उनमें से ऊपरवाली राशि दृढ भाज्य से तष्टित फल (अर्थात लब्धि) होगा और नीचे की राशि दृढहार से तष्टित गुणा होगा ॥

उपपत्ति—

एक ऐसा बड़ा अपवर्तनाङ्क खोजना चाहिये कि जिस से अपवार्तित भाज्य-हार फिर अपवर्तित न हों। ऐसे अपवर्तनाङ्क से अपवर्तित

भाज्य हार दृढ संज्ञक होते हैं। जैसा—| २२१ / १९५ | इन भाज्य-हारों में १९५ यह छोटा है, इस से बड़ा अपवर्तनाङ्क नहीं हो सकता। १९५ हार का भाज्य २२१ में भाग देने से निःशेष नहीं होता। इस कारण भाज्य के दो खण्ड किए। एक हर लब्धि के घात के समान १×१९५, दूसरा शेष के समान २६। ये दोनों खण्ड जिस से निःशेष भाजित होंगे, उसी से भाज्य भी निःशेष होगा। अब १९५। २६ इन खण्डों में लघुखण्ड का अपवर्तन संभव है, पर निःशेष नहीं होता। यहाँ भी हर २६ लब्धि ७ के घात के समान एक खण्ड २६ × ७ = १८२, शेष के समान दूसरा खण्ड १३। इन में लघुखण्ड का अपवर्तन संभव है और १३ का भाग देने से १८२। १३ दोनों खण्ड निःशेष होंगे। क्योंकि पहला खण्ड १८२, पहली लब्धि ७ और हर २६ के घात के समान है और हर २६ दूसरे खण्ड १३ के भाग देने से निःशेष होता है, तो पहला खण्ड १८२ दूसरे खण्ड १३ से अवश्य निःशेष होगा और उनका योग भी १९५ उसी हर के भाग देने से निःशेष होगा। अब यदि दूसरे शेष १३ से पहला शेष २६ निःशेष होगा तो १९५। २६ इन खण्डों का योग भी २२१ उसी १३ से निःशेष होगा। इससे 'परस्परं भाजितयोर्ययोर्यः—' यह श्लोक उपपन्न हुआ।

अथवा। भाज्य=८१ हार=१५। यहाँ पहली लब्धि ५ और पहला शेष ६, इस का हार १५ में भाग देने से दूसरी लब्धि २ दूसरा शेष ३, इस का पहले शेष ६ में भाग देने से, तीसरी लब्धि २ तीसरा शेष ० रहा। हर-लब्धि का घात भाज्यराशि के समान होता है, इस कारण दूसरा शेष ३ और तीसरी लब्धि २ से पहला शेष ६ ज्ञात हुआ इसी भाँति पहला शेष ६ और दूसरी लब्धि २ के घात १२ से घटाया गया हार दूसरा शेष होता है इसलिये दूसरे शेष से जुड़ा पहला शेष और दूसरी लब्धि का घात हार के समान है, जैसा—

पशे × द्विल × द्विशे = हार। ६×२+३=१५।

यहाँ पहले शेष से गुणित दूसरी लब्धि है और पहला शेष, दूसरे शेष एवं तीसरी लब्धि के घात के समान है, इसलिये ऐसा रूप बना—

द्विल×द्विशे× तैल+द्विशे=हार ।

हार को पहली लब्धि से गुणाकर उस में पहले शेष के समान तीसरी लब्धि और दूसरे शेष के घात को जोड़ देने से—

पल × द्विल × तल × द्विशे + पल × द्विशे + तल × द्विशे= भाज्य । इस भाज्य में तीन खण्ड है और हार में दो खण्ड हैं, दोनों दूसरे शेष (द्विशे) से भाजित निःशेष होते हैं, इस कारण भाज्य ८१ हार १५ दूसरे शेष ३ से भाजित दृढ भाज्य=२७ । हार=५ ।

भाज्य, हार और क्षेप यह कुट्टक विधि के सहयोगी हैं अर्थात् किस गुणक से गुणित, क्षेप से सहित वा रहित और हार से भाजित भाज्य निःशेष होगा । इस प्रश्न में जो लब्धि होगी वही लब्धि और गुणक गुण होगा । अब उन के ज्ञान के लिये यत्न करते हैं—भाज्य में हार का भाग देने से जो लब्धि मिले उस से गुणित हार एक खण्ड, शेष के समान दूसरा खण्ड । जैसा—भाज्य १७३ में हार ७१ का भाग देने से २ लब्धि मिली और ३१ शेष रहा, उक्त रीति से १४२ । ३१ ये दो खण्ड हुए । इन का योग भाज्य के तुल्य है । पहला खण्ड १४२, हार ७१ लब्धि २ के घात १४२ के समान है, इस कारण हार का भाग देने से निः-शेष होगा और क्षेप दूसरे खण्ड ३१ से भाजित यदि निःशेष हो तो, जो लब्धि है, वही गुण होगा । जैसा—ऋणक्षेप ६२ दूसरे खण्ड ३१ का भाग देने से निःशेष होता है और २ लब्धि आती है, तो यही गुण होगा । क्षेप दूसरे खण्ड का भाग देने से निःशेष नहीं होता, इस कारण गुण को जानने के लिये दूसरा उपाय करते हैं—भाज्य के दो खण्डों में, यदि दूसरा खण्ड रूप के समान हो तो, वह क्षेप के समान गुण से गुणित क्षेप के समान होगा । वहां यदि ऋणक्षेप हो तो, उस के घटाने से दूसरे खण्ड का नाश होगा, जैसा—भाज्य=९ हार = ४ । यहां भाज्य के दो खण्ड ८ । १ दूसरा खण्ड १ क्षेप ६२ से गुणाने से ६२ हुआ, इस में क्षेप ६२ घटा देने से शून्य ० हुआ, और पहला खण्ड ८ क्षेप ६२ से

गुणित ४९६ हुआ इस में हार ४ का भाग देने से १२४ लब्धि आई। अथवा, पहले खण्ड ८ में हार ४ का भाग देने से २ लब्धि आई, इस को क्षेपतुल्य गुण ६२ से गुणाने से पहली लब्धि हुई। यहां भाज्य में हार का भाग देने से, यदि रूप शेष न रहे तो, गुण का ज्ञान न होगा। इसलिये भाज्य हारों के आपस में भाग देने से जहां रूप शेष हो, उसी स्थान में, क्षेप के तुल्य गुण होगा। परंतु ऋणक्षेप में, जैसा—भाज्य=१७३ हार=७१ क्षेप=३, यहां दृढ भाज्य हारों के परस्पर भाग देने से, लब्धि और भिन्न भिन्न भाज्य-हार होते हैं—

(१) भाज्य १७३	(२) भाज्य ७१	(३) भाज्य ३१	(४) भाज्य ९	२ २ ३ २
हार ७१	हार ३१	हार ९	हार ४	

यहां अन्त भाज्य के दो खण्ड ८।१ और उक्त रीति से ऋण-क्षेप में क्षेप ३ के समान गुण हुआ। अन्त्य लब्धि २ क्षेप ३ से गुणाने से ६ हुई, इस में द्वितीय खण्डोत्पन्न शून्य के समान लब्धि जोड़ने से ६ लब्धि हुई। क्योंकि भाज्य का दूसरा खण्ड १ क्षेप ३ से गुणित ३ हुआ इस में ऋणक्षेप ३ घटा देने से शून्य ० शेष रहा। इस में हार ४ का भाग देने से शून्य ० लब्धि आती है। इस से 'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ, यावद्विभाज्ये भवतीह रूपम्। फलान्यधोधस्तदधो निवेश्यः क्षेपस्तथान्त्ये खं—' यह वल्ली

२ २ ३ २ ३ ०	उत्पन्न होती है। क्षेप के समान उपान्तिम राशि ३ से उस के ऊपरवाले २ को गुणाने से ६ हुआ, इस में अन्त्य ० जोड़ने से ६ लब्धि हुई। और गुण, क्षेप ३ के समान है आलाप—

भाज्य ९ गुण ३ से गुणित २७ हुआ, इस में क्षेप ३ घटाने से शेष २४ में हार ४ का भाग देने से, वही निःशेष लब्धि ६ हुई। इसी क्षेप ३ पर से तीसरे भाज्य में गुण का विचार—यहां पर भी लब्धि के समान एक खण्ड और शेष के समान दूसरा खण्ड, जैसा—२७।४ इन में पहला खण्ड किसी से गुणित और हार ९ से भाजित निःशेष होगा। दूसरे खण्ड ४ में गुण का निर्णय—भाज्य ४ हार ९ चौथे भाज्य हार के उलटे हैं। अब चौथे भाज्य

६ को उस के गुण ३ से गुणने से २७ हुआ, इस में क्षेप ३ घटाकर हार ४ का भाग देने से ६ लब्धि मिली और विलोमविधि के अनुसार, लब्धि ६ से हार ४ को गुणने से २४ हुआ, इस में क्षेप ३ जोड़ने से २७ में भाज्य ६ का भाग देने से वही गुण ३ मिला। इस प्रकार, तीसरे भाज्य का दूसरा खण्ड ४ लब्धि ६ से गुणित क्षेप ३ से युक्त हार ६ से भाजित निःशेष होता है और लब्धि ३ आती है। तीसरे भाज्य का पहला खण्ड २७ हार ६ से भाजित निःशेष होता है और लब्धि ३ आती है। इस को पहली लब्धि ६ से गुणित कर १८ में, दूसरे खण्ड से उत्पन्न ३ लब्धि के जोड़ने से, संपूर्ण लब्धि २१ हुई और गुण ६ हुआ, ये धनक्षेप में सिद्ध हुए। इस से 'उपान्तिमेन, स्वोर्ध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यजेत्—' उपपन्न हुआ। अर्थात् उपान्तिम ६ के ऊपर ३ को गुणने से १८ हुआ इस में अन्त्य ३ जोड़ने से २१ हुआ और अन्त्य को मिटा देने से यह क्रिया सिद्ध हुई। आलाप—तीसरे भाज्य ३१ को गुण ६ से गुणने से १८६ हुआ इस में क्षेप ३ जोड़ने से १८९ में हार ९ का भाग देने से वही २१ लब्धि हुई। दूसरे भाज्य ७१ के भी दो खण्ड ६२। ९ यहां दूसरे खण्ड में गुण का विचार—पहले सिद्ध २१ लब्धि को हार ९ से गुणित १८९ में क्षेप ३ घटा कर गुण ६ का भाग देने से तीसरा भाज्य ३१ मिला, और विलोम विधि से, भाज्य को हार, हार को भाज्य और क्षेप की धनर्णता का व्यत्यय मान कर, लब्धि का गुणत्व और गुण का लब्धित्व सिद्ध होता है। इस कारण, दूसरे भाज्य का दूसरा खण्ड ९ पूर्व लब्धि २१ से गुणित १८९ हुआ, यह क्षेप ३ घटाकर हार ३१ का भाग देने से निःशेष हुआ और लब्धि ६ मिली। पहले खण्ड ६२ में हार ३१ का भाग देने से २ लब्धि को पूर्व लब्धि २१ से गुणने से ४२ हुआ इस में पहले सिद्ध दूसरे खण्ड की लब्धि ६ जोड़ने से समस्त लब्धि ४८ हुई और पूर्व लब्धि २१ गुण हुआ। इस से दूसरे भाज्य ७१ को गुणने से १४९१ हुआ, इस में क्षेप ३ घटाकर हार ३१ का भाग देने से वही ४८ लब्धि मिली। पहले भाज्य के

दो खण्ड १४२ । ३१ इन में पहला खण्ड किसी एक अङ्क से गुणा और हार से भाजित निःशेष होगा। दूसरे खण्ड में गुण का विचार–विलोमविधि से गुण ४८ लब्धि २१ आती है । अब भाज्य का दूसरा खण्ड ३१ गुण ४८ से गुणित १४८८ हुआ, इस में क्षेप तीन जोड़ कर हार ७१ का भाग देने से वही द्वितीय खण्डोत्पन्न लब्धि २१ हुई । पहले खण्ड १४२ में हार ७१ का भाग देने से जो २ लब्धि आती है, उस को गुण ४८ से गुणा कर दूसरे खण्ड से उत्पन्न २१ लब्धि जोड़ देने से समस्त लब्धि हुई ११७ और गुण ४८ पहले ही सिद्ध हो चुका था ।

क्रिया का सारांश ।

(१) १४२ + ३१ । ३	व.	(२) ६२ + ९ । ३̇	व.
७१	२	३१	२
ल ११७=९६ + २१	२	ल ४८=४२+६	३
गु ४८	३	गु २१	२
	२		३
	३		०
	०		
(३) २७ + ४ । ३	व.	(४) ८ + १ । ३̇	व.
९	३	४	२
ल २१=१८ + ३	२	ल ६	३
गु ६	३	गु ३	०
	०		

इस भांति बार बार क्रिया करने से, पहले भाज्य हार संबन्धी लब्धि इस प्रकार गुण होते हैं–प्रथम ऋणक्षेप में, चौथे भाज्य हार से उत्पन्न लब्धि-गुण, फिर धनक्षेप में तीसरे भाज्यहार से उत्पन्न लब्धि-गुण, फिर ऋणक्षेप में दूसरे भाज्य हार से उत्पन्न लब्धि-गुण, फिर धनक्षेप में पहले भाज्यहार से उत्पन्न लब्धि-गुण होते हैं । इस से स्पष्ट है कि भाज्य हारों के परस्पर भाग देने से जो लब्धि विषम हों तो, लब्धि गुण ऋणक्षेप में और सम हों तो

धनक्षेप में होते हैं। भाज्य को हार तुल्य गुण से गुणाकर हार का भाग देने से भाज्य तुल्य लब्धि आती है, तो हार तुल्य गुण की वृद्धि होने से भाज्य तुल्य लब्धि बढ़ैगी और दो आदि संख्या से गुणित हार तुल्य गुण की वृद्धि होने से, दो आदि संख्या से गुणित भाज्य-तुल्य लब्धि बढ़ैगी। इससे 'इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते ते वा भवेतां बहुधा गुणाप्ती' यह वक्ष्यमाण सूत्र उपपन्न होता है। और इसी रीति से हारके समान गुणक का ह्रास होने से भाज्य के समान लब्धि में ह्रास होता है इससे 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम्' यह और 'ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः फलं गुणः स्यादधरो हरेण' यह कहा ह। भाज्य को गुणोनहार से गुण दें और उसमें क्षेप घटा दें तो तीन खण्ड होते हैं—भा.हा १ भा· गु १ क्षे १ पहले खण्ड में, हार का भाग देने से भाज्य लब्ध होता है और दूसरे, तीसरे खण्डों के योग में हार का भाग देने से ऋणलब्धि आती है। इस कारण क्षेप की धनर्णता के विपर्यास से गुण से घटे हार के समान गुण में, लब्धि से घटे भाज्य के समान लब्धि योग्य है। इसलिये धनक्षेप के लब्धि-गुण अपने हार से तष्टित ऋणक्षेप के होते हैं और ऋणक्षेप के लब्धि-गुण अपने हार से तष्टित धनक्षेप के होते हैं। इस से 'एवं तदैवात्र यदा समास्ताः स्युर्लब्धयश्चेद्विषमास्तदानीम्। यथागतौ लब्धि गुणौ विशोध्यौ स्वतक्षणाच्छेषमितौ तु तौ स्तः॥' यह और 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तो वियोगजे' यह भी उपपन्न हुआ।

एवं तदैवात्र यदा समास्ताः
स्युर्लब्धयश्चेद्विषमास्तदानीम्।
यथागतौ लब्धिगुणौ विशोध्यौ
स्वतक्षणाच्छेषमितौ तु तौ स्तः॥३०॥

अथागतफलेषु विषमेषु सत्सु विशेषमुपजातिकयाह—एवमिति। एवं तदैव स्यात् यदा अत्र परस्परभजने ता आगता लब्धयः समाः स्युः, द्वे चतस्रः षट् अष्टावित्यादयः। यदि तु ता लब्धयो

विषमाः स्युः, एका तिस्रः पञ्च सप्तेत्यादयः तदानीं कथितप्रकारेण यथा आगतौ लब्धिगुणौ तौ स्वतक्षणाच्छोध्यौ शेषतुल्यौ तौ लब्धिगुणौ स्तः। तक्ष्यते तनूक्रियतेऽनेनेति तक्षणः। 'तक्ष्णोति' इति तक्षण इति वा। स्वश्चासौ तक्षणश्च स्वतक्षणः तस्मात्। गुणो दृढहाराच्छोध्यो लब्धिर्दृढभाज्याच्छोध्येति तात्पर्यम्॥

यहाँ उक्त प्रकार से सिद्ध हुई लब्धियाँ यदि सम संख्या में अर्थात् दो, चार, छ, आठ आदि हों तब कोई दूसरी क्रिया नहीं करनी पड़ती और यदि विषम अर्थात् एक, तीन, पाँच, सात आदि हों तो लब्धि-गुण को अपने-अपने तक्षण अर्थात् दृढ भाज्य-हार से घटाने पर वास्तव लब्धि-गुण होते हैं॥

५९ (भवति कुट्टविधेर्युतिभाज्ययोः
समपवर्तितयोरपि वा गुणः।
भवति यो युतिभाजकयोः पुनः
स च भवेदपवर्तनसंगुणः)॥ ३१॥

अथ प्रकारान्तरेण गुणकमाह–भवतीति। युतिः क्षेपः। युतिभाज्ययोः समपवर्तितयोः सतोरपि 'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ-' इति यथोक्तात्कुट्टकविधेर्वा गुणः स्यात्। अपिः समुच्चये। वा प्रकारान्तरे। क्षेपभाज्ययोरपवर्तनसंभवेऽप्यपवर्तनमकृत्वापि गुणः सिध्यति। यद्वा तयोरपवर्तितयोः सतोरपि यथोक्तकुट्टकविधिना स एव गुणः स्यादित्यर्थः। तेन गुणेन भाज्यं संगुण्य क्षेपेण संयोज्य हारेण विभज्य लब्धिरत्रावगन्तव्या। भवति य इति। पुनर्विशेषे वाक्यालंकारे वा। युतिभाजकयोस्त्वपवर्तनसंभवे सत्यपवर्तितयोः सतोर्यथोक्तकुट्टकविधिना यो गुणो भवेत् स च भवेत्, परमपवर्तनसंगुणः सन्। चकारादनपवर्तितयोरपि गुणसिद्धिर्भवति। यद्वा अपिवाशब्दसामर्थ्यादध्याहारेण योजना। सा यथा–

युतिभाज्ययोः समपवर्तितयोर्या लब्धिर्भवति, अपि वा युतिभाजकयोस्त्वपवर्तितयोर्यो गुणो भवति, सा लब्धिः स च गुणोऽपवर्तनसंगुणः सन् भवेत् । लिङ्गविपरिणामेन लब्धिरपवर्तनसंगुणा सती भवेदिति योज्यम् । युतिभाज्ययोः समपवर्तितयोर्लब्धिरपवर्तनाङ्केन गुण्या, गुणस्तु यथागत एव । युतिभाजकयोस्त्वपवर्तितयोर्गुणोऽपवर्तनाङ्केन गुण्यः लब्धिर्यथागता वेत्यर्थः । अत्र 'यद्वा' इत्यादिना व्याख्यातोर्थो युक्ततरोस्ति परं न तथायं शब्दलभ्यः । आचार्याणामपि नायमर्थोऽभिप्रेतः किंतु प्रथम एव । यतस्ते 'शतं हतं येन युतं नवत्या–' इत्याद्युदाहरणे वक्ष्यन्ति 'अत्र लब्धिर्न ग्राह्या गुणघ्नभाज्ये क्षेपयुते हरभक्ते लब्धिश्च' इति । द्रुतविलम्बितवृत्तमेतत् ।

प्रकारान्तर से गुण लाने की विधि–

अपवर्तित भाज्य, क्षेपों पर से 'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ–' इस कुट्टक विधि के अनुसार भी गुण सिद्ध होता है और लब्धि अपवर्तनाङ्क से गुणी हुई वास्तव होती है । अथवा अपवर्तन के संभव होने पर भी, अपवर्तन न देकर भाज्य क्षेपों पर से गुण आता है । अथवा, भाज्य क्षेपों में अपवर्तन देकर, उक्त विधि से गुण आता है। परंतु लब्धि, गुण से गुणित और क्षेप युत भाज्य में, हार का भाग देने से मिलेगी । अपवर्तन के संभव होने पर, हार और क्षेप में अपवर्तन देकर, उक्त विधि से गुण सिद्ध करना । वह अपवर्ताङ्क से गुणित वास्तव होगा । और लब्धि जैसी आती है वही वास्तव होगी॥

उपपत्ति—

गुण से गुणित भाज्य क्षेप युत और हार लब्धि का घात, ये दो पक्ष तुल्य होते हैं–गु×भा + क्षे=हा×ल इनको किसी इष्ट से गुणें तो भी तुल्य हैं इ·×गु·×भा+इ×क्षे=इ×हा×ल । यहां यदि इष्ट गुणित भाज्य को भाज्य, इष्ट गुणित क्षेप को क्षेप, और केवल हार को हार मानें तो, लब्धि को इष्ट-गुणित होना उचित है। क्योंकि दूसरे पक्ष में, हार का भाग देने से, इष्ट-गुणित लब्धि, फल होता

है । अथवा; इष्ट गुणित गुण को गुण, केवल भाज्य को भाज्य, इष्ट गुणित क्षेप को क्षेप, और इष्ट गुणित हार को हार कल्पना करें तो लब्धि आवेगी। क्योंकि दूसरे पक्ष 'इ·×हा·×ल' में इष्ट गुणित हार 'इ·× हा' का भाग देने से लब्धि ही फल मिलता है । यहां इष्ट गुणित गुण को गुण कल्पना करने से '–स च भवेदपवर्तनसंगुणः' यह उपपन्न हुआ ।

अपवर्तनाङ्क इष्ट कल्पना करके उदाहरण दिखलाते हैं—भाज्य २२१ । हार १९५ । क्षेप ६५ । उक्त प्रकार से लब्धि ६ गुण ५ । अथवा, भाज्य-क्षेप में तेरह का अपवर्तन देने से भाज्य १७ हार १९५ क्षेप ५ हुआ । ७ लब्धि और ८० गुण आया । अब भाज्य १७ गुण ८० से गुणित १३६० क्षेप ५ युत १३६५ में हार १९५ का भाग देने से ७ लब्धि आई । यह अपवर्तनाङ्क १३ से गुणित प्रकृत भाज्य २२१ में ९१ लब्धि हुई । अब भाज्य २२१ गुण ८० से गुणित १७६८० हुआ, इसमें क्षेप ६५ जोड़ने से १७७४५ हुआ । हार १९५ का भाग देने से ९१ लब्धि आई । लब्धि-गुण ९१ । ८० अपने अपने दृढ़ भाज्य हार १७ । १५ से तष्टित पहले के तुल्य लब्धि-गुण सिद्ध हुए ६ । ५ । यहां कुट्टकीय भाज्य १७ अपवर्ताङ्क १३ से गुणा भाज्य है, २२१ भाज्य है । इसलिये लब्धि को भी अपवर्ताङ्क से गुण देते हैं । अथवा, हार-क्षेप ही में तेरह का अपवर्तन देने से भाज्य २२१ हार १५ क्षेप ५ हुआ । यहां भी लब्धि ७४ गुण ५ आया । अब भाज्य २२१ गुण ५ से गुणित ११०५ और क्षेप ५ जोड़ने से १११० हुआ, इस में हर १५ का भाग देने से ७४ लब्धि आई । और गुण ५ अपवर्तनाङ्क १३ से गुणित वास्तव हुआ ६५ । इस भाँति लब्धि-गुण ७४।६५ हुए, इन को अपने अपने तक्षण १७।१५ से शोधित करने से, वही लब्धि-गुण हुए ६।५ यहां कुट्टकीय हार १५ अपवर्ताङ्क १३ से गुणित वास्तव हार १९५ हुआ । अथवा, भाज्य-क्षेप में तेरह का अपवर्तन देने से, भाज्य १७ हार १९५ क्षेप ५ हुआ, हार क्षेप में पांच अपवर्तन देने से भाज्य १७ हार ३९ क्षेप १ । उक्त विधि से ७।

१६ लब्धि-गुण। भाज्य १७ गुण १६ से गुणित २७२ हुआ इस में क्षेप १ जोड़ने से २७३ हार ३६ का भाग देने से ७ लब्धि मिली लब्धि ७ गुण १६ क्रम से १३ । ५ अपवर्ताङ्क से गुणित ६१।८० हुए इनको अपने अपने तक्षण १७ । १५ से तष्टित करने से, प्रकृत भाज्य, हार संबन्धी लब्धि गुण मिले ६ । ५ अब भा १७ हा १५ क्षे ५ दृढ भाज्य, हार और क्षेप हैं, यहां हार-क्षेप में पाँच का अपवर्तन देने से भाज्य १७ हार ३ और क्षेप १ हुआ। उक्त रीति से ६ । १ लब्धि गुण मिले। भाज्य १७ गुण १ से गुणित १७ में क्षेप १ जोड़ने से १८ हार ३ का भाग देने से ६ लब्धि हुई। यहां गुण १ अपवर्ताङ्क ५ से गुणित ५ हुआ। इस भाँति ६ । ५ ये दृढ भाज्यहारोपपन्न लब्धि-गुण सिद्ध हुए॥

योगजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तो वियोगजे।
'धनभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यजे॥'

अथ ऋणक्षेपे ऋणभाज्ये वा सति विशेषमनुष्टुभाह—योगजे इति। योगजे धनक्षेपजे ये गुणाप्ती ते स्वतक्षणाच्छुद्धे वियोगजे भवतः। गुणो दृढहराच्छुद्धः सन् लब्धिर्दृढभाज्याच्छुद्धा सती ऋणक्षेपे भवतीत्यर्थः। एवं धनभाज्योद्भवे गुणाप्ती तद्वत्स्वतक्षणाच्छुद्धे ऋणभाज्यजे भवतः। अत्रोत्तरार्धे—

'ऋणभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यके'

इत्यपि पाठः क्वचिल्लभ्यते। तस्यायमर्थः—योगजे गुणाप्ती स्वतक्षणाच्छुद्धे वियोगजे भवतः। तद्वदृणभाज्योद्भवे भवतः। तद्वदृणभाजकेऽपि गुणाप्ती भवतः क्षेपभाज्यहाराणामन्यतमे ऋणे सति पूर्वसिद्धे गुणाप्ती स्वतक्षणाच्छोध्ये इत्यर्थः। एवं द्वौ चेदृणगतौ तदा पुनरपि स्वतक्षणाच्छोध्ये इत्यर्थः। एवं त्रयाणामप्यृणत्वे त्रिवारं स्वतक्षणाच्छोध्ये इत्यर्थः। अयमप पाठः, नहि भाजकस्य धनत्वे ऋणत्वे वास्ति कश्चिदङ्कतो विशेषो येनोपायान्तर-

मारभ्येत किंतु धनर्णता व्यत्यासमात्रं लब्धेः। भाज्यस्य तु धनत्वे ऋणत्वे च क्षेपयोगे च क्रियमाणेऽस्त्यङ्कतोपि विशेष इति तस्यर्णत्वे उपायान्तरमारम्भणीयमेव। आचार्यस्याप्यनभिमत एवायं पाठः, यतः 'अष्टादशगुणाः केन दशाढ्या वा दशोनिताः। शुद्धं भागं प्रयच्छन्ति क्षयगैकादशोद्धृताः' इत्युदाहृत्य भाज्यः १८। हारः ११ क्षेपः १० अत्र भाजकस्य धनत्वे कृते गुणलब्धी ८। १४। ऋणेऽपि भाजके एते एव; किंतु लब्धिः ऋणगता कल्प्या भाजकस्य ऋणरूपत्वात् ८। १४ इति वक्ष्यति। अस्मिन्पाठेऽर्थाशुद्धिरप्युदाहरणविवरणावसरे प्रतिपादयिष्यते। वस्तुतस्तूत्तरार्द्धमनपेक्षितमेव। पूर्वार्धेनैव गतार्थत्वात्। तथाहि—योगजे गुणाप्ती वियोगजे भवत इति तदर्थः। तत्र भाज्यक्षेपयोर्धनत्वे ऋणत्वे वा ये गुणाप्ती ते योगजे। यत उभयोर्धनऋणत्वे वा 'योगे युतिः स्यात्क्षययोः स्वयोर्वा—' इति नास्ति कश्चिदङ्कतो विशेषः। यदा पुनर्भाज्यक्षेपयोरन्यतरस्य ऋणत्वं तदा 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः' इत्युक्तत्वादन्तरे क्रियमाणे भवत्यङ्कतोपि विशेष इति तदर्थमुपायान्तरमारम्भणीयम्। तदर्थमुक्तम् 'स्वतक्षणाच्छुद्धे वियोगजे भवत इति'। अस्मात्पूर्वार्धार्थादतिरिक्तः को वार्थ उत्तरार्धेन प्रतिपाद्यते येन तदपेक्षितं स्यात्। अयमर्थः 'यद्गुणाक्षयगषष्टिरन्विता–' इत्युदाहरणे "धनभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यजे, इति मन्दावबोधार्थं मयोक्तम्। अन्यथा 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे–' इत्यादिनैव तत्सिद्धेः" इति वदताचार्येणैव प्रतिपादयिष्यते। तस्मात्सिद्धान्तान्तर्गतबीजमूलसूत्रे पूर्वार्धमात्रं द्वितीयमर्धं तु तद्विवरणरूपेऽस्मिन्बीजगणिते बालावबोधार्थमुक्तमतस्तत्पृथग्गणनां नार्हति। अतः कुट्टकसूत्रेष्वनुष्टुभां चतुष्टयमेव न सार्धं तत्, अनुष्टुप्त्रयमेका च गाथेति कल्पनस्यान्याय्यत्वादित्यलं विस्तरेण॥

ऋणक्षेप, ऋणभाज्य में विशेष–

धनक्षेप संबन्धी लब्धि-गुण अपने अपने तक्षण में घटाने से ऋणक्षेप के होते हैं अर्थात् दृढहार में शोधित गुण गुण, दृढभाज्य में शोधित लब्धि, लब्धि होती है। इसी भाँति धनक्षेप सम्बन्धी लब्धि-गुण अपने अपने तक्षणों में शोधित, ऋणभाज्य के होते हैं॥

गुणलब्ध्योःसमं ग्राह्यं धीमता तक्षणेफलम्३२

अथ क्षेपे हारमात्राद्भाज्यमात्राद्वा हारभाज्याभ्यां वा न्यूने कचिद्विशेषमुत्तरार्धेनाह–गुणलब्ध्योरिति। 'ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः फलं गुणः स्यादधरो हरेण' इत्यत्र गुणलब्धिसंबन्धिनि तक्षणे क्रियमाणे सत्युभयत्र तक्षणस्य फलं तुल्यमेव ग्राह्यम्। केन धीमता बुद्धिमता। हेतुगर्भमिदम्। तथाहि–उभयत्र तक्षणे क्रियमाणे यत्राल्पं तक्षणफलं लभ्यते तत्तुल्यमेवान्यत्रापि ग्राह्यं न त्वधिकं प्राप्तमपि। अत्र पुस्तकेषु 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं–' इत्यादि-श्लोकार्धस्य 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे–' इत्यतः प्राक् पाठो दृश्यते स तु लेखकदोषज इति प्रतिभाति पुस्तकपाठक्रमस्वीकारे तु 'गुण-लब्ध्योः समं ग्राह्यं' इत्यत्र प्रकारान्तरार्थं प्रवृत्तस्य 'हरतष्टे धन-क्षेपे–' इत्येतस्य सूत्रस्य व्यवधानं स्यात्। उदाहरणक्रमाविरोधश्च स्यात्। लीलावतीपुस्तकेषु पुनरस्मल्लिखितक्रम एवास्ति, युक्तश्चाय-मिति प्रतिभाति॥

दूसरा विशेष–

'ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः फलं गुणः स्यादधरो हरेण–' इस प्रकार के अनुसार अपने अपने तक्षण से जो लब्धि गुण तष्टित किये जाते हैं, वहां पर समान फल लेना चाहिये अर्थात् दोनों स्थानों में जहां अल्प तक्षण फल मिले उसी के तुल्य दूसरे स्थान में भी लेना किंतु न्यूनाधिक लब्धि-फल को नहीं लेना चाहिए।

उपपत्ति–

भाज्य गुण से गुणित एक खण्ड, क्षेप दूसरा खण्ड, इन दोनों में

से एक के ऋण होने से धन, ऋण का अन्तर होता है, और ऋण भाज्य क्षेप में योग होता है, यह सब बातें सुगम हैं ॥

६०

हरतष्टे धनक्षेपे गुणलब्धी तु पूर्ववत् ॥ क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः शुद्धौ तु वर्जिता ३३

अथात्र गुणलब्ध्योस्तक्षणे फलयोरतुल्यता यथा न भवति तथा प्रकारान्तरमनुष्टुभाह--हरतष्ट इति । यत्र क्षेपो हारादधिकस्तत्र हारेण क्षेपस्तष्टयः तष्टक्षेपमेव प्रकल्प्य पूर्ववद्गुणलब्धी साध्ये । तत्र यत्र गुणो यथागत एव, लब्धिस्तु क्षेपतक्षणलाभाढ्या कार्या । क्षेपस्य तक्षणमवशेषणं तत्र यो लाभः फलं तेन आढ्या युक्ता एवं धनक्षेपे, शुद्धौ ऋणक्षेपे तु हरतष्टे कृते सति पूर्ववत् 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तो वियोगजे' इत्युक्तप्रकारेण ये गुणाप्ती स्तस्तत्र लब्धिः क्षेपतक्षणलाभेन वर्जिता कार्या यदा तु भाज्यादन्यूने हारान्न्यूने क्षेपे गुणलब्ध्योस्तक्षणे कचित्फलवैलक्षण्यं स्यात्तत्रैतस्य सूत्रस्याप्रवृत्तेः 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं-' इत्यादिनैव तक्षणफलं ग्राह्यमिति । यथा भाज्यः ३।हारः ४।क्षेपः ३। अत्रोक्तवज्जातं राशिद्वयम् | ल ३ | गु ३ | अत्र गुणतक्षणे किंचिन्न लभ्यते लब्धितक्षणे त्वेकः प्राप्यते स न ग्राह्यः । एवं क्षेपस्य हरेण तक्षणेऽपि भाज्यादन्यूनतया यदि कचित्फलवैषम्यं स्यात्तत्रापि 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं-' इत्यादिनैव तक्षणफलं ग्राह्यमिति। यथा भाज्यः ३ । हारः ४ । क्षेपः ७ । एवंविधस्थले फलयोर्यथा वैषम्यं न भवति तथा प्रकारान्तरं न दृश्यते ॥

दूसरा विशेष-

जिस स्थान में क्षेप हार से अधिक हो, वहां हार से तष्टित किये गये क्षेप को क्षेप कल्पना कर के उक्त रीति से गुण-लब्धि सिद्ध करना । वहां गुण जो आया है वही होगा और लब्धि, क्षेप के

तष्टित करने में जो फल आया है उस से जुड़ी हुई वास्तव होगी, यह धनक्षेप में जानना चाहिए। ऋणक्षेप में, क्षेप को हर से तष्टित करने के बाद 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तो वियोगजे' इस रीति के अनुसार गुण-लब्धि सिद्ध करना वहां गुण तो यही वास्तव होगा पर लब्धि, क्षेप के तष्टित करने से जो फल आया है, उस को घटाने से वास्तव होगी। जहां कहीं क्षेप, भाज्य से न्यून न हो और हार से न्यून हो, वहां गुण-लब्धि के तष्टित करने में, कहीं फल का वैषम्य (कमीवेशी) होगा, तो इस विधि की प्रवृत्ति न होने से 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम्' इस सूत्र के अनुसार फल लेना चाहिये॥

अथवा भागहारेण तष्टयोः क्षेपभाज्ययोः॥
गुणः प्राग्वत्ततो लब्धिर्भाज्याद्धतयुतोद्धृतात्॥

अथ भाज्येऽपि हरादधिकेऽनुष्टुभा विशेषमाह—अथवेति। यत्र भाज्यक्षेपौ हरादधिकौ तत्र पूर्ववद्वा क्षेपमात्रतक्षणेन वा गुणाप्ती साध्ये। अथवा भाज्यक्षेपौ द्वावपि हरेण तष्टौ तष्टयोः क्षेपभाज्ययोः प्राग्वदेव गुणाप्ती साध्ये तत्र गुण एव ग्राह्यो न लब्धिः। कथं तर्हि लब्धिरवगन्तव्येति तदाह—भाज्याद्धतयुतोद्धृतादिति। हतश्चासौ युतश्च हतयुतः, हतयुतश्चासावुद्धृतश्चेति हतयुतोद्धृतस्तस्मात्। गुणेन गुणितात्क्षेपेण युताद्भाजकेन भक्तादुद्दिष्टाद्भाज्याद्या लब्धिर्भवति सा ज्ञेयेत्यर्थः। अस्त्यत्र लब्धिज्ञाने प्रकारान्तरमपि। तथाहि—भाज्यतक्षणलाभो गुणेन गुणनीयः पश्चात्क्षेपतक्षणलाभेन संस्कार्यः, संस्कृतेन तेन गणितागता लब्धिः संस्कार्या सा लब्धिर्भवतीति गौरवादाचार्यैरिदं नोक्तम्॥

दूसरा विशेष—

जहां पर भाज्य-क्षेप, हार से अधिक हों वहां पूर्व प्रकार से अथवा, क्षेपमात्र को तष्टित कर, गुण-लब्धि सिद्ध करना। अथवा भाज्य-क्षेपों को हार से तष्टित कर के उन तष्टित भाज्य-क्षेप पर से उक्त रीति से गुण-लब्धि सिद्ध करने से गुण वास्तव होगा। परंतु लब्धि

वास्तव न होगी, वह गुण से गुणित क्षेप युक्त भाज्य में, हार का भाग देने से वास्तव होगी ॥

क्षेपाभावोऽथ वा यत्र क्षेपः शुध्येद्धरोद्धृतः ॥ ज्ञेयः शून्यं गुणस्तत्र क्षेपो हारहृतः फलम् ३५

अथ क्षेपाभाव एकादिगुणहरसमे वा क्षेपेऽनुष्टुभा विशेषमाह–क्षेपाभाव इति । यत्रोदाहरणे क्षेपस्य अभावो राहित्यं स्यात् अथवा क्षेपो हरेण उद्धृतो भक्तः शुध्येत् निःशेषतां गच्छेत् तत्र शून्यं गुणः हारहृतः क्षेपः फलं लब्धिरित्यर्थः ॥

दूसरा विशेष—

जिस उदाहरण में क्षेप न हो अथवा हार के भाग देने से वह निःशेष होता हो, वहां गुण शून्य होगा और क्षेप में हार का भाग देने से जो फल मिलेगा वही लब्धि होगी ॥

*इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते ते वा भवेतां बहुधा गुणाप्ती ।

अथ गुणलब्ध्योरनेकत्वमुपजातिकापूर्वार्धेनाह–इष्टेति । स्वस्य स्वस्य हरः स्वस्वहरः, इष्टेन आहतः, इष्टाहतः, इष्टाहतश्चासौ स्वस्वहरश्च इष्टाहतस्वस्वहरः, तेन इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते गुणाप्ती गुणलब्धी बहुधा भवेताम् । इष्टेन गुणितं हरं गुणे प्रक्षिपेत्, तेनैवेष्टेन गुणितं भाज्यं लब्धौ च प्रक्षिपेत् । एवमेते गुणाप्ती इष्टकल्पनवशादनेकधा भवत इत्यर्थः ॥

एक गुण लब्धि से दूसरे गुण लब्धि लाने का प्रकार—

उक्त प्रकार से सिद्ध जो लब्धि गुण हों उनको इष्ट से गुणित अपने अपने हरों से युक्त करने से दूसरे लब्धि-गुण होंगे अर्थात् इष्ट

---

* अस्यैव पद्यस्योत्तरमर्धम् 'क्षेपं विशुद्धिं परिकल्परूपं पृथक् पृथक् ये गुणकारलब्धी' इति ।

गुणित हर को गुण में, और उसी इष्ट से गुणित भाज्य को लब्धि में जोड़ने से एक ही गुण लब्धि पर से इष्ट वश अनेक गुण लब्धि सिद्ध होंगे ।

उपपत्ति—

भाज्य गुण से गुणित एवं क्षेपयुक्त और हार लब्धि का घात आपस में समान होते हैं—

गु × भा + क्षे = हा × ल·

इन में इष्ट गुणित हार इ × हा जोड़ देने से भी समान ही रहे—

गु × भा + क्षे + इ × हा = हा × ल + इ × हा·

दूसरे पक्ष में हार का भाग देने से इष्टाङ्क और लब्धि की योगरूप लब्धि आती है। इससे 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः—' यह उपपन्न हुआ। क्योंकि क्षेप तक्षित करने से जो फल (लब्धि) आता है उसी को इष्ट अङ्क कल्पना किया है।

इसी भाँति पहले पक्ष में, दूसरे खण्ड को हर से ताक्षित धन क्षेप के तुल्य कल्पना किया और तीसरा खण्ड इष्ट और हार का घात है, वह क्षेप को तक्षित करने से जो फल मिला है, उस से गुणित हार है। इसलिये, उन दोनों के योग को क्षे + इ × हा मुख्य क्षेप कल्पना किया। अब यहाँ पहला खण्ड गुण गुणित भाज्य का स्वरूप है गु· × भा इसमें मुख्य क्षेप जोड़ कर, हार का भाग देने से मुख्य लब्धि मिलनी चाहिये। क्योंकि, दूसरे पक्ष में हार का भाग देने से इष्ट और लब्धि की योगरूप इ + ल + मुख्य लब्धि आती है। इस से धनक्षेप में जो कहा है, वह उपपन्न हुआ।

इस प्रकार ऋणक्षेप में पहले पक्ष को इष्ट और हार के घात से हीन करने से भी समान ही हैं—

गु· × भा· − क्षे − इ. × हा = हा· × ल − इ. × हा

यहाँ पर पहले के तुल्य क्रिया करने से इष्टोन लब्धि रूप लब्धि आती है। इसलिये 'शुद्धौ तु वर्जिता—' यह उपपन्न हुआ।

अथवा, क्षेप के दो खण्ड किये—एक आदि से गुणित हार के समान एक खण्ड और शेष के समान दूसरा खण्ड। यहाँ शेष

समान क्षेप से जो गुण सिद्ध किया है उससे गुणित और शेष मित क्षेप से युक्त भाज्य में, हार का भाग देने से शेष नहीं रहेगा। किंतु क्षेप का पहला खण्ड, एक आदि गुणित हार के समान होने से, इस क्षेप खण्ड में हार का भाग देने से क्षेप के तक्षण फल के समान लब्धि आती है। उसको पहली लब्धि में जोड़ देने से भी वही बात सिद्ध हुई।

इसी प्रकार भाज्य-क्षेप भी, हार से तष्टित किये जाते हैं और वहाँ भी उक्त रीति से उपपत्ति जाननी चाहिये। जैसे क्षेप के दो खण्ड किये हैं वैसे ही भाज्य के भी दो खण्ड करना। भाज्य को तष्टित करने से जो लब्धि आवे उसको गुण से गुणित और क्षेपतक्षण फल से संस्कृत (युक्त-हीन) करके फिर उसका गणितागत लब्धि में संस्कार (ऋण-धन) करने से वह मुख्य लब्धि होगी। परंतु यह बात आचार्य ने गौरव भय से नहीं कही किंतु लाघव से 'भाज्याद्धतयुतोद्धृतात्' यही कहा है।

जिस स्थान में क्षेप नहीं होता वहाँ गुण शून्य होता है। उस शून्य गुण से भाज्य को गुणने से गुणन फल शून्य और उसमें हार का भाग देने से लब्धि भी शून्य ही आती है, यह बात अति सुगम है। इस भाँति हार का भाग देने से, यदि क्षेप में निःशेषता हो तो भी गुण शून्य ही होगा और उस से भाज्य को गुणने से गुणन फल शून्य होता है और वहाँ क्षेप के जोड़ने से हार का भाग देने से 'क्षेपो हारहृतः फलम्' यही संपन्न होता है। इस सूत्र से और 'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ–' इस सूत्र से गुण लब्धि के ज्ञान में बीज के 'नवाङ्कुर' टीकाकार कृष्णदैवज्ञ ने लाघव दिखलाया है—जैसा—भाज्य= १०० । हार=६३ । क्षेप=३७ । उक्त प्रकार से वल्ली हुई।

१
१
१
२
१
३७
०

इस से लब्धि-गुण हुए ९९।६२। अथवा, भाज्य १०० में हार ६३ का भाग देने से १ लब्धि और ३७ शेष रहा, इस का फिर भाज्यरूप हार ६३ में भाग देना है पर यहाँ हार ३७ से क्षेप ३७ निःशेष हुआ और लब्धि १ मिली। पहले की लब्धि ही लब्धि है और दूसरी लब्धि क्षेप १ है। उस के नीचे शून्य इस प्रकार वल्ली हुई। १

१

०

लब्धि-गुण १। १ वल्ली विषम है, इस लिये अपने-अपने तक्षण में घटाने से हुए ९९। ६२।

भाज्य=१००। हार=६३। क्षेप=२६ उक्त विधि से वल्ली हुई। १

१

१

२

२

१

२६

०

इस से लब्धि-गुण हुए २। १ अथवा, भाज्य १०० में हार ६३ का भाग देने से पहली लब्धि १ आई, शेष ३७ रहा, इस का हार ६३ में भाग देने से दूसरी लब्धि १ आई, शेष २६ रहा, इस का क्षेप २६ में भाग देने से निःशेष फल १ आया, इससे वल्ली हुई। १

१

१

०

उक्त प्रकार से लब्धि गुण हुए २ । १ ।

भाज्य=१०० । हार=६२ । क्षेप=३३ । उक्त विधि से वल्ली हुई । १
१
१
२
२
१
३३
०

लब्धि-गुण हुए ६१ । ५७ । अथवा भाज्य १०० में हार ६२ का भाग देने से पहली लब्धि १ मिली, शेष ३८ का हार ६२ में भाग देने से दूसरी लब्धि १ आई, फिर शेष २६ का पहले शेष ३८ में भाग देने से तीसरी लब्धि १ आई, शेष ११ रहा । इसका क्षेप ३३ में भाग देने से लब्धि ३ आई इससे वल्ली हुई १
१
१
३
०

लब्धि-गुण हुए ६ । ६ वल्ली के विषम होने से अपने अपने तक्षण में शुद्ध करने से ६१ । ५७ यही पहले लब्धि-गुण आये थे ॥

उदाहरणम्—

एकविंशतियुतं शतद्वयं
यद्गुणं गणकपञ्चषष्टियुक् ।
पञ्चवर्जितशतद्वयोद्धृतं
शुद्धिमेति गुणकं वदाशु तम् ॥ २२ ॥

अथोक्तसूत्राणां क्रमेणोदाहरणानि शिष्यबोधार्थं निरूपयति—

तेषु यत्र त्रयाणामप्यपवर्तनं संभवति लब्धयश्च समास्ताद्दृशमुदाहरणं रथोद्धतयाह—एकेति । स्पष्टम् ।

उदाहरणम्—

ऐसा कौन गुणक है जिस से दोसौ-इक्कीस को गुणा दें और पैंसठ जोड़ कर एक सौ-पंचान्नबे का भाग दें तो वह निःशेष होता है ।

न्यासः। भाज्यः २२१। हारः १९५ क्षेपः६५

अत्र परस्परं भाजितयोर्भाज्यभाजकयोः शेषम् १३। अनेन भाज्यहारक्षेपा अपवर्तिता जाता दृढाः

भा. १७। क्षे.५।
हा. १५।

अनयोर्दृढभाज्यहारयोः परस्परं भक्तयोर्लब्धमधोधस्तदधः क्षेपस्तदधः शून्यं निवेश्यमिति न्यस्ते जाता वल्ली

१
७
५
०

'—उपान्तिमेन स्वोर्ध्वे हते—' इत्यादिकरणेन जातं राशिद्वयम् $\frac{४०}{३५}$ एतौ दृढभाज्यहाराभ्या $\frac{१७}{१५}$ माभ्यां तष्टौ शेषमितौ लब्धिगुणौ $\frac{६}{५}$।

अनयोः स्वतक्षणामिष्टगुणं क्षेप इत्यथवा लब्धिगुणौ $\begin{smallmatrix}२३\\०\end{smallmatrix}$ वा $\begin{smallmatrix}४०\\५४\end{smallmatrix}$ इत्यादि ॥

न्यास । भाज्य=२२१ । हार=१९५ । क्षेप=६५ यहाँ अपवर्तनाङ्क जानने के लिये भाज्य २२१ में हार १९५ का भाग देने से २६ शेष रहा, इसका हार १९५ में भाग देने से १३ शेष रहा, इसका पहले शेष १३ में भाग देने से शेष कुछ नहीं बचता, इस लिये परस्पर भाग देने से १३ अन्त्य शेष रहा और यही उन का अपवर्तनाङ्क है । इस से अपवर्तित भाज्य, हार, क्षेप, दृढ़ हुए—

भा=१७ । क्षे=५ ।
हा=१५ ।

अब इन दृढ भाज्य हारों के आपस में भाग देने से जो लब्धि मिलीं उनको एक के नीचे एक, इस क्रम से स्थापन करने से और उनके नीचे क्षेप, क्षेप के नीचे शून्य रखने से वल्ली निष्पन्न हुई—१
७
५
०

यहाँ उपान्तिम ५ से उस के ऊपर ७ को गुणा ३५ हुआ इसमें अन्त्य ० को जोड़ कर मिटाने से $\begin{smallmatrix}१\\३५\\५\end{smallmatrix}$ ऐसा स्वरूप हुआ । फिर उपान्तिम ३५ से ऊपर १ को गुणाने से ३५ । इस में अन्त्य ५ को जोड़ने से दो राशि हुईं $\begin{smallmatrix}४०\\३५\end{smallmatrix}$ । इन को दृढ भाज्य-हार $\begin{smallmatrix}१७\\१५\end{smallmatrix}$ से तष्टित किया तो शेष रहा $\begin{smallmatrix}६\\५\end{smallmatrix}$ ये क्रम से लब्धि गुण हुए । यहां 'इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते—' इस सूत्र के अनुसार १ इष्ट से अपने अपने हर १७ । १५ को गुणा १७ । १५ हुए, इनको लब्धि-गुण में जोड़ने से $\begin{smallmatrix}२३\\२०\end{smallmatrix}$ दूसरे लब्धि-गुण हुए । इसी भाँति २ इष्ट मानने से $\begin{smallmatrix}४०\\३५\end{smallmatrix}$ । ३ इष्ट $\begin{smallmatrix}५७\\५०\end{smallmatrix}$ । इस प्रकार इष्ट कल्पना से अनेक लब्धि-गुण आवेंगे ।

आलाप—गुण ५ से भाज्य २२१ को गुणा ११०५ हुआ, क्षेप ६५ जोड़ा ११७० हुआ। हार १९५ का भाग देने से निःशेष होता है, यही प्रश्न था। इस प्रकार प्रत्येक गुण से आलाप मिलाकर प्रतीति करनी चाहिये॥

उदाहरणम्—

शतं हतं येन युतं नवत्या
विवर्जितं वा विहृतं त्रिषष्ट्या।
निरग्रकं स्याद्वद मे गुणं तं
स्पष्टं पटीयान् यदि कुट्टकेऽसि॥ २३॥

अथ त्रयाणामपवर्ते 'भवति कुट्टविधेः—' इति सूत्रस्य स्वतन्त्रमुदाहरणं 'योगजे तत्क्षणाच्छुद्धे—' इत्यस्य च क्रमेणोदाहरणद्वयमुपजातिकयाह—शतमिति। येन गुणेन हतं नवत्या युतं त्रिषष्ट्या विहृतं शतं निरग्रकं स्यात्तं गुणं वद। अथ वियोग उदाहरणम्—विवर्जितं वेति। शतं येन हतं नवत्या विवर्जितं त्रिषष्ट्या विहृतं निरग्रकं स्यात्तं गुणं च वद। यदि त्वं कुट्टके पटीयान् पटुतरोऽसि॥

उदाहरण—

वह कौन गुण है, जिस से गुणा नब्बे से जुड़ा और तिरसठ से भाजित सौ निःशेष होता है।

अथवा, ऐसा कौन सा गुण है कि जिस से गुणित, नब्बे से हीन और तिरसठ से भाजित सौ निःशेष होता है।

न्यासः। भाज्यः १००। हारः ६३। क्षेपः ९०

अत्र वल्ली १
१
१
२
२
१
९०
०

'–उपान्तिमेन–' इत्यादिना जातं राशिद्वयम्

$\frac{२४३०}{१५३०}$ पूर्ववल्लब्धिगुणौ $\frac{३०}{१८}$।

अथवा भाज्यक्षेपौ दशभिरपवर्तितौ भा. १०। क्षे. ९। हा. ६३।

एभ्योऽपि पूर्ववद्वल्ली ०
६
३
९
०

'–उपान्तिमेन–' इत्यादिना राशिद्वयम् $\frac{२७}{१७१}$

पूर्ववज्जातौ लब्धिगुणौ $\begin{matrix}७\\४५\end{matrix}$

अत्र लब्धयो विषमा इति स्वतक्षणाभ्या- $\begin{matrix}१०\\६३\end{matrix}$ माभ्यां शोधितौ जातौ लब्धिगुणौ $\begin{matrix}३\\१८\end{matrix}$।

अत्र लब्धिर्न ग्राह्या गुणघ्नभाज्ये क्षेपयुते हारभक्ते लब्धिश्च ३०। अथवा, भाज्यक्षेपापवर्तनेन १० पूर्वानीता लब्धिः ३ गुणिता जाता सैव लब्धिः ३०। अथवा, हारक्षेपौ नवभिरपवर्तितौ

भा. १००। क्षे. १०।
हा. ७।

पूर्ववद्वल्ली $\begin{matrix}१४\\३\\१०\\०\end{matrix}$। जातं राशिद्वयम् $\begin{matrix}४३०\\३०\end{matrix}$

तक्षणे जातम् $\begin{matrix}३०\\२\end{matrix}$ हारक्षेपापवर्तनेन ९ गुणं संगुण्य जातौ लब्धिगुणौ तावेव $\begin{matrix}३०\\१८\end{matrix}$

अथवा भाज्यक्षेपौ हारक्षेपौ चापवर्त्य न्यासः।

भा. १०। क्षे. १।
हा. ७।   अत्र जाता वल्ली $\begin{matrix}१\\२\\१\\०\end{matrix}$

पूर्ववज्जातं राशिद्वयम् $\frac{३}{२}$ तक्षणाज्जातं तदेव $\frac{३}{२}$ भाज्यक्षेपहारक्षेपापवर्तनेन क्रमेण लब्धिगुणौ गुणितौ जातौ तावेव $\frac{३०}{१८}$ गुणलब्ध्योः स्वहारौ क्षेपावित्यथवा लब्धिगुणौ $\frac{१३०}{८१}$ वा $\frac{२३०}{१४४}$ इत्यादि।

योगजे गुणाप्ती $\frac{१८}{३०}$ स्वतक्षणाभ्यामाभ्यां $\frac{६३}{१००}$ शुद्धे जाते नवतिशुद्धौ गुणाप्ती $\frac{४५}{७०}$ वा। $\frac{१०८}{१७०}$ वा। $\frac{१७१}{२७०}$ इत्यादि।

न्यास। भाज्य=१०० । हार=६३ । क्षेप=९० । यहाँ हार-भाज्यों के परस्पर भाग देने से १ शेष रहा, इसलिये यही अपवर्तनाङ्क हुआ, उससे अपवर्तन न देकर, उक्त प्रकार से वल्ली निष्पन्न हुई १
१
१
२
२
१
९०
०

'—उपान्तिमेन, स्वोर्द्धे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यजेन्मुहुः स्यादिति राशियुग्मम्' इस के अनुसार दो राशि हुईं २४३०
१५३०.

अपने-अपने हार से तष्टित लब्धि-गुण हुए $\frac{३०}{१८}$ अथवा, भाज्य

क्षेप में १० से अपवर्तित भाज्य=१०। हार=६३। क्षेप=६।
उक्त रीति से वल्ली हुई ०
६
३
५
०

पूर्व प्रकार से दो राशि हुई $\begin{matrix} २७ \\ १७१ \end{matrix}$ तष्टित $\begin{matrix} ७ \\ ४५ \end{matrix}$ यहाँ लब्धि विषम थी, इसलिये अपने-अपने तक्षण $\begin{matrix} १० \\ ६३ \end{matrix}$ में तष्टित लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix} ३ \\ १८ \end{matrix}$ यहाँ लब्धि, भाज्य गुण से गुणित, क्षेपयुत और हार से भाजित वास्तव लब्धि ३० हुई। अथवा, पहली लब्धि ३ को अपवर्ताङ्क १० से गुण देने से, वास्तव लब्धि ३० हुई। इस भाँति वही लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix} ३० \\ १८ \end{matrix}$।

अथवा, हार क्षेप में नौ से अपवर्तित भाज्य=१००। हार=७। क्षेप=१०। उक्त रीति से वल्ली १४ उक्त क्रिया के अनुसार $\begin{matrix} ४३० \\ ३० \end{matrix}$ दो राशि
३
१०
०

तष्टित करने से हुए $\begin{matrix} ३० \\ २ \end{matrix}$ यहाँ गुण २ अपवर्तनाङ्क ९ से गुणित से वास्तव गुण १८ हुआ। पूर्व के लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix} ३० \\ १८ \end{matrix}$

अथवा, भाज्य क्षेप में दस का अपवर्तन देकर, फिर हार क्षेप में नौ का अपवर्तन देने से भाज्य=१०। हार=७। क्षेप=१। वल्ली हुई १
२
१
०

और उक्त रीति से दो राशि हुए $\begin{matrix} ३ \\ २ \end{matrix}$। अब यहाँ गुण २ को हार क्षेप के अपवर्तनाङ्क ९ से गुणित वास्तव गुण १८ हुआ और लब्धि ३ को भाज्य क्षेप के अपवर्तनाङ्क १० से गुणाने से वास्तव लब्धि हुई ३०। इस भाँति वही लब्धि-गुण आये $\begin{matrix} ३० \\ १८ \end{matrix}$ और १ इष्ट कल्पना करने से $\begin{matrix} १३० \\ ८१ \end{matrix}$ लब्धि-गुण हुए। २ इष्ट $\begin{matrix} २३० \\ १४४ \end{matrix}$ लब्धि-गुण हुए।

अब धनक्षेपसम्बन्धी $\begin{smallmatrix}३०\\१८\end{smallmatrix}$ ये लब्धि-गुण अपने-अपने तक्षण $\begin{smallmatrix}१००\\६३\end{smallmatrix}$ में शुद्ध किये गये तो ऋणक्षेपसंबन्धी हुए $\begin{smallmatrix}७०\\४५\end{smallmatrix}$ इसी भाँति और भी हुए $\begin{smallmatrix}१७०\\१०८\end{smallmatrix}$ अथवा $\begin{smallmatrix}२७०\\१७१\end{smallmatrix}$ ।

उदाहरणम्–

* यद्गुणा क्षयगषष्टिरन्विता
वर्जिता च यदि वा त्रिभिस्ततः ।
स्यात्त्रयोदशहृता निरग्रका
तं गुणं गणक मे पृथग्वद ॥२ ।

अथ 'धनभाज्योद्भवे तद्वत्–' इत्यस्योदाहरणद्वयं र थोद्धत याह–क्षेपस्य धनत्वेन एकम्, ऋणत्वेन द्वितीयम्, एवमुदाहरण-द्वयं द्रष्टव्यं शेषं स्पष्टम् ॥

उदाहरण—

वह कौनसा गुण है जिससे ऋण साठ को गुणते हैं और उसमें तीन जोड़ या घटा देते हैं, बाद तेरह का भाग देते हैं तो निःशेष होता है ॥

न्यासः । भाज्यः ६०। क्षेपः ३ ।
हारः १३ ।

प्राग्वज्जाते धनभाज्ये धनक्षेपे गुणाप्ती $\begin{smallmatrix}११\\५१\end{smallmatrix}$ एते स्वस्वतक्षणाभ्यामाभ्यां $\begin{smallmatrix}१३\\६०\end{smallmatrix}$ शुद्धे जाते

---

* अत्र ज्ञानराजदैवज्ञः—

अश्वानां त्रिशती च येन गुणिता दिग्वर्गयुक्ता भवे-
द्भाज्या रुद्रमितैर्ईरैर्वद गुणं प्रत्येकमस्त्वागमम् ।
एकाशीतिशतत्रयं कतिगुणं भाज्यं द्विशत्या भजे–
त्पञ्चाशत्सहितं सुधीन्द्र भवता दृष्टोऽसि चेत्कुट्टकः ॥

ऋणभाज्ये धनक्षेपे $\begin{matrix} २ \\ १ \end{matrix}$ अत्र भाज्यभाजकयोर्विजातीययोः 'भागहारेऽपि चैवं निरुक्तम्' इत्युक्तत्वाल्लब्धेः ऋणत्वं ज्ञेयम्। $\begin{matrix} २ \\ १ \end{matrix}$ पुनरेते स्वस्वतक्षणाभ्यामाभ्यां $\begin{matrix} १३ \\ ६० \end{matrix}$ शुद्धे जाते ऋणभाज्ये ऋणक्षेपे गुणाप्ती $\begin{matrix} ११ \\ ५१ \end{matrix}$

* 'ऋणभाज्यऋणक्षेपे धनभाज्यविधिर्भवेत्॥
तद्वत्क्षेपे धनगते व्यस्तं स्यादृणभाज्यके॥
धनभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यजे॥

इति मन्दावबोधार्थं मयोक्तम्। अन्यथा 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे' इत्यादिनैव तत्सिद्धेः। ऋणधनयोर्योगो वियोग एव। अत एव भाज्यभाजकक्षेपाणां धनत्वमेव प्रकल्प्य गुणाप्ती साध्ये। ते योगजे भवतः। ते स्वतक्षणाभ्यां शुद्धे वियोगजे कार्ये। भाज्ये भाजके वा ऋणगते परस्परं भजनाल्लब्धयः ऋणगताः स्थाप्या इति किं प्रयासेन। तथा कृते

---

* 'ऋणभाज्ये' इत्यारभ्य 'भाज्यके' इत्यन्तः पाठः कस्मिंश्चिन्मूलपुस्तके टीकापुस्तके च नोपलभ्यते 'धनभाज्योद्भवे—' इत्यर्धं तु मूलपुस्तकद्वये टीकापुस्तकद्वये चाप्यवलोक्यते। तथा च "इति मन्दावबोधार्थं मयोक्तम्। अन्यथा 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इत्यादिनैव तत्सिद्धेः" इति मूलग्रन्थलेखाच्चास्य गाथारूपस्य श्लोकपादषट्कस्य मूलसूत्रेऽपाङ्क्तेयता प्रतीयत इति विभावयन्तु तत्त्वविदः।

सति भाज्यभाजकयोरेकस्मिन्नृणगते गुणाप्ती '^{1}द्वौ राशी क्षिपेत्तत्र—' इत्यादिना परोक्तसूत्रेण लब्धौ व्यभिचारः स्यात् ॥

न्यास। भाज्य=६०। हार=१३। क्षेप=३। उक्त प्रकार से वल्ली ४ हुई

१
१
१
१
३
०

बाद दो राशि हुए $\genfrac{}{}{0pt}{}{६९}{१५}$ अपने-अपने तक्षणों $\genfrac{}{}{0pt}{}{६०}{१३}$ से तष्टित करने से $\genfrac{}{}{0pt}{}{९}{२}$ यहाँ लब्धि विषम हैं, इस कारण अपने-अपने तक्षणों $\genfrac{}{}{0pt}{}{६०}{१३}$ में शुद्ध लब्धि-गुण हुए $\genfrac{}{}{0pt}{}{५१}{११}$ ये धनभाज्य धनक्षेप संबन्धी हैं; अब इन्हें फिर अपने-अपने तक्षणों $\genfrac{}{}{0pt}{}{६०}{१३}$ में शुद्ध करने से, ऋण-भाज्य, धनक्षेप संबन्धी लब्धि-गुण हुए $\genfrac{}{}{0pt}{}{९}{२}$ यहाँ भाज्य भाजकों के विजातीय होने से 'भागहारेऽपि चैवं निरुक्तम्' इस सूत्र के अनुसार लब्धि ९ को ऋण जानना। फिर उन को $\genfrac{}{}{0pt}{}{६०}{१३}$ इन तक्षणों में शुद्ध करने से ऋणभाज्य ऋणक्षेप में लब्धि-गुण हुए $\genfrac{}{}{0pt}{}{५१}{११}$ यहाँ पर भी, हार-भाज्य के भिन्न जातीय होने से, लब्धि ५१ को ऋण जानना चाहिए।

अब यहाँ इस बात पर ध्यान देना है कि—प्रथम भाज्य, भाजक और क्षेप को धन कल्पना करके लब्धि गुण सिद्ध करना, यदि उद्दिष्ट भाज्य, क्षेप धन अथवा ऋण हों तो, सिद्ध किये हुये लब्धि गुणों पर से ही उद्दिष्ट की सिद्धि होगी। यदि भाज्य, क्षेपों में कोई

१—सूत्रमिदं टीकापुस्तके नोपलभ्यते, किंच कुत्रचिन्मूलपुस्तके पूर्वोक्तसूत्रस्य स्थाने "'इष्टहतेऽधोराशौ—' इत्यादिना पूर्वसूत्रेण" इत्याकारः पाठो दृश्यते। तत्रैतयोः कतरः पाठो ज्यायानिति वक्तुं न शक्यते, सकलसूत्रादर्शनाद्दृढतरप्रमाणानुपलम्भाच्च।

एक धन और दूसरा ऋण हो तो, यथागत लब्धि गुणों को अपने-अपने तत्क्षण में शुद्ध करने से उद्दिष्ट की सिद्धि होगी, और हार के धन होने से कुट्टक में कुछ विशेष न होगा। उक्त रीति से गुण लब्धि धन ही होंगी और भाज्य भाजकों में, यदि कोई ऋण हो तो लब्धि-मात्र को ऋण जानना चाहिये; क्योंकि 'भागहारेऽपि चैवं निरुक्तम्' ऐसा कहा है। इस भाँति एक बार शोधन करने से उद्दिष्ट की सिद्धि होगी। और भाज्य ऋण हो तो अपने-अपने तत्क्षण से एक बार शोधन और क्षेप ऋणगत हो तो दो बार, इस बात को आचार्य ने कहा है ''धनभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यजे' इति मन्दावबोधार्थं मयोक्तम्। अन्यथा 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इत्यादिनैव तत्सिद्धेः। यतो धनर्णयोगो वियोग एव। अत एव भाज्यभाजकक्षेपाणां धनत्व-मेव प्रकल्प्य गुणाप्ती साध्ये। ते योगजे भवतः। ते स्वतक्षणाभ्यां शुद्धे वियोगजे कार्ये" इत्यादि।

अर्थात्—यहाँ धन भाज्य संबन्धी लब्धि-गुण, ऋण भाज्य में होते हैं, यह मैंने मन्दजनों के बोध के लिये कहा है। अन्यथा 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इसी सूत्र से सिद्धि होती है। क्योंकि, धन और ऋण राशि का योग ही अन्तर होता है, इसीलिये भाज्य-भाजक क्षेपों को धन कल्पना करके उक्त रीति से गुण-लब्धि सिद्ध करना वे धनक्षेप में होंगी और उन्हें अपने-अपने दृढ भाज्यहारों में शुद्ध करने से ऋणक्षेप में होंगी।

इस प्रकार ऋणभाज्य में निष्प्रयास कुट्टक की सिद्धि होने पर भी पूर्व आचार्यों ने वृथा परिश्रम किया है, यह कहते हैं—'भाज्ये भाजके वा ऋणगते परस्परभजनाल्लब्धयः ऋणगताः स्थाप्याः किं प्रयासेन' अर्थात् भाज्य अथवा भाजक के ऋणगत होने से उनके आपस में भाग देने से जो लब्धि आती हैं उन्हें ऋणगत स्थापन करना अर्थात् उन सब लब्धियों के शिर पर बिन्दु देकर एक आड़ी लकीर की भाँति लिखना, ऐसा परिश्रम करने का क्या प्रयोजन है? क्योंकि उक्त बात की सिद्धि बड़ी सुगमता से होती है। और प्रयास-

मात्र ही नहीं है, किंतु लब्धि में व्यभिचार भी आता है। जैसा—
प्रकृत उदाहरण में भाज्य=६̇० । क्षेप=३ ।
हार=१३ ।

उक्त विधि से वल्ली हुई
४̇
१̇
१̇
१̇
१̇
३
०

बाद दो राशि ६̇९ / १५ तष्ठित करने से हुए ९̇ / २

लब्धि के विषम होने से अपने-अपने तक्षणों में शुद्ध करने से, ऋण भाज्य धनक्षेप में लब्धि-गुण हुए ५१̇ / ११

यहाँ लब्धि व्यभिचारित होती है, क्योंकि ११ से भाज्य ६̇० गुणित ६६̇० हुआ इसमें क्षेप ३ जोड़ने से ६५७̇ हुआ हार १३ का भाग देने से ५०̇ लब्धि आई और शेष ७ रहा। यदि कहें यहाँ शेष रहने से गुण भी व्यभिचरित होगा, लब्धि में ही व्यभिचार क्यों कहा? सत्य है, लब्धि यहाँ उपलक्षण है, इसलिये गुण का भी व्यभिचार सिद्ध हुआ। लब्धि में व्यभिचार का निश्चय होने से ९̇ / २ ये जो लब्धि गुण आये थे, उन को ज्यों का त्यों रक्खा, अब इस में आलाप मिलता है जैसा—भाज्य ६̇० को गुण २ से गुणित १२̇० हुआ क्षेप ३ जोड़ने से ११७̇ हुआ इस में हार १३ का भाग देने से ऋण लब्धि ९̇ आई। यहाँ आलाप तो कथंचित् मिल गया परंतु 'एवं तदैवात्र यदा समास्ताः स्युर्लब्धयश्चेद्विषमास्तदानीम्। यथा गतौ लब्धिगुणौ विशोध्यौ स्वतक्षणाच्छेषमितौ तु तौ स्तः' इस सिद्धान्त से विरोध आता है, क्योंकि लब्धि विषम आई हैं। और ऐसा मानने से भाज्य, भाजक, क्षेप, इनके धन होने में और

लब्धियों के विषम होने में व्यभिचार ज्यों का त्यों बना रहता है। इसी उदाहरण में उक्त रीति से लब्धि-गुण सिद्ध हुए ६/२ अब यहाँ आलाप भाज्य ६० धन गुण २ से गुणित १२० हुआ, इस में क्षेप ३ जोड़ा १२३ हुआ हार १३ का भाग देने से निःशेष नहीं होता। यदि यह कहें कि धनात्मक विषम लब्धि में अपने-अपने तक्षणों में शोधन आवश्यक है, ऋणात्मक में नहीं, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि उक्त दोष का परिहार नहीं होता, जैसा—इसी उदाहरण में हार मात्र को ऋण कल्पना करने से लब्धि गुण हुए ६/२ अब भाज्य ६० गुण २ गुणित १२० हुआ इस में क्षेप ३ जोड़ा १२३ हुआ इस में हार १३ का भाग देने से निःशेष नहीं होता।

और सम लब्धि में भी व्यभिचार होता है जैसा—वक्ष्यमाण उदाहरण के भाज्य=१८ हार=१ं१ं और क्षेप=१० हैं। उक्त रीति से वल्ली हुई दो राशि ५०/३० तष्टित करने से १४ं/८ हुए।

१ं
१ं
१ं
१ं
१ं
१०
०

यहाँ भाज्य १८ गुण ८ं से गुणित १४४ हुआ क्षेप १० जोड़ा १३४ं हुआ इसमें हार ११ का भाग देने से १२ लब्धि आई और २ शेष रहा, यह सब अनुक्त भी बुद्धिमान् जानते हैं। यहाँ हार के ऋण होने से सम लब्धि में और भाज्य के ऋण होने से विषम लब्धि में, प्राचीन रीति से लब्धि-गुण व्यभिचरित होते हैं।

उदाहरणम्—

अष्टादश हताः केन दशाढ्या वा दशोनिताः।
शुद्धं भागं प्रयच्छन्ति क्षयगैकादशोद्धृताः २५

न्यासः। भाज्यः १८। क्षेपः १०।
हारः १ं१ं।

अत्र भाजकस्य धनत्वं प्रकल्प्य साधितौ लब्धिगुणौ $\begin{smallmatrix}१४\\८\end{smallmatrix}$ एतावेव ऋणभाजके। किंतु लब्धेः पूर्ववदृणत्वं ज्ञेयम्। तथाकृते जातौ लब्धिगुणौ $\begin{smallmatrix}१४\\८\end{smallmatrix}$। ऋणक्षेपे तु 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इत्यादिना लब्धिगुणौ $\begin{smallmatrix}४\\३\end{smallmatrix}$ भाजकस्य धनत्वे ऋणत्वे वा लब्धिगुणावेतावेव, परंतु भाजके भाज्ये वा ऋणगते लब्धेः ऋणत्वं सर्वत्र ज्ञेयम्॥

उदाहरण—

वह कौन-सा गुण है जिस से अठारह को गुणकर, दस जोड़ वा घटा देते हैं और ऋण ग्यारह का भाग देते हैं तो निःशेष होता है।

न्यास। भाज्य=१८। हार=११̇। क्षेप=१०। उक्त प्रकार से वल्ली उत्पन्न हुई १ बाद दो राशि $\begin{smallmatrix}५०\\३०\end{smallmatrix}$ तष्टित $\begin{smallmatrix}१४\\८\end{smallmatrix}$ भाज्य हार और १ क्षेप इन तीनों के धन होने से $\begin{smallmatrix}१४\\८\end{smallmatrix}$ ये लब्धि-गुण हुए, और १ हारमात्र के ऋण होने से भी वही लब्धि-गुण हुए, किंतु लब्धिमात्र १ का ऋणत्व होगा क्योंकि 'भागहारोऽपि चैवं निरुक्तम्' यह कहा है। १० इस भांति ऋण हार में लब्धि-गुण हुए $\begin{smallmatrix}१४\\८\end{smallmatrix}$। अत्र ऋण क्षेप में ० योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इस प्रकार से लब्धि गुण $\begin{smallmatrix}४\\३\end{smallmatrix}$ यहाँ हार धन हो वा ऋण, पर लब्धि-गुण वही होंगे और हार के ऋण होने से लब्धि ऋण होगी। यहाँ सर्वत्र ऋणत्व के निमित्त अपने-अपने तक्षणों में शोधन कहा है सो तभी जानना जब भाज्य क्षेपों में कोई एक ऋण हो और लब्धि भी ऋण तभी होती है जब भाज्य-भाजकों में कोई ऋण हो।

कई लोग 'ऋणभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाजके' ऐसा पाठ कल्पना करके भाजक के ऋण होने पर भी शोधन करते हैं। यह ठीक नहीं

प्रतीत होता, जैसा इस उदाहरण में तीनों के धन होने से, लब्धि-गुण हुए १४/८ और हार मात्र के ऋण होने से अपने-अपने तक्षणों में शोधन किया तो लब्धि हुए ४/३ आलाप——भाज्य १८ गुण ३ से गुणित ५४ हुआ। इस में क्षेप १० जोड़ा ६४ हुआ। अब ऋणहार ग्यारह का भाग देने से ५ लब्धि आई और शेष ९ रहा इसलिये यह असत् हुआ।

उदाहरणम्—

येन संगुणिताः पञ्च त्रयोविंशतिसंयुताः।
वर्जिता वा त्रिभिर्भक्ता निरग्राः स्युः स को गुणः
२६ न्यासः। भा. ५। क्षे २३। अत्र वल्ली १
हा. ३।   १
२३
०

पूर्ववज्जातं राशिद्वयम् ४६/२३ अत्र तक्षणेऽधोराशौ सप्त लभ्यन्ते ऊर्ध्वराशौ तु नव लभ्यन्ते ते नव न ग्राह्याः। 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम्' इत्यतः सप्तैव ग्राह्या इति जातौ लब्धिगुणौ ११/२ वियोगजे एतौ स्वस्वतक्षणाभ्यां शोधितौ जातौ ऋणक्षेपे ६/१ इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ताविति द्विगुणितौ स्वस्व-

हारौ क्षेप्यौ यथा धनलब्धिः स्यादिति कृते जातौ लब्धिगुणौ ४/७ एवं सर्वत्र ज्ञेयम्।

'हरतष्टे धनक्षेपे' इति न्यासः। भा. ५। क्षे. २
हा. ३।

पूर्ववज्जातौ लब्धिगुणौ योगजौ ४/२ एतौ स्वतक्षणाभ्यां शुद्धौ १/१ जातौ वियोगजौ। क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः' इति क्षेपतक्षणलाभेन, योगजलब्धिर्युता १ जाता योगजा 'लब्धिः शुद्धौ तु वर्जिता' इति तक्षणलाभेन, लब्धिरियं १ वर्जिता ६̇ धनलब्ध्यर्थं द्विगुणे हरे क्षिप्ते जातौ तावेव लब्धिगुणौ ४/७ 'अथवा भागहारेण तष्टयोः—' इति न्यासः भा. २। क्षे. २।
हा. ३।

अत्रापि जातं राशिद्वयम् २/२ तक्षणाज्जातं २/२ अत्रापि जातः पूर्व एव गुणः २ लब्धिस्तु 'भाज्याद्धतयुतोद्धतात्' इति गुण २ गुणितो भाज्यः १० क्षेप २३ युतो ३३ हर ३ भक्तो लब्धिः सैव ११॥

अब 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यम्—' 'हरतष्टे धनक्षेपे—' 'अथवा भागहारेण तष्टयोः—' इन सूत्रों की व्याप्ति दिखलाने के लिये उदाहरण—

वह कौन-सा गुण है, जिससे पाँच को गुण देते हैं और उस गुणनफल में तेईस जोड़ वा घटा देते हैं फिर तीन का भाग देते हैं तो निःशेष होता है ॥

न्यास। भाज्य=५। हार=३। क्षेप=२३। उक्त रीति से वल्ली १
१
२३
०

दो राशि $\frac{४}{२}\frac{६}{३}$ यहाँ तक्षण करने में नीचले राशि से सात ७ मिलते हैं और ऊपर के राशि से नौ ६, परंतु नौ ६ नहीं लेना चाहिये किन्तु 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम्' इस सूत्र के अनुसार सात ७ ही लेना उचित है। इस भाँति $\frac{११}{२}$ लब्धि गुण हुए, ये योगज हैं। इस कारण अपने-अपने तक्षणों में शुद्ध करने से वियोगज हुए $\frac{६}{१}$ यहाँ यदि लब्धि धन की इच्छा हुई तो 'इष्टाहतस्वस्व-हरेण–' इस सूत्र के अनुसार दो इष्ट मानने से लब्धि गुण हुए $\frac{४}{७}$ इस प्रकार यदि इष्ट हो तो धन लब्धि सिद्ध कर लेनी चाहिए।

अथवा 'हरतष्टे धनक्षेपे–' इस सूत्र के अनुसार न्यास—

भाज्य=५। क्षेप=२। उक्त विधि से वल्ली १
हार=३। १०
२
०

दो राशि $\frac{४}{२}$ योगज लब्धि-गुण हैं। अपने-अपने तक्षणों में शोधन करने से वियोगज हुए $\frac{१}{१}$ यहाँ 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः—'इस सूत्र के अनुसार क्षेप तक्षण फल ७ को योगज लब्धि ४ में जोड़ने से ११ हुए और 'शुद्धौ तु वर्जिता' के अनुसार वियोगज लब्धि १ में क्षेप तक्षण फल ७ को घटा देने से ६ हुए, इस प्रकार वही लब्धि-गुण हुए $\frac{११}{२}$। $\frac{६}{१}$

'अथवा भागहारेण तष्टयो:—' इस सूत्र के अनुसार न्यास—

भाज्य=२ । क्षेप=२ । उक्त प्रकार से वल्ली ०
हार=३ १
२
०

दो राशि $\frac{४}{२}$, यहां गुण तो पहला ही हुआ, परंतु लब्धि भाज्याद्धतयुतोद्धतात्-' इस सूत्र के अनुसार गुण २ से भाज्य ५ को गुणाने से १० क्षेप २३ जोड़ने से ३३ हुआ इस में हार ३ का भाग देने से वही लब्धि आई ११ ॥

उदाहरणम्—

येन पञ्च गुणिताः खसंयुताः
पञ्चषष्टिसहिताश्च तेऽथ वा ।
स्युस्त्रयोदशहृता निरग्रका-
स्तं गुणं गणक कीर्त्तयाशु मे ॥ २६ ॥

न्यासः । भाज्यः ५ । हारः १३ । क्षेपः ० ।
क्षेपाभावे गुणाप्ती $\frac{०}{०}$ एवं पञ्चषष्टिक्षेपे $\frac{०}{५}$ वा $\frac{१३}{१०}$ इत्यादि ।

'क्षेपाभावोऽथ वा यत्र क्षेपः शुध्येद्धरोद्धतः' इन दोनों बातों के दिखलाने के लिये उदाहरण—

ऐसा कौन गुण है जिससे पाँच को गुणाकर, उस में शून्य अथवा पैंसठ जोड़ देते हैं और तेरह का भाग देते हैं तो निःशेष होता है ॥

दोनों उदाहरणों के न्यास भाज्य=५ । क्षेप=० । वा, भाज्य=५ । क्षेप=६५
हार=१३ । हार=१३ ।

यहाँ पहले उदाहरण में क्षेप का अभाव है और दूसरे में क्षेप ६५ हार १३ का भाग देने से शुद्ध होता है । इसलिये दोनों स्थानों

में शून्य ही गुण हुआ और क्षेप में हार का भाग देने से ०,५ फल हुआ । इस प्रकार लब्धि-गुण सिद्ध हुए ०/० । ५/० और 'इष्टाहतस्व-स्वहरेण—' इस सूत्र के अनुसार १ इष्ट मानने से लब्धि-गुण हुए ५/१३ । १०/१३ । इस प्रकार कल्पना वश अनन्त लब्धि-गुण होंगे ॥

अथ स्थिरकुट्टके सूत्रं वृत्तम्—

क्षेपं विशुद्धिं परिकल्प्य रूपं
पृथक्कयोर्ये गुणकारलब्धी ॥ ३६ ॥
अभीप्सितक्षेपविशुद्धिनिघ्ने
स्वहारतष्टे भवतस्तयोस्ते ।

अथ ग्रहगणिते विशेषोपयुक्तं स्थिरकुट्टकमुपजातिकोत्तरपूर्वार्धाभ्यामाह—क्षेपमिति । क्षेपं धनक्षेपं विशुद्धिमृणक्षेपं रूपं परिकल्प्य तयोर्धनर्णक्षेपयोः पृथक् ये गुणकारलब्धी स्यातां ते अभीप्सितक्षेपविशुद्धिगुणिते स्वहारतष्टे च तयोः क्षेपविशुद्ध्योर्गुणाप्ती भवतः । एतदुक्तं भवति—'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ—' इत्यादिना फलान्यधोधो निवेश्य तदधः क्षेपस्थाने रूपं निवेश्य अन्ते खं च निवेश्य '—उपान्तिमेन, स्वोर्ध्वे हते—' इत्यादिना धनक्षेपे ऋणक्षेपे गुणलब्धी पृथक्-पृथक् साध्ये । अथाभीप्सितक्षेपो यदि धनमस्ति तर्हि धनक्षेपजे गुणाप्ती अभीप्सितक्षेपेण गुणनीये, यदि त्वभीप्सितक्षेपः क्षयोऽस्ति तर्हि ऋणक्षेपजे गुणाप्ती अभीप्सितेन ऋणक्षेपेण गुणनीये । पश्चात्स्वस्वहारेण पूर्ववत्तष्टयेते उद्दिष्टगुणाप्ती स्तः ॥

स्थिर-कुट्टक का प्रकार —

धनक्षेप या ऋणक्षेप को एक ही मानकर उससे जो गुण-लब्धि सिद्ध होती हैं, उनको अभिमत धन अथवा ऋणक्षेप से गुणने और अपने-अपने हार से तष्टित करने से वे धन-ऋणक्षेप में

गुण-लब्धि होंगी, तात्पर्य यह है कि 'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ—' इस सूत्र के अनुसार जो फल सिद्ध हों, उनको एक के नीचे एक, इस रीति से स्थापन करना और क्षेप के स्थान में १ लिख कर उसके नीचे शून्य रखना फिर "उपान्तिमेन, स्वोर्ध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यजेन्मुहुः स्यादिति राशियुग्मम्' इस क्रिया के अनुसार दो राशि सिद्ध करना और उन से गुण-लब्धि लाना वे धनक्षेप अथवा ऋणक्षेप में होंगी। बाद उनको अपने धन किंवा ऋण इष्टक्षेप से गुणकर अपने-अपने हर से तष्टित करने से उद्दिष्ट गुण-लब्धि होंगी॥

उपपत्ति—

यदि रूपक्षेप में उद्दिष्ट गुण-लब्धि आती है, तो इष्ट क्षेप में क्या, इस प्रकार अनुपात से 'क्षेपं विशुद्धिं—' यह सूत्र उपपन्न होता है॥

प्रथमोदाहरणे दृढभाज्यहारयो रूपक्षेपस्य च न्यासः। भा. १७। क्षे. १।
हा. १५।

अत्रोक्तवद्गुणाप्ती $\frac{7}{8}$ एते अभीष्टक्षेपपञ्च-गुणे स्वहारतष्टे जाते $\frac{5}{6}$ ते एव। अथ रूप-शुद्धौ गुणाप्ती $\frac{8}{9}$ एते पञ्चकगुणे स्वहारतष्टे जाते $\frac{10}{11}$ ते एव एवं सर्वत्र।

अब विश्वास के लिये प्रथम उदाहरण के दृढ़ भाज्य हार और रूपक्षेप से गणित दिखलाते हैं—

भाज्य=१७ । क्षेप=१ ।

हार=१५ ।

उक्त विधि से गुण-लब्धि हुई $\frac{7}{8}$ इनको अभिमत क्षेप ५ से गुण देने से ३५ । ४० गुण-लब्धि हुई, अपने-अपने हार से तष्टित करने से वही पहलेवाली गुण-लब्धि हुई $\frac{5}{6}$ और रूप शुद्धि में गुण-

लब्धि हुई $\begin{matrix}८\\९\end{matrix}$ इनको पांच से गुण कर, अपने अपने हार से तष्टित करने से, पञ्च शुद्धि में गुण-लब्धि हुई $\begin{matrix}१\\१\end{matrix}\begin{matrix}०\\१\end{matrix}$ इस भांति सर्वत्र जानना चाहिए ।

अस्य गणितस्य ग्रहगणिते महानुपयोगः। तदर्थं किंचिदुच्यते—

कल्प्याथ शुद्धिर्विकलावशेषं
षष्टिश्च भाज्यः कुदिनानि हारः॥ ३७॥
तज्जं फलं स्युर्विकला गुणस्तु
लिप्ताग्रमस्माच्च कला लवाग्रम् ।
एवं तदूर्ध्वं च तथाधिमासा-
वमाग्रकाभ्यां दिवसा रवीन्द्वोः॥ ३८॥

ग्रहस्य विकलावशेषाद्ग्रहाहर्गणयोरानयनम् । तद्यथा—तत्र षष्टिर्भाज्यः। कुदिनानि हारः। विकलावशेषं शुद्धिरिति प्रकल्प्य साध्ये गुणाप्ती। तत्र लब्धिर्विकलाः स्युः। गुणस्तु कलावशेषम् ।

एवं कलावशेषाल्लब्धिः कला गुणो भागशेषम् ।

तद्भागशेषं शुद्धिः। कुदिनानि हारः। त्रिंशद्भाज्यः। तत्र लब्धिर्भागाः। गुणो राशिशेषम्।

द्वादश भाज्यः । कुदिनानि हारः । राशिशेषं शुद्धिः । तत्र फलं राशयः । गुणो भगणशेषम् ।

भगणा भाज्यः । कुदिनानि हारः । भगणशेषं शुद्धिः । फलं गतभगणाः । गुणोऽहर्गणः स्यादिति ॥

अस्योदाहरणानि प्रश्नाध्याये ।

एवं कल्पाधिमासा भाज्यः । रविदिनानि हारः । अधिमासशेषं शुद्धिः । लब्धिर्गताधिमासाः । गुणो गतरविदिवसाः ।

एवं कल्पावमानि भाज्यः । चान्द्रदिवसा हारः । अवमशेषं शुद्धिः । फलं गतावमानि । गुणो गतचान्द्रदिवसा इति ॥

अथ 'कल्पादिशुद्धिः–' इत्यादि सार्धोपजातिकाचार्यैर्व्याख्यातत्वान्न पुनर्व्याख्यायते किंत्वत्र युक्तिमात्रं प्रदर्श्यते तच्च श्रीबापुदेवपादैः कल्पितम्, केवलाद्विकलाशेषाद्ग्रहेऽवगन्तव्ये यस्य ग्रहस्य तद्विकलावशेषं स्यात् तस्य राश्यंशादयः केचन नियता एव भवेयुर्न यथेष्टकल्प्या इति तावत् सुप्रसिद्धम् । तत्र 'कल्प्यावशुद्धिर्विकलावशेषम्–' इत्यादिना कुट्टककरणे यदि भाज्यहारक्षेपाणामपवर्तनं न संभवेत् तदा तत्र यथागतौ लब्धिगुणावेकविधावेव भवितुं शक्नुतः । 'इष्टाहतस्वस्वहरेण–' इत्यादिनान्ययोर्लब्धिगुणयोर्ग्रहणे लब्धिर्विकलाः षष्टितोऽधिकाः स्युर्गुणः कलाशेषं च कुदिनेभ्योऽधिकं स्यादिति तत्र यौ लब्धिगुणौ

पूर्वस्वस्वहराल्पावागच्छतस्तावेव वास्तवावित्यत्र न कश्चित् संदेहावसरः । यदा पुनर्भाज्यहारक्षेपाणामपवर्तनं संभवेत् तदा तु लब्धिगुणयोः क्रमेण षष्टितः कुदिनतश्चाल्पयोरप्यनेकविधत्वं स्यात् । एवमनेकासु लब्धिषु या लब्धिर्ज्ञातव्यग्रहस्य नियतानां विकलानां मानं स्यात् सैव लब्धिर्विकलात्वेन ग्रहीतुं युज्यते तद्गुण एव च कलाशेषत्वे न । तदितरयोर्लब्धिगुणयोर्ग्रहणे तु तन्मानयोरवास्तवादग्रे क्रिया न निर्वहेत् खिलत्वं चापद्येत ।

यथा—यदा किल भौमस्य विकलाशेषम् २१००५३४१२००० एतावत् स्यात् तदास्मात् 'कल्प्याथ शुद्धिः—' इत्यादिना मध्यमे भौमेऽवगन्तव्ये षष्टिर्भाज्यः ६० विकलाशेषमृणक्षेपः २१००५३४१२००० कल्पकुदिनानि हारः१५७७९१६४५०००० अत्र भाज्यहारक्षेपाणां षष्टिरपवर्तनमस्ति तेनापवर्ते कृते जाता दृढभाज्यहारक्षेपाः । दृ. भा. १ । दृ. क्षे. ३५००८९०२०० } दृ. हृ. २६२९८६०७५०० }

अत्र कुट्टकविधिना लब्धिगुणौ ०। ३५००८९०२०० वा १ । २९७९९४९७७०० इत्यादिकौ षष्टिविधौ स्याताम् । तत्राद्या लब्धिश्चेद्विकलामानं तद्गुणश्च कलाशेषं कल्प्यते तदा पुनः षष्टिर्भाज्यः ६० कलाशेषमृणक्षेपः ३५००८९०२०० कुदिनानि हारः । अत्रापि भाज्यहारक्षेपेषु षष्ट्यापवर्तितेषु सिद्धा दृढभाज्यहारक्षेपाः दृ.भा. १ दृ. क्षे. ५८३४८१७० } दृ. हृ. २६२९८६०७५०० } अत्र कुट्टकविधिना लब्धिगुणौ ०।५८३४८१७० वा१।२६३५६९५५६७० इत्यादिरंशशेषम् ।

पुनस्त्रिंशद्भाज्यः ३०। अंशशेषमृणक्षेपः ५८३४८१७० कुदिनानि हारः । अत्रापि भाज्यहारक्षेपेषु त्रिंशतापवर्तितेषु सिद्धा

दृढभाज्यहारक्षेपाः। दृ. भा. १ दृ. क्षे. १६४४६३६ } अतः
दृ. हृ. ५२५६७२१५००० }

कुट्टकविधिना लब्धिगुणौ ०।१६४४६३६ वा १।५२५६६१५६६३६ इत्यादि। अत्र लब्धिः ०।१ इत्यादिरंशाः। गुणश्च १६४४६३६।५२५६६१५६६३६ इत्यादी राशिशेषम्।

पुनरत्र द्वादश भाज्यः १२ राशिशेषमृणक्षेपः १६४४६३६ कुदिनानि हारः १५७७६१६४५०००० अत्र भाज्यहारौ द्वादशभिरपवर्त्यौ न तथा क्षेपः। एवमत्र खिलत्वापत्तिः।

एवमेव लब्धिगुणयोर्यत्रानेकविधत्वं संभवेत् तत्र मुहुर्मुहुः खिलत्वापत्तौ यया यया लब्ध्या विकलाद्यहर्गणान्तं सर्वं निर्बाधं सिध्येत् तत्तल्लब्ध्यन्वेषणे तु गणितेऽतीव गौरवं स्यादिति तत्र 'कल्प्याश्च शुद्धिः-' इत्यादिप्रकारेण विकलाशेषाद्ग्रहाहर्गणयोरवगमो दुर्गम एव। अतस्तत्रान्यथा यतितव्यम्।

तदित्थम्—कल्पकुदिनानि भाज्यं विकलाशेषं क्षेपं चक्रविकलाश्च हरं प्रकल्प्य कुट्टकविधिना सक्षेपौ लब्धिगुणौ साध्यौ तत्र लब्धिर्भगणशेषं गुणश्च विकलात्मको ग्रहो भवेत्। ततो ग्रहभगणान् भाज्यं, सक्षेपं भगणशेषं च शुद्धिं कल्पकुदिनानि हरं च प्रकल्प्य साधितो गुणोऽहर्गणः स्यादित्येवं ग्रहाहर्गणयोरवगमः सुगम एव सुधियाम्।

यथात्र कल्पकुदिनानि १५७७६१६४५०००० भाज्यः। विकलाशेषम् २१००५३४१२००० क्षेपः। चक्रविकलाः १२९६००० हरः। एते हरस्याष्टमांशेन १६२००० अपवर्तिता

जाता दृढाः { दृ. भा. ९७४०२२५ दृ. क्षे. १२९६६२६
दृ. हृ. ८ }

अतः सिद्धौ लब्धिगुणौ ७४६७२४७।६। ततो यावत्तावदिष्टं

प्रकल्प्य 'इष्टाहतस्वस्वहरेण–' इत्यादिना सिद्धौ सक्षेपौ लब्धिगुणौ
{ या ६७४०२२५ रू ७४६७२४७
{ या ८ रू ६ } अत्र लब्धिस्तावद्
भगणशेषं गुणश्च विकलात्मको ग्रहः। एवं भौमभगणाः
२२६६८२८५२२ भाज्यः। भगणशेषं सक्षेपं या ६७४०२२५
रू७४६७२४७शुद्धिः। कल्पकुदिनानि १५७७६१६४५०००० हारः। अत्र लब्धिर्गतभगणाः। गुणोऽहर्गणः स्यात् परमत्र कुट्टकविधिना लब्धिगुणानयने भाज्यहरौ द्वयेनापवर्तेते ततः शुद्ध्यापि तेनापवर्त्यया भाव्यमिति ६७४०२२५ इमं यावत्तावदङ्कं भाज्यं
१
७४६७२४७ इमानि रूपाणि क्षेपं, द्वयं च हरं प्रकल्प्य कुट्टकविधिना साधितौ लब्धिगुणौ ८६०३७३६ ततः 'इष्टाहतस्वस्वहरेण–' इत्यादिनेष्टं कालकं प्रकल्प्य साधितो गुणः सक्षेपः का २ रू १ इदं यावत्तावन्मानम्। अनेनोत्थापिता शुद्धिर्जातं द्वयेनापवर्त्यं भगणशेषम् का १६४८०४५० रू १७२०७४७२ एवं पूर्वसाधिते या ८ रू ६ अस्मिन्गुणे चोत्थापिते सिद्धो विकलात्मको ग्रहः। का १६ रू १४। तथा च भौमभगणाः २२९६८२८५२२ भाज्यः। कुदिनानि १५७७६१६४५०००० हारः। का १६४८०४५० रू १७२०७४७२ इदं भगणशेषं शुद्धिः एते द्वाभ्यामपवर्तिता जाता दृढाः।

{ दृ. भा. ११४८४१४२६१ दृ. शु. का ६७४०२२५
{ रू ८६०३७३६ दृ. ह ७८८८६५८२२५००० }

अत्र पूर्वं तावद्रूपशुद्धौ साधितौ लब्धिगुणौ ६२८८८८३६ ततः
४३२०४१७३४१
'क्षेपे तु रूपे यदि वा विशुद्धौ–' इत्यादिना, का ६७४०२२५ रू ८६०३७३६ अस्यां शुद्धौ सिद्धौ लब्धिगुणौ

का ५५७७७४८८२ रू १०९५१९८५४२

का ३८३१९०१९१७२५ रू ७५२३९९१३५९७६

अत्र कालकमानमिष्टं प्रकल्प्य तेनोत्थापितावेतौ लब्धिगुणौ स्वस्वदृढभाज्यहाराभ्यां तष्टौ क्रमेण गतभगणाहर्गणमाने भवतः। पुनरेते इष्टाहतस्वीयदृढभाज्यहाराभ्यां युक्ते चानेकधा स्याताम्। तथा तेनैव कल्पितेन कालकमानेनोत्थापितमिदं का १६ रू १४ विकलात्मको ग्रहो भवेत्।

यथा कालके शून्येनोत्थापिते जातोऽहर्गणः ७५२३९९१३५९७६ ग्रहश्च ०।०।०।१४। कालके रूपेणोत्थापिते जातोऽहर्गणः ११३५५८९३२७७०१ ग्रहश्च ०।०।०।३० एवं कालके ४२८७९ अनेनोत्थापिते जातम् १६४३१५६४६३०११२२५१ अस्मिन् ७८८९५८२२५००० अनेन दृढहरेण तष्टे जातोऽहर्गणः ७२०६३६२६२२५१ अयमिष्टाहतेन दृढहरेण युक्तोऽनेकधा स्यात्।

एवं ४२८७९ अनेनैव कालकमानेनोत्थापितमिदं का १६ रू १४ जातो विकलात्मको ग्रहः ६८६०७८ अतो राश्यादिः ६।१०।३४।३८। एवमिष्टवशादनेकधा॥

ग्रह के विकला शेष से ग्रह और अहर्गण का साधन—यहां साठ भाज्य, कुदिन हार, और विकला शेष ऋण क्षेप है, तो विकला लब्धि और कला शेष गुण होगा।

फिर साठ भाज्य, कुदिन हार, और कला शेष ऋण क्षेप है, तो कला लब्धि और भाग शेष गुण होगा।

फिर तीस भाज्य, कुदिन हार, और भाग शेष ऋण क्षेप है, तो भाग लब्धि और राशि शेष गुण होगा।

फिर बारह भाज्य, कुदिन हार, और राशि शेष ऋण क्षेप है, तो राशि लब्धि और भगण शेष गुण होगा।

फिर कल्प के ग्रह भगण भाज्य, कुदिन हार, और भगण शेष ऋणक्षेप है, तो गत भगण लब्धि और अहर्गण गुण होगा।

इस भाँति कल्प के अधिमास भाज्य, रविदिन हार और अधिमास शेष ऋणक्षेप है, तो गताधिमास लब्धि और गत रविदिन गुण होगा।

फिर कल्प के अवमदिन भाज्य, चान्द्रदिन हार, और अवमशेष ऋणक्षेप है, तो गतावम लब्धि और गतचान्द्र दिन गुण होगा।

अब छात्रों के बोध के लिये कल्प कुदिन १९ कल्प ग्रह भगण ९ और अहर्गण १३ कल्पना करके, उक्त विषय को स्पष्ट करते हैं—कल्प के कुदिन में कल्प के ग्रह भगण मिलते हैं, तो इष्ट कुदिन (अहर्गण) में क्या, इस अनुपात से 'द्युचरचक्रहतो दिनसंचयः कहहृतो भगणादिफलं ग्रहः'—इस प्रकार के अनुसार ग्रह सिद्ध किये जाते हैं। प्रकृत में अहर्गण १३ को भगण ९ से गुणाने से ११७ में कुदिन १९ का भाग देने से ग्रह भगण ६ लब्ध मिले, भगण शेष ३ रहा, इसको १२ से गुणाने से ३६ में कुदिन १९—का भाग देने से राशि १ लब्ध मिली, राशि शेष १७ रहा, इसको ३० से गुणाने से ५१० में कुदिन १९ का भाग देने से अंश २६ लब्ध मिले, अंश शेष १६ रहा, इसको ६० से गुणाने से ९६० में कुदिन १९ का भाग देने से कला ५० लब्ध मिली, कला शेष १० रहा, इसको ६० से गुणाने से ६०० में कुदिन १९ का भाग देने से विकला ३१ लब्धि मिली, विकला शेष ११ रहा, अगले अवयवों के लाने का आवश्यक नहीं है। इस कारण विकला शेष ११ को छोड़ दिया। इस भाँति भगणादिक ग्रह सिद्ध हुआ ६।१।२६।५०। ३१ अब इस पर से विलोमकर्म के अनुसार ग्रह और अहर्गण का आनयन करते हैं—तहां 'कल्प्याथ शुद्धिः—' इस प्रकार से भाज्य, हार और क्षेप हुए—

भा=६०। क्षे=११।
हा=१९।

उक्त विधि से वल्ली हुई ३
६
१̇१
०

बाद दो राशि $\begin{matrix}२०६\\ ६६\end{matrix}$ को तष्टित करने से लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}२६\\ ८\end{matrix}$ 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इस सूत्र से ऋण क्षेप में लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}३१\\ १०\end{matrix}$ यहां लब्धि ३१ विकला हैं और गुण १० कला-शेष है। अब इस कला शेष १० को ऋणक्षेप मान कर, कला के लाने के लिये कुट्टक करते हैं——भा=६०। क्षे=१̇०।
हा=१९।

उक्त रीति से वल्ली हुई ३ बाद दो राशि हुए १९०
६ ६०
१̇०
०

योगज लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}१०\\ ३\end{matrix}$ इनको अपने अपने तक्षण में शुद्ध करने से ऋणक्षेप में लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}५०\\ १६\end{matrix}$। यहां लधि ५० कला हैं और गुण १६ अंश शेष है। अब अंश शेष १६ को ऋणक्षेप कल्पना कर के अंश के जानने के लिये कुट्टक करते हैं——भा=३। क्षे=१६̇।
हा=१९।

उक्त प्रकार से वल्ली हुई १ और दो राशि हुए १७६
१ ११२
१
२
१
१६
०

तष्टित करने से $\begin{matrix}२६\\ १७\end{matrix}$ अब वल्ली के विषम होने से और ऋणक्षेप के होने से, दो बार शोधन करने से लब्धि गुण ज्यों के त्यों रहे $\begin{matrix}२६\\ १७\end{matrix}$

लब्धि २६ अंश हैं और गुण १७ राशि शेष हैं । अब राशि शेष १७ को ऋणक्षेप मान कर राशि जानने के लिये कुट्टक करते हैं—भा=१२
क्षे=१७ । हा=१६ ।

उक्त विधि से वल्ली सिद्ध हुई ० बाद दो राशि हुए—

१
१
१
२
१७
०

$\frac{८५}{१२६}$ तष्टित करने से लब्धि-गुण हुए $\frac{१}{३}$ । वल्ली के विषम और ऋणक्षेप होने से दो बार शोधन करने से, लब्धि-गुण ज्यों के त्यों रहे $\frac{१}{३}$ । यहां लब्धि १ राशि है और गुण ३ भगण शेष हैं । अब भगण शेष ३ को ऋणक्षेप कल्पना करके कुट्टक करते हैं—–

भा=९ । क्षे=३ ।
हा=१६ ।

उक्त विधि से वल्ली ० २ ३ ० और लब्धि-गुण हुए $\frac{३}{६}$ शुद्ध करने से $\frac{६}{१३}$ हुए । यहां लब्धि ६ गत भगण हैं और गुण १३ अहर्गण हैं । यही इष्ट भी था ।

उपपत्ति—

साठ को कला शेष से गुण कर, कुदिन का भाग देने से लब्ध विकला आती हैं और शेष विकलाशेष रहता है । इसलिये किस गुण से गुणित विकलाशेष से हीन और कुदिन से भाजित साठ निःशेष होगी, इस कारण गुण जानने के लिये कुट्टक किया है । उस से गुण कला शेष और लब्धि विकला सिद्ध हुई है । इसी प्रकार साठ को अंश शेष से गुण कर, कुदिन का भाग देने से लब्ध कला आती हैं और शेष कला शेष रहता है । इस लिये अंश शेषमित गुण से गुणित कला शेष से हीन और कुदिन से भाजित साठ निःशेष होगा ।

वहां लब्धि कला और गुण भाग शेष कुट्टक के द्वारा सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार राशि शेष से गुणित भाग शेष से हीन और कुदिन से भाजित भाज्य-तीस निःशेष होगा, वहां लब्धि भाग और गुण राशि-शेष होता है। ऐसे ही भगणशेष से गुणित राशिशेष से हीन और कुदिन से भाजित भाज्य-बारह निःशेष होगा, वहां लब्धि राशि और गुण भगणशेष होता है। और अहर्गण से गुणित भगणशेष से हीन और कुदिन से भाजित ग्रह-भगण निःशेष होगा, वहां लब्धि गत भगण और गुण अहर्गण होता है। इस प्रकार उक्त स्थलों में सर्वत्र कुट्टक का विषय होता है।

अब कल्प के सौर दिन में कल्प के अधिमास मिलते हैं, तो इष्ट सौर दिन में क्या ? इस अनुपात से कल्प के अधिमास, इष्ट सौर से गुणे जाते हैं और कल्प के सौर दिन से भाजित होते हैं। वहां लब्ध इष्ट-अधिमास आते हैं और शेष अधिमास शेष बचता है। इसलिये किस गुण से गुणित अधिमास शेष से रहित और कल्प के सौर दिन से भाजित कल्पाधिमास निःशेष होंगे ? यह कुट्टक का विषय उपस्थित हुआ। यहां जो गुण आवेगा वही इष्ट सौर दिन होंगे और जो लब्धि होगी वही गताधिमास। इसी भांति कल्पचान्द्र दिन में कल्प के अवम मिलते हैं, तो इष्टचान्द्र दिन में क्या ? इस अनुपात से कल्प के अवम दिन इष्टचान्द्र दिन से गुणे जाते हैं और कल्प के चान्द्र दिन से भाजित होते हैं। वहां लब्ध गत अवम आते हैं और शेष अवमशेष रहता है इसलिये किस गुण से गुणित अवमशेष से रहित और कल्प के चान्द्र दिन से भाजित कल्पावम निःशेष होंगे। इस प्रकार कुट्टक की रीति से लब्धिगत अवम और गुण इष्ट चान्द्र दिन सिद्ध होते हैं। और 'कल्प्याथ शुद्धिः—' यह विधि उपपन्न होती है॥

अथ संश्लिष्टकुट्टके करणसूत्रं वृत्तम्।

एको हरश्चेद्गुणकौ विभिन्नौ

तदा गुणैक्यं परिकल्प्य भाज्यम् ।
अग्रैक्यमग्रं कृत उक्तवद्यः
संश्लिष्टसंज्ञः स्फुटकुट्टकोऽसौ * ॥३६॥)

एवमेकस्मिन् गुणके सति राशिज्ञानमभिधाय द्व्यादिषु गुणकेषु सत्सु राशिज्ञानमुपजात्याह–एक इति । चेदेको हरः स्यात्, गुणकौ तु विभिन्नौ स्याताम् 'गुणकौ' इत्युपलक्षणम्, तेन त्र्यादयो वा गुणकाः स्युः। एकस्यैव राशेः पृथक् पृथक् द्वौ गुणकौ त्रयश्चतुरादयो वा गुणकाः स्युः। सर्वत्र हरस्त्वेक एव स्यात्। तदा तेषां द्व्यादीनां गुणकानामैक्यं भाज्यं परिकल्प्य उद्दिष्टं यदग्रैक्यं तदग्रमृणक्षेपं प्रकल्प्य अर्थाद्धरमेव हरं प्रकल्प्य उक्तवद्यः कृतः स्फुटः कुट्टकः असौ संश्लिष्टसंज्ञः स्यात्। 'संश्लिष्टस्फुटकुट्टकः' इत्यन्वर्थसंज्ञा। तथाहि–कुट्टको गुणकविशेषः संश्लिष्टानामेकीभूतानां परस्परं संवलितानामिति यावत् अग्राणां शेषाणां संबन्धी स्फुटोऽव्यभिचरितः कुट्टकः संश्लिष्टकुट्टकः। स एव राशिः स्यादित्यर्थात्सिद्धम्। अत्र लब्धिर्न ग्राह्या। अत्र हि यथोद्दिष्टैर्गुणकैः पृथग्गुणिते राशौ हरतष्टे सति या आगता लब्धयस्तदग्राणां चैक्ये हरतष्टे सति या लब्धिः सा न ग्राह्या, अत्र हि यथोद्दिष्टैः कुट्टकैः पृथग्गुणिते राशौ हरतष्टे या आगता लब्धयस्तासामैक्यं तदत्र कुट्टके लब्धिरूपमुत्पद्यते प्रयोजनाभावात्तन्न ग्राह्यम् ॥

---

* अत्र श्रीबापुदेवपादाः–

अन्योन्याग्राहतयोर्गुणयोः संश्लिष्टकुट्टके यत्र ।
वियुतिर्हरेण भक्ता न निरग्रास्यात्खिलं तदुद्दिष्टम् ॥

'कः पञ्चनिघ्नः—' इस उदाहरण में ५ गुण से दस के अग्र (शेष) १४ को गुणने से ७० हुए और १० गुण से पांच के अग्र ७ को गुणने से ७० हुए, इनका अन्तर ० हुआ। यह हर ६३ का भाग देने से शुद्ध होता है, इसलिये यह उदाहरण शुद्ध है ॥

संश्लिष्ट-कुट्टक का प्रकार—

यदि हर एक हो और गुण अनेक हों, तो उन गुणकों के योग को भाज्य और शेषों के योग को ऋणक्षेप कल्पना करके उक्त विधि से जो कुट्टक किया जाता है वह संश्लिष्ट-कुट्टक कहलाता है॥

उपपत्ति—

गुण से गुणित और युक्त कोई राशि, गुणयोग से गुणित उसी राशि के तुल्य होता है। और वहां अलग-अलग हर से भाजित लब्धियों का योग अथवा हर से भाजित योग, ये भी समान होते हैं। जैसा—राशि १० को २, ३ और ४ गुणकों से अलग-अलग गुण देने से २०। ३०। ४०। इन में हर १९ का भाग देने से १।१।२ लब्धि मिली और १।११।२ शेष रहे।

अथवा, पूर्व राशि १० को २।३।४ गुणकों के योग ९ से गुण देने से ९० हुए। इसमें हर १९ का भाग देने से ४ लब्धि मिली और शेष १४ रहा।

यहां १।१।२ इन लब्धियों के योग ४ के समान ४ लब्ध आये हैं और १।११।२ इन शेषों के योग १४ के समान शेष १४ रहा है। इसलिये उद्दिष्ट राशि १० गुणक योग ९ से

यो राशिरीश्वरैः (११) सप्तचन्द्रै (१७) र्निघ्नोऽग्निदग् (२३) हृतः।
पञ्चशेषस्त्रिशेषः स्यात्क्रमाद्राशिं वदाशु तम्॥

इस उदाहरण में ११ गुण से सत्तरह के अग्र ३ को गुणने से ३३ हुए और १७ गुण से ग्यारह के अग्र ५ को गुणने से ८५ हुए इन का अन्तर ५२ हुआ यह हर २३ का भाग देने से शुद्ध नहीं होता है. इसलिये यह उदाहरण अशुद्ध है। जैसा—

भाज्य=२८ क्षेप=५२   वल्ली
हार=२३

वल्ली
१
४
१
१
८
०

वल्ली से गुण २० लब्धि २४। इत्यादि।

गुणित ६० और शेष योग १४ से घटा ७६ हर १६ से भाजित निःशेष होता है। इस प्रकार कुट्टकविधि से गुण ही राशि सिद्ध होती है। इस से 'एको हरश्चेद् गुणकौ विभिन्नौ—' यह सूत्र उपपन्न हुआ।

उदाहरणम्—

* कःपञ्चनिघ्नो विहृतस्त्रिषष्ट्या
सप्तावशेषोऽथ स एव राशिः।
दशाहतः स्याद्विहृतस्त्रिषष्ट्या
चतुर्दशाग्रो वद राशिमेनम्॥ २७॥

अत्र गुणैक्यं भाज्यः। अग्रैक्यं शुद्धिः।

न्यासः। भाज्यः १५। हारः ६३। क्षेपः २१।

पूर्ववज्जातो गुणः १४ अयमेव राशिः।

इति कुट्टकः।

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत-दुर्गाप्रसादोन्नीते लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिनि कुट्टकः समाप्तः॥

उदाहरण——

वह कौन राशि है, जिस को पांच से गुण कर, तिरसठ का भाग देते हैं तो सात शेष रहता है और उसी राशि को दस से गुण कर तिरसठ का भाग देते हैं, तो चौदह शेष रहता है।

यहां ५। १० इन गुणकों के योग १५ को भाज्य और ७।१४

---

* अत्र ज्ञानराजदैवज्ञाः—

सप्ताहतः सूर्यहृतः शराग्रः पञ्चाहतः सूर्यहृतो हयाग्रः।
तमेव राशिं वद कुट्टकेऽस्मिं संश्लिष्टसंज्ञे वितता मतिस्ते॥

इन शेषों के योग को २१ ऋणक्षेप मान कर, कुट्टक के लिये न्यास करते हैं। भाज्य=१५। क्षेप=२̇१। हार=६३।

इन में तीन का अपवर्तन देने से, दृढ़ भाज्य, हार और क्षेप हुए।

दृ. भा. ५। दृ. क्षे. ७̇। वल्ली हुई $\begin{matrix}० \\ ४ \\ ७ \\ ०\end{matrix}$

दृ. हा. २१।

उक्त रीति से लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}७ \\ २८\end{matrix}$। अपने-अपने हारों से तष्टित करने से $\begin{matrix}२ \\ ७\end{matrix}$ हुए। अब ऋणक्षेप होने के कारण अपने-अपने हारों में घटाने से ऋणक्षेप में लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}३ \\ १४\end{matrix}$। आलाप–गुण राशि १४ को ५ से गुणने से ७० हुए। इसमें हर ६३ का भाग देने से १ लब्धि मिली और ७ शेष रहा। फिर राशि १४ को १० से गुणने से १४० इस में हर ६३ का भाग देने से २ लब्धि आई और शेष १४ बचा। यहां १।२ इन दोनों लब्धियों के योग ३ के तुल्य कुट्टक के द्वारा भी लब्धि सिद्ध हुई ३।

संश्लिष्टकुट्टक के और उदाहरण सिद्धान्तशिरोमणि के प्रश्नाध्याय में कहे हैं। जैसा–'ये याताधिकमासहीनदिवसा–' इत्यादि। और 'चक्राग्राणि गृहाग्रकाणि च लवाग्राणि–' इत्यादि।

कुट्टक समाप्त।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे।

वासनाभङ्गिसुभगः कुट्टकः कुट्टितोऽभवत्॥ ५॥

अथ वर्गप्रकृतिः ।

तत्र रूपक्षेपपदार्थं तावत्करणसूत्राणि—

इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या
क्षुण्णो युक्तो वर्जितो वा स येन ।
मूलं दद्यात्क्षेपकं तं धनर्णं
मूलं तच्च ज्येष्ठमूलं वदन्ति ॥४०॥

एवमनेकवर्णप्रक्रियोपयुक्तं कुट्टकमभिधाय सांप्रतमनेकवर्णमध्यमाहरणोपयुक्तां वर्गप्रकृतिं निरूपयति—तत्र प्रथमं तत्स्वरूपं शालिन्याह—इष्टमिति । अनेकवर्णमध्यमाहरणे पक्षयोः समीकरणानन्तरम् एकपक्षस्य मूले गृहीते सति द्वितीयपक्षे यदि सरूपोऽव्यक्तवर्गः स्यात् यथा—काव १२ रू १ । तत्र पूर्वपक्षतुल्यतया द्वितीयपक्षेणापि मूलदेन भाव्यम् । अस्ति चात्र कालकवर्गो रविगुणो रूपसहितश्च । अतो यस्य वर्गो रविगुणो रूपसहितः सन् वर्गो भवेत्तदेव कालकमानमित्यर्थात्सिध्यति । यच्चात्र पदं तत्पूर्वपक्षपदसमम् उभयपक्षयोः समत्वात् । वर्गः प्रकृतिर्यत्रेति वर्गप्रकृतिः । प्रथममिष्टं ह्रस्वपदं प्रकल्प्य तस्य वर्गः प्रकृत्या गुणितो येनाङ्केन सहितो रहितो वा मूलं दद्यात्तमङ्कं धनमृणं वा क्षेपकं वदन्त्याचार्याः । तन्मूलं ज्येष्ठमूलमिति वदन्त्याचार्याः । प्रथमतो यदिष्टं पदं प्रकल्पितं तच्च ह्रस्वमिति वदन्त्याचार्याः । अन्वर्थाश्चैताः संज्ञाः । यत्र तु क्षेपवियोगात्कुत्रचिज्ज्येष्ठपदं ह्रस्वपदादल्पं भवति तत्रापि भावनया ह्रस्वपदादधिकमेव भवति ॥

वर्गप्रकृति—

अब वर्गप्रकृति के आरम्भ में उस के स्वरूप का निरूपण करते हैं—पहले किसी राशि को इष्ट मान कर उस का वर्ग करना, वह (वर्ग) प्रकृति से गुणित और जिस अङ्क से युक्त अथवा ऊन (घटा) मूलप्रद

हो, उस अङ्क को क्रम से धन और ऋण क्षेप कहते हैं, और उस मूल को ज्येष्ठमूल कहते हैं, पहले जिस राशि को इष्ट कल्पना किया है उस को ह्रस्व, लघु और कनिष्ठ भी कहते हैं ।

ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकान्न्यस्य तेषां
　　तानन्यान्वाऽधो निवेश्य क्रमेण ।
साध्यान्येभ्यो भावनाभिर्बहूनि
　　मूलान्येषां भावना प्रोच्यतेऽतः ॥४१॥
वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैक्यं
　　ह्रस्वं लघ्वोराहतिश्च प्रकृत्या ।
क्षुण्णा ज्येष्ठाभ्यासयुग् ज्येष्ठमूलं
　　तत्राभ्यासः क्षेपयोः क्षेपकः स्यात् ॥४२॥
ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं वा
　　लघ्वोर्घातो यः प्रकृत्या विनिघ्नः ।
घातो यश्च ज्येष्ठयोस्तद्वियोगो
　　ज्येष्ठं क्षेपोऽत्रापि च क्षेपघातः ॥४३॥

एवमेकेषु ह्रस्वज्येष्ठक्षेपेषु ज्ञातेष्वनेकत्वार्थमुपायं शालिनीत्रयेणाह—ह्रस्व इत्यादिना । पूर्वनिष्पन्नान् ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकान् एकस्यां पङ्क्तौ विन्यस्य तेषां (ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकाणां) अधः अधोभागे तान् (पूर्वनिष्पन्नान्) अन्यान् वा ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकान् क्रमेण विलिख्य एतेभ्यः पङ्क्तिद्वयस्थापितेभ्यो ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकेभ्यो यतो भावनाभिः बहून्यनन्तानि मूलानि साध्यानि अतस्तेषां भावना प्रोच्यते विविच्य कथ्यते—तस्यामेव प्रकृताविति ज्ञेयम् । तत्र भावना

द्विविधा । समासभावना, अन्तरभावना चेति । तत्र पदयोर्महत्त्वेऽपेक्षिते समासभावनामाह—वज्राभ्यासावित्यादिना । ज्येष्ठलघ्वोर्यौ वज्राभ्यासौ तयोरैक्यं ह्रस्वं स्यात् । वज्राभ्यासो नाम तिर्यग्गुणनम् । यथा किल वज्रस्य तिर्यक् प्रहारो भवति तथैवात्र गुणनकरणादस्य गुणनविशेषस्य वज्राभ्यास इति संज्ञा, वज्रवदभ्यासो वज्राभ्यास इति समासः । तस्मादूर्ध्वकनिष्ठेनाधःस्थं ज्येष्ठं गुणनीयमधःस्थकनिष्ठेनोर्ध्वस्थं ज्येष्ठं गुणनीयं तयोरैक्यं ह्रस्वं स्यात् । लघ्वोराहतिः प्रकृत्या गुणिता ज्येष्ठयोर्वधेन युक्ता ज्येष्ठमूलं स्यात् । क्षेपयोरभ्यासः क्षेपकः स्यादिति । अथ पदयोर्लघुत्वेऽभीप्सितेऽन्तरभावनामाह—ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं वेति । वज्राभ्यासयोरन्तरं वा ह्रस्वं स्यात् । ऐक्यापेक्षया विकल्पः । अत्र यः प्रकृत्या गुणितो लघ्वोर्घातः, यश्च केवलयोर्ज्येष्ठयोर्घातस्तद्वियोगो ज्येष्ठं स्यात् । अत्रापि क्षेपघातः क्षेपः पूर्ववदेव स्यात् ॥

विविध ह्रस्व, ज्येष्ठ लाने का प्रकार—

पहले सिद्ध किये ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेपों को एक पंक्ति में लिखकर उनके नीचे क्रम से उन्हीं पूर्वोत्पन्न ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेपों को, अथवा दूसरे ह्रस्व, ज्येष्ठ, क्षेपों को लिखना । इस प्रकार, दो पंक्ति में स्थापित ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेप से भावना के द्वारा अनेक ह्रस्व,ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध होते हैं । इसलिये भावना का निरूपण करते हैं—भावना दो प्रकार की होती है, एक समासभावना—दूसरी अन्तरभावना। अब पहले पदों का महत्त्व जानने के लिये समासभावना कहते हैं—ज्येष्ठ और लघु का जो वज्राभ्यास अर्थात् तिर्यग्गुणन हो उसका योग 'ह्रस्व' होता है। तात्पर्य यह है कि ऊपर की पङ्क्तिवाले कनिष्ठ से नीचली पङ्क्ति के ज्येष्ठ को गुणाकर, और नीचली पङ्क्ति के कनिष्ठ से ऊपर की पङ्क्ति के ज्येष्ठ को गुण कर उन दोनों गुणनफलों का योग करना, वह कनिष्ठ होगा । कनिष्ठों के घात को प्रकृति से गुणाकर और उसमें ज्येष्ठों के घात को जोड़ देने से वह ज्येष्ठमूल होगा । और क्षेपकों का घात क्षेप होगा ।

अब पदों का लघुत्व जानने के लिये अन्तरभावना कहते हैं—

ज्येष्ठ और कनिष्ठ के वज्राभ्यास का अन्तर कनिष्ठ होता है। कनिष्ठों के घात को प्रकृति से गुणकर, एक स्थान में रखना और केवल ज्येष्ठों का घात करना। बाद, उन दोनों घातों का अन्तर करने से वह ज्येष्ठमूल होगा। और समासभावना के तुल्य क्षेपों का घात यहाँ भी क्षेप ही होगा॥

इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यादिष्टभाजिते।
मूले तेस्तोऽथवाक्षेपःक्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे ४४॥

एवं भावनाभ्यामिष्टक्षेपजपदसिद्धौ तेभ्य एव क्षेपान्तरजपदानयनमथ च यत्र कुत्रापि क्षेपे पदसिद्धौ स चेदिष्टवर्गेण गुणितो भक्तो वा उद्दिष्टक्षेपो भवेत्तदा तेभ्य एवोद्दिष्टक्षेपजपदानयनमनुष्टुभाह—इष्टवर्गहृत इति। यत्र क्षेपे कनिष्ठज्येष्ठपदे सिद्धे सत्क्षेप इष्टस्य वर्गेण भक्तः सन् यदि क्षेपो भवेत् तदा ते पदे इष्टभक्ते सती पदे स्तः। यदि त्विष्टवर्गेण गुणितः सन् क्षेपो भवेत् तदा ते पदे इष्टगुणिते पदे स्तः। यस्य इष्टस्य वर्गेण क्षेपो गुणितस्तेन पदे गुणनीये इत्यर्थः॥

विशेष—

जिस क्षेप में कनिष्ठ और ज्येष्ठ पद सिद्ध हुए हैं, वह क्षेप यदि इष्ट वर्ग के भाग देने से अभिमत क्षेप हो, तो कनिष्ठ-ज्येष्ठ पद इष्ट के भाग देने से अभिमत कनिष्ठ-ज्येष्ठ पद होंगे, और यदि क्षेप, इष्ट वर्ग से गुणित क्षेप हो, तो कनिष्ठ-ज्येष्ठ पद, इष्ट से गुण देने से कनिष्ठ-ज्येष्ठ पद होंगे।

इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भजेत्।
द्विघ्नमिष्टं कनिष्ठं तत्पदं स्यादेकसंयुतौ ४५॥

---

१ अत्र श्रीबापुदेवपादोक्तानि सूत्राणि—

द्विघ्नसंकलितेन स्यात्समाना प्रकृतिर्यदा।

ततो ज्येष्ठमिहानन्त्यं भावनातस्तथेष्टतः ।

अथ यत्र कुत्राप्युद्दिष्टक्षेपे रूपक्षेपजपदाभ्यां भावनया पदानेकत्वं भवतीति रूपक्षेपजपदसाधनं प्रकारान्तरेण सार्धानुष्टुभाह—इष्टवर्गप्रकृत्योरिति । इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन द्विघ्नमिष्टं भजेत् तदा एकसंयुतौ रूपक्षेपे कनिष्ठं स्यात् ततः कनिष्ठाज्ज्येष्ठं स्यात् ।

तदा ह्रस्वपदं रूपद्वयं स्यादेकसंयुतौ ॥ १ ॥
सैकया व्येकया वापि कृत्या तुल्यो यदा गुणः ।
तस्याः कृतेः पदं द्विघ्नं ह्रस्वं स्याद् भूयुतौ तदा ॥ २ ॥
द्व्यूनया द्व्याढ्यया वापि कृत्या स्यात्प्रकृतिर्यदा ।
समा तदैकयोगे स्याद् ह्रस्वं तस्याः कृतेः पदम् ॥ ३ ॥
क्षेपस्य वर्गरूपस्य मूलेनाढ्याथवोनिता ।
प्रकृतिश्चेत्कृतिस्तस्याः पदं द्विघ्नं भवेल्लघु ॥ ४ ॥
इष्टाहृता ह्रस्वकृतिः पृथिव्या
युतोनिता ज्येष्ठपदं द्विधा स्यात् ।
विधूनिता ज्येष्ठकृतिः कनिष्ठ-
वर्गेण भक्ता प्रकृतिर्भवेच्च ॥ ५ ॥
यदा कनिष्ठस्य कृतिः समा भवे-
त्तदा कृतेः खण्डमभीष्टसंगुणम् ।
भुवोनयुग् ज्येष्ठपदं भवेद्द्विधा
ततो गुणो वेष्टवशादनेकधा ॥ ६ ॥

(१) प्र=२० । क्षे=१ ।
क २ ज्ये ९

(२) प्र =२४ वा, प्र=५० । क्षे=१ ।
क १० ज्ये ४९ । क १४ ज्ये ९९

(३) प्र=३९८ वा, प्र=९८ । क्षे=१
क २० ज्ये ३९९ । क १० ज्ये ९९

(४) प्र=२० वा, प्र=२१ । क्षे=२५
क १० ज्ये ४५ । क ८ ज्ये ३७

(५-६) प्र=२० वा, प्र=१२ । क्षे=१ इष्ट=२
क २ ज्ये ९ वा, ज्ये ७

'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः-'इत्यादिना इह कनिष्ठ-ज्येष्ठयोर्भावनावशात्तथेष्टवशादानन्त्यमस्ति ॥

(१) विशेष—

इष्टवर्ग और प्रकृति का अन्तर करके उस अन्तर का दूने इष्ट में भाग देने से रूपक्षेप में कनिष्ठ होता है। बाद उस कनिष्ठ से 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः-' इस सूत्र के अनुसार ज्येष्ठ सिद्ध करना। इस भाँति कनिष्ठ और ज्येष्ठ की भावना से तथा इष्ट वश से अनेक कनिष्ठ-ज्येष्ठ होंगे।

'इष्टं ह्रस्वं-' इस सूत्र की उपपत्ति अत्यन्त सुलभ है। अब भावनोपपत्ति कहते हैं—

स्पष्ट प्रतीत होने के लिये आद्य और द्वितीय पदों के पहले अक्षर लिखकर कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेपों की दो पङ्क्ति लिखते हैं—

आक १ । आज्ये १ । आक्षे १
द्विक १ । द्विज्ये १ । द्विक्षे १ } यहां अन्योन्य ज्येष्ठ को इष्ट

कल्पना करके '-क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे' इस सूत्र के अनुसार क्रिया करने से कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

द्विज्ये· आक १ । द्विज्ये· आज्ये १ । द्विज्येव· आक्षे १
आज्ये. द्विक १ । द्विज्ये· आज्ये १ । आज्येव. द्विक्षे १ } यहां

पहली पङ्क्ति में द्वितीय ज्येष्ठवर्ग से गुणित आद्यक्षेप है, उसका प्रकारान्तर से साधन करते हैं—द्वितीय कनिष्ठवर्ग को प्रकृति से गुणाकर, द्वितीय क्षेप जोड़ देने से द्वितीय ज्येष्ठ का वर्ग हुआ—

द्विकव· प्र १ । द्विक्षे १

इससे आद्यक्षेप को गुणा देने से उक्त क्षेप खण्डद्वयात्मक हुआ—

द्विकव. प्र· आक्षे १ । द्विक्षे· आक्षे १

यहां पहले खण्ड में जो आद्य क्षेप है, उसका प्रकारान्तर से साधन करते हैं, द्वितीय ज्येष्ठवर्ग के दो खण्ड हैं—प्रकृति से गुणित द्वितीय कनिष्ठवर्ग एक-खण्ड, द्वितीय-क्षेप दूसरा। ज्येष्ठवर्ग में प्रकृतिगुणित कनिष्ठवर्ग को घटा देने से क्षेप शेष रहता है। इसलिये

प्रकृति से गुणित आद्यकनिष्ठवर्ग को आद्यज्येष्ठ वर्ग में घटा देने से आद्यक्षेप हुआ—

आकव· प्र १̇ । आज्येव १

इस को प्रकृतिगुणित द्वितीय कनिष्ठवर्ग से गुण देने से उक्त क्षेप का पहला खण्ड हुआ।

द्विकव· प्र. आकव. प्र १̇ । द्विकव· प्र· आज्येव १

प्रकृति दो बार गुणक है, इसलिये प्रकृतिवर्ग गुणक हुआ—

द्विकव· आकव. प्रव १̇

खण्डों को लिखने से उक्त क्षेप खण्डत्रयात्मक सिद्ध हुआ, द्विकव. आकव. प्रव १̇ । द्विकव. प्र. आज्येव १ । द्विक्षे. आक्षे १ । इस प्रकार उक्त दोनों पङ्क्ति में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

द्विज्ये. आक १ । द्विज्ये. आज्ये १ । द्विकव· आकव· प्रव १̇ द्विकव· प्र· आज्येव १ द्विक्षे. आक्षे १

आज्ये· द्विक १ । द्विज्ये. आज्ये १ । द्विकव. आकव. प्रव १̇ आकव· प्र· द्विज्येव १ द्विक्षे· आक्षे १

यहां ज्येष्ठ-कनिष्ठ का एक अभ्यास (गुणन) पहली पङ्क्ति में कनिष्ठ है, और दूसरा अभ्यास दूसरी पङ्क्ति में कनिष्ठ है, ज्येष्ठाभ्यासरूप ज्येष्ठ दोनों पङ्क्ति में एक ही है। अब, हर एक वज्राभ्यास को कनिष्ठ कल्पना करने से क्षेप बड़ा होगा, इस कारण उपायान्तर करते हैं--जैसा—वज्राभ्यासों के योग को कनिष्ठ मान लिया—

कनिष्ठ=द्विज्ये· आक १ आज्ये. द्विक १ इसका वर्ग हुआ—द्विज्येव. आकव १ द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक २ आज्येव· द्विकव १ प्रकृति से गुण देने से हुआ—

द्विज्येव· आकव· प्र १ द्विज्ये· आक· आज्ये. द्विक. प्र २ आज्येव· द्विकव. प्र १

अब यह प्रकृतिगुणित कनिष्ठवर्ग, जिस क्षेप से जुड़ा मूलप्रद होगा उसका विचार करते हैं—कनिष्ठ वर्ग प्रकृति से गुणा और क्षेप से जुड़ा ज्येष्ठवर्ग होता है तो दोनों पङ्क्ति में ज्येष्ठ वर्ग सिद्ध हुए—

द्विज्येव. आकव. प्र १ द्विकव. आकव. प्रव १ द्विकव. प्र. आज्येव १ द्विक्ते. आक्ते १

आज्येव. द्विकव. प्र १ द्विकव. आकव. प्रव १ आकव. प्र. द्विज्येव १ द्विक्ते. आक्ते १

यहाँ दोनों पङ्क्ति में ज्येष्ठाभ्यासरूप ज्येष्ठ के समान होने से ज्येष्ठ वर्ग भी समान ही हैं। और यह भी ज्येष्ठवर्ग 'द्विज्येव. आज्येव १' समान है। अब प्रकृति से गुणे हुए वज्राभ्यासयोगरूप कल्पित कनिष्ठ के वर्ग में से दोनों ज्येष्ठ वर्गों को अलग अलग घटाते हैं तो तुल्य शेष रहता है। जैसा—

'द्विज्येव. आकव. प्र १ द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आज्येव. द्विकव. प्र १' इस प्रकृति-गुणित कनिष्ठवर्ग में—

'द्विज्येव. आकव. प्र १ द्विकव. आकव. प्रव १ द्विकव. प्र. आज्येव १ द्विक्ते. आक्ते १' इस प्रथम पङ्क्तिस्थ ज्येष्ठ वर्ग को घटा देने से शेष रहा।

पहला शेष=द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आकव. द्विकव. प्रव १ आक्ते द्विक्ते १।

इसी प्रकार 'द्विज्येव. आकव. प्र १ द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आज्येव. द्विकव. प्र १' इस प्रकृति से गुणित कनिष्ठ के वर्ग में,

'आज्येव. द्विकव. प्र १ द्विकव. आकव. प्रव १ आकव. प्र. द्विज्येव १ द्विक्ते. आक्ते १' इस द्वितीय पङ्क्तिस्थ ज्येष्ठवर्ग को घटा देने से शेष रहा—

दूसरा शेष=द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आकव. द्विकव. प्रव १ आक्ते. द्विक्ते १। पहले और दूसरे शेष समान हैं।

अब इस शेष को, यदि ज्येष्ठवर्ग में जोड़ देते हैं तो प्रकृतिगुणित कल्पित कनिष्ठवर्ग होता है। और यह भी ज्येष्ठवर्ग 'द्विज्येव. आज्येव १' शोधित ज्येष्ठ वर्ग के समान है, इसलिये इसमें जोड़ देने से प्रकृति-गुणित कल्पित कनिष्ठ वर्ग हुआ—

द्विज्येव. आज्येव १ द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आकव. द्विकव. प्रव १ आक्ते द्विक्ते १

इस में 'आक्षे· द्विक्षे १' इस क्षेपघात को जोड़ने से ज्येष्ठ-वर्ग हुआ—

द्विज्येव. आज्येव १ द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आकव. द्विकव. प्रव १ इसका मूल ज्येष्ठ हुआ—

द्विज्ये· आज्ये १ आक. द्विक. प्र १

इस से 'लघ्वोराहतिश्च प्रकृत्या क्षुण्णा ज्येष्ठाभ्यासयुग्ज्येष्ठमूलम्—' इत्यादि सूत्र उपपन्न हुआ। इसी भाँति वज्राभ्यास के अन्तर को कनिष्ठ कल्पना करके अन्तरभावना की उपपत्ति जानना। यह **नवाङ्कुरकारोक्त** उपपत्ति का दिग्दर्शन है।

(२) विश्वरूपोक्त उपपत्ति।

आक १ आज्ये १ आक्षे १ }
द्विक १ द्विज्ये १ द्विक्षे १ } परस्पर ज्येष्ठ को इष्ट कल्पना करके उक्त रीति के अनुसार कनिष्ठ-ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध हुए—

आक. द्विज्ये १ आज्ये. द्विज्ये १ आक्षे. द्विज्येव १

आज्ये. द्विक १ आज्ये. द्विज्ये १ द्विक्षे. आज्येव १

कनिष्ठों का योग कनिष्ठ कल्पना करने से हुआ—

आक. द्विज्ये १ आज्ये. द्विक १

इससे 'वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैक्यं ह्रस्वं—' इतना सूत्र उपपन्न हुआ। उक्त कनिष्ठ वर्ग प्रकृति से गुणित हुआ—

आकव. द्विज्येव. प्र १ आक· द्विक· आज्ये. द्विज्ये· प्र २ आज्येव. द्विकव· प्र १

पहले खण्ड में द्वितीयज्येष्ठवर्ग, प्रकृति से गुणा और द्वितीयक्षेप से जुड़ा द्वितीयकनिष्ठ वर्ग के तुल्य है—

द्विकव· प्र १ द्विक्षे १

ज्येष्ठवर्ग का प्रकृतिगुणित आद्यकनिष्ठवर्ग गुणक है, इसलिये गुणने से हुआ—

आकव· द्विकव. प्रव १ आकव· द्विक्षे. प्र १

तीसरे खण्ड में द्वितीयकनिष्ठ वर्ग, द्वितीय क्षेप से ऊन और प्रकृति से भाजित द्वितीयज्येष्ठवर्ग के तुल्य है—

द्विज्येव. द्विक्षे १̇ / प्र १ } और यही प्रकृतिगुणित आद्यज्येष्ठवर्ग से गुणित है। इसलिये प्रकृति के समान गुणक और हर के उड़ा देने से, तीसरे खण्ड का स्वरूप हुआ—

आज्येव. द्विज्येव १ आज्येव. द्विक्षे १̇

दूसरे खण्ड में आद्यज्येष्ठवर्ग, प्रकृति से गुणित और आद्यक्षेप से युक्त आद्यकनिष्ठवर्ग के समान है—

आकव· प्र· आक्षे १

यह ऋणागत द्वितीयक्षेप द्विक्षे १̇ से गुण देने से हुआ—

आकव· प्र. द्विक्षे १̇ आक्षे· द्विक्षे १̇

इस भाँति वज्राभ्यासयोगरूप कनिष्ठ का वर्ग प्रकृति से गुणित छ खण्डवाला सिद्ध हुआ—

आकव. द्विकव. प्रव १ आकव· द्विक्षे· प्र १ आक. द्विक. आज्ये. द्विज्ये. प्र २ आकव. प्र· द्विक्षे १̇ आज्येव· द्विज्येव १ आक्षे· द्विक्षे १̇

यहां दूसरे, चौथे खण्ड को धन और ऋण होने के कारण उड़ा देने से तथा आद्यक्षेप और द्वितीयक्षेप के घातरूपी क्षेप को जोड़ देने से ज्येष्ठवर्ग हुआ—

आकव. द्विकव. प्रव १ आक· द्विक. आज्ये. द्विज्ये. प्र २ आज्येव· द्विज्येव १

इसका मूल ज्येष्ठ है—

आक· द्विक· प्र १ आज्ये· द्विज्ये १

इससे उक्त सूत्र की उपपत्ति स्पष्ट है। इसी प्रकार वज्राभ्यासों के

आक. द्विज्ये १̇ द्विज्ये. आक १

इस अन्तर के तुल्य, कनिष्ठ कल्पना करके, उक्त रीति के अनुसार अन्तर-भावना की उपपत्ति जानना।

(३) कमलाकरोक्त उपपत्ति।

ज्येष्ठ के वर्ग में प्रकृति गुणित कनिष्ठ वर्ग को घटा देने से शेष क्षेप रहता है तो, इस प्रकार क्षेपों की दो पङ्क्ति हुई।

प्र. आकव १ आज्येव १ }
प्र. द्विकव १ द्विज्येव १ } इन का घात क्षेप हुआ

प्रव· आकव· द्विकव १ प्र. आज्येव· द्विकव १ प्र· द्विज्येव· आकव १ आज्येव. द्विज्येव १

अब इस में जिस के जोड़ने से मूल मिले वही प्रकृति गुणित कनिष्ठ वर्ग है। इसलिये प्रकृति से भाजित उस का मूल क्षेपद्वयघात के समान क्षेप में कनिष्ठ होगा और उस के जोड़ने से जो मूल मिले वही ज्येष्ठ होगा। उक्त क्षेप में—

प्र. आज्येव· द्विकव १ । प्र· द्विज्येव· आकव १

इन दोनों खण्डों को जोड़ देने से, समान धनर्ण खण्डों के उड़ जाने से शेष रहा—

प्रव. आकव. द्विकव १ आज्येव. द्विज्येव १

इस में इसी का दूना मूलघात 'आक. द्विक· आज्ये. द्विज्ये. प्र २' जोड़ देने से ज्येष्ठ वर्ग हुआ—

प्रव. आकव. द्विकव १ आक. द्विक· आज्ये. द्विज्ये. प्र २ आज्येव. द्विज्येव १ इस का मूल ज्येष्ठ हुआ—

प्र. आक. द्विक १ आज्ये· द्विज्ये १

और प्रकृति गुणित कनिष्ठ वर्ग यह है—

प्र· आज्येव· द्विकव १ प्र· द्विज्येव. आकव १ आक· द्विक· आज्ये· द्विज्ये. प्र २

इस में प्रकृति का भाग देने से कनिष्ठवर्ग हुआ—

आज्येव. द्विकव १ आक· द्विक. आज्ये· द्विज्ये २ द्विज्येव. आकव १

इस का मूल कनिष्ठ हुआ—

आज्ये· द्विक १ द्विज्ये. आक १

इस से समासभावना का सूत्र उपपन्न हुआ।

यहां पहले सिद्ध किये हुए 'प्रव. आकव· द्विकव १ आज्येव.

द्विज्येव १' इन खण्डों में 'आक· द्विक. आज्ये. द्विज्ये· प्र २' इस ऋणागत खण्ड को जोड़ देने से ज्येष्ठ वर्ग सिद्ध हुआ––

प्रव. आकव. द्विकव १ आक· द्विक. आज्ये· द्विज्ये· प्र २ आज्येव. द्विज्येव १

इस का मूल ज्येष्ठ हुआ––

प्र. आक. द्विक १ आज्ये· द्विज्ये १

और प्रकृति गुणित कनिष्ठ वर्ग यह है—

प्र. आज्येव. द्विकव १ प्र· द्विज्येव· आकव १ आक· द्विक. आज्ये· द्विज्ये· प्र २

इस में प्रकृति का भाग देने से कनिष्ठ वर्ग हुआ––

आज्येव. द्विकव १ आक. द्विक. आज्ये· द्विज्ये २ द्विज्येव· आकव १ इसका मूल कनिष्ठ हुआ––

आज्ये· द्विक १ द्विज्ये. आव १

इस प्रकार अन्तरभावना का सूत्र उपपन्न हुआ।

(४) पदानयन की उपपत्ति––

प्रकृति से गुणित और क्षेप से युक्त कनिष्ठ वर्ग, ज्येष्ठ वर्ग होता है। इस नियम के अनुसार दो पक्ष हुए––

कव. प्र १ क्षे १ = ज्येव १

कोई वर्गराशि वर्गराशि से गुणित अथवा भाजित अपने वर्गत्व को नहीं त्याग करता, इस नियम के अनुसार दोनों पक्ष इष्टवर्ग का भाग देने से हुए––

$$\frac{\text{कव. प्र १ क्षे १}}{\text{इव १}} = \frac{\text{ज्येव १}}{\text{इव १}}$$

यहां दूसरे पक्ष का मूल इष्ट से भाजित अन्य ज्येष्ठ को कल्पना किया $\frac{\text{ज्ये १}}{\text{इ १}}$ और पहले पक्ष में हर से भाजित दूसरे खण्ड को अन्यक्षेप कल्पना किया $\frac{\text{क्षे १}}{\text{इव १}}$ इससे 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यात्' यह उपपन्न हुआ। फिर इष्ट से भाजित कनिष्ठ को अन्य कनिष्ठ

कल्पना किया $\frac{\text{क } १}{\text{इ } १}$ तो उसका वर्गप्रकृति से गुणित पहला खण्ड होता है $\frac{\text{कव· प्र } १}{\text{इव } १}$, इस से '–इष्टभाजिते' 'मूले ते स्तः' यह उपपन्न हुआ।

इसी भाँति, वे दोनों पक्ष इष्टवर्ग से गुणित भी समान हैं––

कव. प्र· इव १ क्षे. इव १ =ज्येव. इव १

अब यहां पर भी दूसरे पक्ष का मूल इष्टगुणित ज्येष्ठ कल्पना किया 'इ. ज्ये १' और पहले पक्ष के प्रथम खण्ड में इष्टगुणित कनिष्ठ को अन्य कनिष्ठ कल्पना किया 'इ· क १' इसका वर्गप्रकृति से गुणित प्रथम खण्ड है 'इव· कव. प्र १' और इसी पक्ष के द्वितीय खण्ड में इष्टवर्ग से गुणित क्षेप है 'क्षे. इव १' यही अन्य क्षेप हुआ। इससे 'अथवा क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे' यह उपपन्न हुआ।

(५) द्विगुण इष्ट को कनिष्ठ कल्पना किया 'इ २' और इसके वर्ग को प्रकृति से गुण दिया 'इव· प्र ४' अब इस में क्या जोड़ देने से मूल मिलेगा? इस का विचार—'चतुर्गुणस्य घातस्य युतिवर्गस्य चान्तरम्। राश्यन्तरकृतेस्तुल्यम्—' इस वक्ष्यमाण सूत्र के अनुसार उद्दिष्ट दो राशि के अन्तरवर्ग से जुड़ा हुआ उनका चौगुना घात युतिवर्ग है, और उसका मूल अवश्य मिलेगा। यहां कनिष्ठवर्ग और प्रकृति का चौगुना घात है और इष्ट कनिष्ठ है, इसलिये इष्टवर्ग और प्रकृति का चौगुना घात हुआ। अब इसमें इष्टवर्ग और प्रकृति का अन्तर वर्ग 'इव १ प्र १' जोड़ देने से अवश्य मूल मिलेगा, तो दूने इष्ट को कनिष्ठ कल्पना किया है, इसलिये इष्टवर्ग और प्रकृति के अन्तरवर्ग के समान क्षेप में, ज्येष्ठपद सिद्ध होगा। पर हमको रूपक्षेप में चाहिये इसलिये 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यादिष्ट-भाजिते; मूले ते स्तः—' इस उक्त सूत्र के अनुसार इष्टवर्ग और प्रकृति के अन्तर के समान इष्ट कल्पना किया, तो उसके वर्ग का क्षेप में भाग देने से अवश्य रूप होगा। कनिष्ठ में तो इष्टवर्ग और

प्रकृति के अन्तर का भाग देना चाहिये और कनिष्ठ द्विगुण-इष्ट है, इस से 'इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भजेत्, द्विघ्नमिष्टं कनिष्ठं तत्पदं स्यादेकसंयुतौ' यह सूत्र उपपन्न हुआ।

अथवा—

कनिष्ठ का मान यावत्तावत् कल्पना किया या १, इससे 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या—' इस सूत्र के अनुसार रूपक्षेप में ज्येष्ठ वर्ग सिद्ध हुआ याव· प्र १ रू १। और रूपयुक्त इष्टगुणित कनिष्ठ को ज्येष्ठ कल्पना किया या. इ १ रू १। अब इस ज्येष्ठवर्ग 'याव. इव १ या. इ २ रू १' के साथ पूर्व साधित ज्येष्ठवर्ग 'याव. प्र १ रू१' का समीकरण के लिये न्यास—

याव. प्र १ रू १
याव. इव १ या. इ २ रू १

समशोधन करने से—

याव.प्र १ याव. इव १̇
या. इ २

यावत्तावत् का अपवर्त्तन देने से—

या. प्र १ या. इव १̇
इ २

इन दोनों पक्षों में इष्टवर्गोन प्रकृति 'इव १̇ प्र १' का भाग देने से पहले पक्ष में लब्ध यावत्तावत् आया, या १ और दूसरे पक्ष में हर से भाजित दूना इष्ट लब्ध हुआ $\frac{\text{इ २}}{\text{इव १̇ प्र १}}$ यही यावत्तावत् का मान है। इससे भी उक्त सूत्र की वासना स्पष्ट होती हैं॥

उदाहरणम्—

को वर्गोऽष्टहतः सैकः कृतिः स्याद्गणकोच्यताम्।
एकादशगुणः को वा वर्गः सैकः कृतिः सखे२८

प्रथमोदाहरणे न्यासः ।

प्र ८ । क्षे * । अत्रैकमिष्टं ह्रस्वं प्रकल्प्य जाते मूले सक्षेपे क १ ज्ये ३ क्षे १ एषां भावनार्थं न्यासः ।

प्र ८ । क १ ज्ये ३ क्षे १
क १ ज्ये ३ क्षे १

अत्र सूत्रम् 'वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोः—' इत्यादिना प्रथमकनिष्ठद्वितीयज्येष्ठमूलाभ्यासः ३ । द्वितीयज्येष्ठप्रथमकनिष्ठमूलाभ्यासः ३ । अनयोरैक्यं ६ कनिष्ठपदं स्यात् । कनिष्ठयोराहतिः १ प्रकृतिगुणा ८ ज्येष्ठयोरभ्यासेनानेन ९ युता १७ ज्येष्ठपदं स्यात् । क्षेपयोराहतिः क्षेपकः स्यात् १ ।

प्राङ्मूलक्षेपाणामेभिः सह भावनार्थं न्यासः ।

प्र ८ । क १ ज्ये ३ क्षे १
क ६ ज्ये १७ क्षे १

भावनया लब्धे मूले क ३५ ज्ये ९९ क्षे १ । एवं पदानामानन्त्यम् ।

---

* अत्र ज्ञानराजदैवज्ञाः—

कोऽयं वर्गः स्वर्गदीपैर्विनिघ्नो रूपेणाढ्यो जायते वर्ग एव ।
को वा वर्गो भर्गनिघ्नः सरूपो वर्गः स्यात्तौ वर्गवादिन् वदाशु ॥

द्वितीयोदाहरणे रूपमिष्टं कनिष्ठं प्रकल्प्य तद्वर्गात् प्रकृतिगुणात् ११ रूपद्वयमपास्य मूलं ज्येष्ठम् ३। अत्र भावनार्थं न्यासः।

प्र ११। क १ ज्ये ३ क्षे $\dot{२}$
क १ ज्ये ३ क्षे $\dot{२}$

प्राग्वल्लब्धे चतुःक्षेपकमूले क ६ ज्ये २० क्षे ४। 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः–' इत्यादिना जाते रूपक्षेपमूले क ३ ज्ये १० क्षे १ अतस्तुल्य-भावनया वा कनिष्ठज्येष्ठमूले जाते क ६० ज्ये १९९ क्षे १। एवमनन्तमूलानि।

अथवा रूपं कनिष्ठं प्रकल्प्य जाते पञ्च-क्षेपपदे क १ ज्ये ४ क्षे ५ अतस्तुल्यभावनया मूले क ८ ज्ये २७ क्षे २५। 'इष्टवर्गहृतः–' इत्यादिना पञ्चकमिष्टं प्रकल्प्य जाते रूप-क्षेपपदे।

क $\frac{८}{५}$ ज्ये $\frac{२७}{५}$ क्षे १

अनयोः पूर्वमूलाभ्यां सह भावनार्थं न्यासः।

प्र ११। क $\frac{८}{५}$ ज्ये $\frac{२७}{५}$ क्षे १
क ३ ज्ये १० क्षे १

भावनया लब्धे मूले क $\frac{१६१}{५}$ ज्ये $\frac{४३४}{५}$ क्षे १ ।
अथवा 'ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं—' इत्यादिना कृतया भावनया जाते मूले क $\frac{१}{५}$ ज्ये $\frac{६}{५}$ क्षे १
एवमनेकधा । 'इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तन वा भवेत्—' इत्यादिना पक्षान्तरेण पदे रूपक्षेपे प्रतिपाद्येते। तत्र प्रथमोदाहरणे रूपत्रयमिष्टं प्रकल्पितम् ३। अस्य वर्गः ९ । प्रकृतिः ८ अनयोरन्तरं १ अनेन द्विघ्नमिष्टं भक्तं ६ जातं रूपक्षेपे कनिष्ठं पदम् अतः पूर्ववज्ज्येष्ठम् १७।
एवं द्वितीयोदाहरणेऽपि रूपत्रयमिष्टं प्रकल्प्य जाते कनिष्ठज्येष्ठे ३।१०
एवमिष्टवशात्समासान्तरभावनाभ्यां च पदानामानन्त्यम् ।

इति वर्गप्रकृतिः ।

---

(१) उदाहरण—
वह कौन सा वर्ग है, जिस को आठ से गुणाकर, एक जोड़ देते हैं तो वर्ग होता है ।

न्यास । प्र ८ क्षे १

यहां कनिष्ठ १ कल्पना किया, इस के वर्ग १ को प्रकृति ८ से गुणने से ८ हुआ, इस में १ जोड़ देने से ९ का मूल ज्येष्ठ ३ हुआ । अब तुल्य भावना के लिये न्यास—

प्र ८ । क १ ज्ये ३ क्षे १ }
क १ ज्ये ३ क्षे १ } यहां 'वज्राभ्यासौ ज्येष्ठ-
लघ्वोः—' इस सूत्र के अनुसार पहले कनिष्ठ १ और दूसरे ज्येष्ठ ३ का घात ३ हुआ, दूसरे कनिष्ठ १ और पहले ज्येष्ठ ३ का घात ३ हुआ, दोनों घातों का योग ६ कनिष्ठपद हुआ। दोनों कनिष्ठों १। १ का घात १ हुआ, इस को प्रकृति ८ से गुणित ८ में, दोनों ज्येष्ठों ३।३ के घात ९ को जोड़ने से १७ ज्येष्ठपद हुआ। दोनों क्षेपों १।१ का घात १ क्षेप हुआ। अब पहले सिद्ध कनिष्ठ १ ज्येष्ठ ३ और क्षेप १ को कनिष्ठ ६ ज्येष्ठ १७ और क्षेप १ के साथ भावना के लिये न्यास। क १ ज्ये ३ क्षे १ }
क ६ ज्ये १७ क्षे १ } यहां पहले कनिष्ठ १ और दूसरे ज्येष्ठ १७ का घात १७ हुआ, इसी प्रकार दूसरे कनिष्ठ ६ और पहले ज्येष्ठ ३ का घात १८ हुआ। इन दोनों घातों का योग ३५ कनिष्ठपद हुआ। कनिष्ठों १। ६ का घात ६ प्रकृति ८ गुणित ४८ हुआ, इस में ज्येष्ठों ३। १७ के घात ५१ को जोड़ने से ९९ ज्येष्ठपद हुआ। और क्षेपों १। १ का घात १ क्षेप हुआ। इस प्रकार, भावनावश अनेक कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप होंगे।

(२) उदाहरण—

वह कौनसा वर्ग है, जिस को ग्यारह से गुण देते हैं और उस में एक जोड़ देते हैं, तो वर्ग होता है।

न्यास। प्र ११। क्षे १।

यहां कनिष्ठ १ कल्पना करके उसका वर्ग १ हुआ। यह प्रकृति ११ से गुणित ११ हुआ, इस में २ घटा देने से ९ शेष का मूल ज्येष्ठ ३ हुआ। अब तुल्य भावना के लिये न्यास। प्र ११ क १ ज्ये ३ क्षे २̇ }
क १ ज्ये ३ क्षे २̇ }

यहां ज्येष्ठ और कनिष्ठों के वज्राभ्यास ३। ३ का योग ६ कनिष्ठ हुआ। और कनिष्ठों १। १ का घात १ प्रकृति ११ से गुणित और ज्येष्ठाभ्यास ९ युक्त २० ज्येष्ठपद हुआ। क्षेपों २̇। २̇ का घात ४ क्षेप हुआ। इन कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेपों का क्रम से न्यास।

क ६ ज्ये २० क्षे ४ । यहां इष्ट २ मान कर उस का वर्ग किया ४ हुआ, इस का क्षेप ४ में भाग देने से १ क्षेप हुआ । और इष्ट २ का पदों में भाग देने से, कनिष्ठ ज्येष्ठ हुए । उन का यथाक्रम न्यास । क ३ ज्ये १० क्षे १ ।

अब समास-भावना के लिये न्यास—

क ३ ज्ये १० क्षे १
क ३ ज्ये १० क्षे १ } यहां वज्राभ्यासों ३० । ३० का

योग ६० कनिष्ठ हुआ । और कनिष्ठों ३।३ का घात ९ प्रकृति ११ से गुणित ९९ में ज्येष्ठाभ्यास १०० को जोड़ने से १९९ ज्येष्ठ हुआ । क्षेपों १ । १ का घात १ क्षेप हुआ । इनका यथाक्रम न्यास । क ६० ज्ये १९९ क्षे १ । इस प्रकार भावना से अनेक मूल सिद्ध होंगे ।

अथवा । इष्ट १ कनिष्ठ कल्पना करके, उसके वर्ग १ को प्रकृति ११ से गुणा कर, क्षेप ५ जोड़ने से १६ का मूल ४ हुआ, यह ज्येष्ठ है । इन का क्रम से न्यास । क १ ज्ये ४ क्षे ५ समास-भावना के लिये न्यास—

क १ ज्ये ४ क्षे ५
क १ ज्ये ४ क्षे ५ } वज्राभ्यासों ४ । ४ का योग ८ कनिष्ठ

हुआ । कनिष्ठों १ । १ के घात १ को प्रकृति ११ से गुणा कर, ज्येष्ठाभ्यास १६ जोड़ देने से २७ ज्येष्ठ हुआ । क्षेपों ५ । ५ का घात २५ क्षेप हुआ । अब 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः—' इस सूत्र के अनुसार ५ इष्ट कल्पना करने से, रूपक्षेप में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क $\frac{८}{५}$ ज्ये $\frac{२७}{५}$ क्षे १

इन का पूर्वमूल के साथ भावना के लिये न्यास—

प्र ११ । क $\frac{८}{५}$ ज्ये $\frac{२७}{५}$ क्षे १

क ३ ज्ये १० क्षे १

यहां समास-भावना से नीचे लिखे मूल निष्पन्न हुए—

क $\frac{२६१}{५}$ ज्ये $\frac{५३४}{५}$ क्षे १

'अथवा ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं वा—' इस सूत्र के अनुसार वज्राभ्यासों $\frac{८०}{५}$ । $\frac{८१}{५}$ का अन्तर $\frac{१}{५}$ कनिष्ठ हुआ, और कनिष्ठों $\frac{८}{५}$ । ३ का घात $\frac{२४}{५}$ प्रकृति ११ से गुणित $\frac{२६४}{५}$ हुआ एवं वज्राभ्यास $\frac{२७०}{५}$ हुआ, दोनों का अन्तर ज्येष्ठ हुआ $\frac{६}{५}$ । क्षेपों १ । १ का घात १ क्षेप हुआ । इनका यथाक्रम न्यास—

क $\frac{१}{५}$ ज्ये $\frac{६}{५}$ क्षे १ ।

अब 'इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भजेत्—' इस प्रकार के अनुसार रूपक्षेप में पद सिद्ध करते हैं—(१) उदाहरण में इष्ट ३ कल्पना किया, इसका वर्ग ९ हुआ, अब ९ का और प्रकृति ८ का अन्तर १ हुआ, इस का दूने इष्ट ६ में भाग देने से ६ लब्धि मिली, यही रूपक्षेप में कनिष्ठ हुआ । इस के वर्ग ३६ को प्रकृति ८ से गुण कर, १ जोड़ने से २८९ का मूल १७ ज्येष्ठ हुआ । और क्षेप १ है ।

इन का यथाक्रम न्यास, क ६ ज्ये १७ क्षे १ ।

(२) उदाहरण में इष्ट ३ मानकर, उस का वर्ग किया ९ हुआ, फिर इसका और प्रकृति ११ का अन्तर २ हुआ, इस अन्तर का द्विगुण इष्ट ६ में भाग देने से, कनिष्ठ ३ लब्ध मिला । उसके वर्ग ९ को प्रकृति ११ से गुण कर, उस में १ मिलाने से १०० का मूल १० ज्येष्ठ हुआ । और क्षेप १ है । इन का यथाक्रम न्यास । क ३ ज्ये १० क्षे १ ।

इस प्रकार, इष्ट कल्पना करने से, तथा समास-भावना और अन्तर भावना के वश से, अनन्त पद सिद्ध होंगे ।

वर्गप्रकृति समाप्त ।

---

९८ अथ चक्रवाले करणसूत्रं वृत्तचतुष्टयम्—

ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपान्भाज्यप्रक्षेपभाजकान् ४६
कृत्वा कल्प्यो गुणस्तत्र तथा प्रकृतितश्च्युते।
गुणवर्गे प्रकृत्योनेऽथवाल्पं शेषकं यथा ४७॥
तत्तु क्षेपहृतं क्षेपो व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते।
गुणलब्धिः पदं ह्रस्वं ततो ज्येष्ठमतोऽसकृत् ४८
त्यक्त्वा पूर्वपदक्षेपांश्चक्रवालमिदं जगुः।
चतुर्द्व्येकयुतावेवमभिन्ने भवतः पदे ॥ ४९ ॥
चतुर्द्विक्षेपमूलाभ्यां रूपक्षेपार्थभावना * ॥

अथ कनिष्ठज्येष्ठयोरभिन्नतार्थं चक्रवालाख्यां वर्गप्रकृतिमनुष्टुभां चतुष्टयेनाह—ह्रस्वेति। प्रथमतः 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः।' इत्यादिना ह्रस्वज्येष्ठक्षेपान् कृत्वा कुट्टकेन तथा गुणः साध्यः यथा गुणस्य वर्गे प्रकृतितश्च्युते प्रकृत्या ऊने वा शेषकमल्पकं स्यात्। तत्तु शेषं पूर्वक्षेपहृतं सत् क्षेपः स्यात्। गुणवर्गे प्रकृतितश्च्युते सति अयं क्षेपो व्यस्तः स्यात्। धनं चेदृणमृणं चेद्धनं भवेदित्यर्थः। यस्य गुणस्य वर्गेण प्रकृत्या सहान्तरं कृतं तस्य गुणस्य या लब्धिस्तत्कनिष्ठपदं स्यात्। ततः कनिष्ठाज्ज्येष्ठं

---

* अत्र विशेषः—

निरग्रमूलं प्रकृतेर्हि लब्धिस्तावच्च शेषं च हरस्तदग्रम्।
मूलाब्धशेषं हि निरग्रमासं हरेण नूलं फलमेतदस्तः॥
छिच्छेषहीनो नवशेषकं स्यात्तद्वर्गहीना प्रकृतिर्हराप्ता।
नवो हरः स्यादसकृद्विधेयमित्थं यदा रूपमितो हरः स्यात्॥
तदा लब्धितः क्षेपके रूपतुल्ये गुणासी प्रसाध्ये विदा कुट्टकेन।
गुणः स्यात्कनिष्ठं तथा ज्येष्ठमाप्तिर्भवेत्क्षेपके रूपतुल्ये तदैव॥

पूर्ववत्स्यात्। अथ प्रथमकनिष्ठज्येष्ठक्षेपांश्च त्यक्त्वा संप्रति साधितेभ्यः कनिष्ठज्येष्ठक्षेपेभ्यः पुनः कुट्टकेन गुणाप्ती आनीय उक्तवत्कनिष्ठज्येष्ठक्षेपाः साध्याः। एवमसकृत्। आचार्या एतद्गणितं चक्रवालमिति जगुः। एवं चक्रवालेन चतुर्द्व्येकयुतौ चतुःक्षेपे द्विक्षेपे एकक्षेपे च अभिन्ने पदे भवतः। इदमुपलक्षणम्। यत्र कुत्रापि क्षेपे अभिन्ने पदे भवतः। युतौ, इत्युपलक्षणम्। तेन शुद्धावपीति ज्ञेयम्। अथ रूपक्षेपपदानयने प्रकारान्तरमस्तीत्याह-चतुरिति। चतुःक्षेपमूलाभ्यां द्विक्षेपमूलाभ्यां च रूपक्षेपार्थं भावना

यदा लब्धयः स्युः समाश्चेन्न चैवं तदा रूपशुद्धौ गुणो लब्धिरत्र।
अनेन प्रकारेण मूले अभिन्ने भवेतामिति प्रोक्तवान्वापुदेवः॥
अत्रेष्टहारावधिलब्धितश्चेत्संसाधिते रूपयुतौ गुणाप्ती।
तैस्तस्तदाभीष्टहराङ्कतुल्यक्षेपे लघुज्येष्ठपदे तदैव॥
यदा समास्ताः खलु लब्धयः स्युर्यदा तु ताः स्युर्विषमास्तदानीम्।
अभीष्टहाराङ्कसमानशुद्धौ ज्ञेये सुदभ्रप्रधिया पदे ते॥
　　अत्रेष्टच्छिद् द्वितुल्यश्चेत्तदा तत्सिद्धमूलतः।
　　रूपक्षेपपदार्थं वा विधेया तुल्यभावना॥

'का सप्तषष्टिगुणिता कृतिरेकयुक्ता—' इस आचार्योक्त उदाहरण में प्रकृति=६७। क्षेप=१। सूत्रानुसार प्रकृति का निरग्रमूल ८ लब्धि, और लब्धि ८ शेष, तदा अग्र ३ हर, कल्पना किया। मूल ८ और लब्धि ८ के योग १६ में, हर ३ का भाग देने से ५ निरग्र लब्धि मिली, यह नवीन लब्धि हुई। इससे हर ३ को गुणने से १५ हुए, इन में शेष ८ घटा देने से ७ नवीन शेष हुआ। इस के वर्ग ४९ को प्रकृति ६७ में घटा देने से १८ रहे, इन में हर ३ का भाग देने से ६ नवीन हर सिद्ध हुआ। इस प्रकार जबतक रूप तुल्य हर न सिद्ध हो तबतक क्रिया करने से तीन पंक्ति हुई—

लब्धि=८, ५, २, १, १, ७, १, १, २, ५
शेष=८, ७, ५, २, ७, ७, २, ५, ७, ८
हर=३, ६, ७, ९, २, ९, ७, ६, ३, १

और लब्धियों से रूपक्षेप में वल्ली हुई—

वल्ली=८, ५, २, १, १, ७, १, १, २, ५, १, ०

'कार्या' इति शेषः। चतुःक्षेपे 'इष्टवर्गहृतः—' इत्यादिना। द्विक्षेपे तु तुल्यभावनया चतुःक्षेपपदे प्रसाध्य पश्चात् 'इष्टवर्गहृतः—' इत्यादिना रूपक्षेपजे पदे वा भवतः॥

अब कनिष्ठ और ज्येष्ठ के अभिन्न मान के लिये, चक्रवाल नामक वर्गप्रकृति का विशेष कहते हैं—

यहां पहले 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः—' इस सूत्र के अनुसार कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध करना बाद उन को भाज्य, क्षेप और भाजक कल्पना कर के कुट्टकविधि से गुण सिद्ध करना, पर वह (गुण) ऐसा हो कि जिसके वर्ग को प्रकृति में घटा देने से अथवा प्रकृति ही को उस में घटा देने से शेष थोड़ा रहे। उस शेष में पहले क्षेप

इस वल्ली पर से, कुट्टक द्वारा गुण ५१६७ लब्धि ४८८४२ हुई, लब्धियों के सम होने के कारण, यही रूपक्षेप में कनिष्ठ-ज्येष्ठ पद हुए। और यही कनिष्ठ-ज्येष्ठ 'ह्रस्व-ज्येष्ठपदक्षेपान्–' इत्यादि प्रकार से सिद्ध किये गये हैं।

लब्धि के चार अङ्क लेने से, रूपक्षेप में वल्ली—

८
५
२
१
१
०

इस से कुट्टक द्वारा गुण १६ लब्धि १३१। यही इष्ट हराङ्क ६ धनक्षेप में कनिष्ठ और ज्येष्ठ हुए। लब्धि के तीन अङ्क लेने से रूपक्षेप में वल्ली—

८
५
२
१
०

इस से कुट्टक द्वारा गुण ११ लब्धि ९०। यही इष्ट हराङ्क ७ ऋणक्षेप में कनिष्ठ और ज्येष्ठ हुए। इत्यादि॥

का भाग देने से क्षेप होगा। पर इतना विशेष है कि जिस अवस्था में गुणवर्ग प्रकृति में घटेगा तो यह क्षेप व्यस्त होगा अर्थात् धन हो तो ऋण और ऋण हो तो धन जाना जायगा। और जिस गुण का प्रकृति से अन्तर किया है उस गुण की लब्धि कनिष्ठ होगा, बाद उक्त रीति से कनिष्ठ पर से ज्येष्ठ सिद्ध करना। अनन्तर, पहले साधित कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप को बिगाड़ कर, इन नये कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप से, कुट्टक के द्वारा गुण-लब्धि लाना और उन से कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध करना। इस भांति, असकृत् अर्थात् बार-बार क्रिया करना। यों चार, दो और एक धनक्षेप में, अभिन्न कनिष्ठ-ज्येष्ठ होंगे। यहां उद्दिष्ट ४ आदि संख्या और धनक्षेप उपलक्षण है, इस कारण इष्ट संख्या के धनक्षेप अथवा ऋणक्षेप में अभिन्न पद होंगे। और ४। २ क्षेपों से रूपक्षेप होने के लिये भावना करनी चाहिये वह इस प्रकार—जिस स्थान में ४ क्षेप हो, वहां 'इष्टवर्गहृत:—' इस सूत्र के अनुसार रूपक्षेप सिद्ध करना और जहां पर २ क्षेप हो, वहां तुल्य भावना से ४ क्षेप सिद्ध करना बाद 'इष्टवर्गहृत:—' इस सूत्र से रूपक्षेप में होगा।

उपपत्ति-

१ कनिष्ठ और प्रकृत्यून इष्टवर्ग क्षेप कल्पना किया—

कनिष्ठ= १ , क्षेप= प्र १̇ इव १

कनिष्ठ १ के वर्ग १ को प्रकृति १ से गुण कर उस में क्षेप प्र १̇ इव जोड़ने से इव १ हुआ, इसका मूल इ १ ज्येष्ठ है, अब इसका ज्ञात कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेपों के साथ भावना के लिये न्यास——

प्र १ । क १ ज्ये १ क्षे १
रू १ इ १ प्र १̇ इव १ } यहां वज्राभ्यासों

क. इ १ । ज्ये १ का योग क. इ १ ज्ये १ कनिष्ठ हुआ। कनिष्ठों क १ रू १ के घात को प्रकृति से गुण कर, उस में ज्येष्ठाभ्यास ज्ये. इ १ को जोड़ देने से ज्येष्ठ हुआ प्र. क १ इ. ज्ये १ और क्षेपों का घात क्षेप हुआ प्र. क्षे १̇ क्षे. इव १ अब क्षेप के तुल्य इष्ट

कल्पना करके 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः—' इस सूत्र के अनुसार कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

$$\text{कनिष्ठ} = \frac{\text{इ. क १ ज्ये १}}{\text{क्षे १}} ।$$

$$\text{ज्येष्ठ} = \frac{\text{प्र. क १ इ. ज्ये १}}{\text{क्षे १}} ।$$

$$\text{क्षेप} = \frac{\text{प्र. क्षे १ क्षे. इव १}}{\text{क्षेव १}} = \frac{\text{प्र १ इव १}}{\text{क्षे १}} ।$$

यहाँ कनिष्ठ के अभिन्नत्व के लिये कुट्टक के द्वारा गुण का ज्ञान किया है। वह गुण इष्टसंज्ञक कनिष्ठ से गुणित ज्येष्ठ से सहित और क्षेप से भाजित लब्ध होता है और वही कनिष्ठ है। इस से 'इष्टवर्ग, प्रकृति से ऊन और क्षेप से भाजित क्षेप होता है' यह बात सिद्ध हुई। यदि प्रकृति में, इष्टवर्ग शुद्ध हो तो ऋणशेष में क्षेप का भाग देने से ऋणगत क्षेप होगा। इसलिये 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते' यह भी उपपन्न हुआ।

अथवा—

यदि कनिष्ठ इष्ट से गुणा जाय, तो क्षेप इष्टवर्ग से गुणा जायगा। इस भाँति कनिष्ठ और क्षेप हुए, इ. क १। इव. क्षे १

अब क्षेपतुल्य इष्ट कल्पना करने से कनिष्ठ और क्षेप सिद्ध हुए—

$$\frac{\text{इ. क १}}{\text{क्षे १}} । \frac{\text{इव. क्षे १}}{\text{क्षेव १}} = \frac{\text{इव १}}{\text{क्षे १}} ।$$

इष्टगुणित और क्षेपभक्त कनिष्ठ, यदि कनिष्ठ कल्पना किया जाय तो क्षेप से भाजित इष्टवर्ग क्षेप होगा। पर ऐसा इष्ट मानना चाहिये कि जिससे गुणित और क्षेप से भाजित हुआ कनिष्ठ शुद्ध हो। तो कनिष्ठ को भाज्य, क्षेप को हार कल्पना कर के कुट्टकद्वारा क्षेपाभाव में गुण लब्धि सिद्ध करनी चाहिये, लब्धि कनिष्ठ और गुण इष्ट होगा। इसलिये गुण का वर्ग पूर्व क्षेप से भाजित क्षेप होता है और ज्येष्ठ भी गुण से गुणित क्षेप से भक्त ज्येष्ठ होता है। पर यों क्षेप बड़ा होता

है इस कारण आचार्य ने यत्नान्तर किया है—कनिष्ठ को भाज्य 'ज्येष्ठ को क्षेप और क्षेप को हार मान कर गुण लब्धि सिद्ध की है, और पहले गुण से गुणित कनिष्ठ, क्षेप से भाजित कनिष्ठ होता रहा। अब गुण से गुणित कनिष्ठ, ज्येष्ठ से जुड़ा कनिष्ठ होता है, इसलिये क्षेपभक्त ज्येष्ठ कनिष्ठ में अधिक हुआ। प्रकृति से गुणित कनिष्ठ के वर्ग में क्या अधिक हुआ इसका विचार करते हैं—

$$\text{पूर्व सिद्ध कनिष्ठ} = \frac{\text{इ. क १}}{\text{क्षे १}} ।$$

$$\text{उसका वर्ग} = \frac{\text{इव. कव १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

$$\text{प्रकृति से गुणित} = \frac{\text{इव. कव. प्र १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

$$\text{ज्येष्ठ सिद्ध करने के लिये क्षेप} = \frac{\text{इव १}}{\text{क्षे १}} ।$$

$$\text{ज्येष्ठ से युक्त क्षेप से भाजित कनिष्ठ} = \frac{\text{इ. क १ ज्ये १}}{\text{क्षे १}} ।$$

$$\text{उसका वर्ग} = \frac{\text{इव. कव १ इ. क. ज्ये २ ज्येव १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

$$\text{प्रकृति से गुणित} = \frac{\text{इव. कव. प्र १ इ. क. ज्ये. प्र २ ज्येव प्र १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

अन्तिम खण्ड को प्रकारान्तर से सिद्ध करते हैं—

प्रकृति से गुणित, क्षेप से युक्त कनिष्ठवर्ग, ज्येष्ठवर्ग के समान है

कव. प्र १ क्षे १

यह प्रकृति से गुणित हुआ—

कव. प्रव १ क्षे. प्र १ इस भांति अभिमत स्वरूप हुआ—

$$\frac{\text{इव. कव. प्र १ इ. क ज्ये. प्र २ कव. प्रव १ क्षे. प्र १}}{\text{क्षेव १}}$$

इससे स्पष्ट है कि—

$$\frac{\text{इ. क. ज्ये. प्र २ कव. प्रव १ क्षे. प्र १}}{\text{क्षेव १}}।$$

इतना प्रकृति से गुणित कनिष्ठ के वर्ग में अधिक है, और ज्येष्ठ-वर्ग के लिये पूर्व युक्ति के अनुसार क्षेप से भाजित गुणवर्ग क्षेप्य है, अधिक के दो खण्ड किये—

$$\text{पहला खण्ड}=\frac{\text{इ. क. ज्ये. प्र २ कव. प्रव १}}{\text{क्षेव १}}।$$

$$\text{दूसरा खण्ड}=\frac{\text{क्षे. प्र १}}{\text{क्षेव १}}=\frac{\text{प्र १}}{\text{क्षे १}}।$$

अपवर्तित दूसरा खण्ड क्षिप्त है; पर क्षेप से भाजित गुणवर्ग क्षेप्य है, और क्षेप से भाजित गुणवर्ग और प्रकृति का अन्तर भी क्षेप्य है। ऐसी स्थिति में, क्षेप से भाजित गुण वर्ग ही क्षिप्त होता है, इसलिये कहा है कि 'तथा प्रकृतितश्च्युते' गुणवर्गे प्रकृत्योनेऽथवाल्पं शेषकं यथा, तत्तु क्षेपहृतं क्षेपः, इति।

यदि प्रकृति से गुणवर्ग अधिक हो, तो उस अवस्था में क्षेप से भाजित गुणवर्ग और प्रकृति का अन्तर योज्य है, क्योंकि क्षिप्त न्यून है। यदि गुणवर्ग न्यून हो तो, क्षेप से भाजित गुणवर्ग और प्रकृति का अन्तर शोध्य है, क्योंकि क्षिप्त अधिक है। इसलिये कहा है कि 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते'।

जो 'गुणवर्गे प्रकृत्योनेऽथ वाल्पं शेषकं' यह कहा है, वह क्षेप की लघुता के लिये है। अब यों भी ज्येष्ठवर्ग में इतना अधिक है—

$$\frac{\text{इ. क. ज्ये. प्र २ कव. प्रव १}}{\text{क्षेव १}}।$$

$$\text{ज्येष्ठ}=\frac{\text{इ. ज्ये १}}{\text{क्षे १}}। \qquad \text{ज्येष्ठवर्ग}=\frac{\text{इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}}।$$

$$\text{इसमें अधिक जोड़ने से हुआ}=\frac{\text{इव. ज्येव १ इ. क. ज्ये. प्र २ कव. प्रव १}}{\text{क्षेव १}}।$$

इस प्रकार अधिक होने पर भी 'कृतिभ्य आदाय पदानि—' इस सूत्र के अनुसार मूल आता है, इसलिये यह भी ज्येष्ठ वर्ग है। यहां इतना विशेष है कि—यदि इष्ट गुणित, क्षेप भक्त कनिष्ठ, कनिष्ठ कल्पना किया जाय तो, क्षेप से भाजित इष्टवर्ग क्षेप होगा और इष्ट से गुणा क्षेप से भाजित ज्येष्ठ, ज्येष्ठ होगा। यदि इष्ट से गुणित, ज्येष्ठ से युक्त और क्षेप से भाजित कनिष्ठ, कनिष्ठ कल्पना किया जाय तो, क्षेप से भाजित गुणवर्ग और प्रकृति का अन्तर क्षेप होगा और इष्ट से गुणित, प्रकृति से गुणित कनिष्ठ से सहित क्षेप से भक्त ज्येष्ठ, ज्येष्ठ होगा। यहां पर, यद्यपि इष्टवश से पद सिद्धि होती है, इसलिये कुट्टक की अपेक्षा नहीं है, तो भी अभिन्नता के लिये कुट्टक किया है। इस से 'ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपान्—' इत्यादि उपपन्न हुआ। यहां पूर्वरीति के अनुसार, कनिष्ठ पर से ज्येष्ठ का साधन कहा है। अथवा, गुणक से गुणित, प्रकृति से गुणित कनिष्ठ से सहित और क्षेप से भाजित ज्येष्ठ, ज्येष्ठ होता है। यह बीजनवाङ्कुरकार का परामर्श है।

अब उक्त वासना के कुछ अंश को प्रकारान्तर से निरूपण करते हैं—

$$\text{पूर्वसिद्ध} = \frac{\text{प्र. इव. कव १ प्र. इ. क. ज्ये २ कव. प्रव १ प्र. क्षे १}}{\text{क्षेव १}}।$$

यह जिससे जुड़ा मूलप्रद हो, वह क्षेप है और मूल ज्येष्ठ है, अब मूल मिलने के लिये यदि $\frac{\text{प्र. इव. कव १̇}}{\text{क्षेव १}}$ इस पहले खण्ड के तुल्य ऋणखण्ड को जोड़ दें तो, पहला खण्ड उड़ जाता है और $\frac{\text{प्र. क्षे १̇}}{\text{क्षेव}}$ इस चौथे खण्ड के तुल्य ऋणखण्ड को जोड़ दें तो, चौथा खण्ड उड़ जाता है और तीसरे खण्ड का मूल आता है।

$\frac{\text{क. प्र १}}{\text{क्षे १}}$ इस मूल का $\frac{\text{प्र. इ. क. ज्ये २}}{\text{क्षेव १}}$ इस दूसरे खण्ड में भाग

देने से लब्धि मिली $\frac{\text{क्षे. प्र. इ. क. ज्ये २}}{\text{क. प्र. क्षेव १}}=\frac{\text{इ. ज्ये २}}{\text{क्षे १}}$ ।

लब्धि के आधे के वर्ग को $\frac{\text{इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}}$ ।

जोड़ देने से मूल आता है $\frac{\text{इ. ज्ये १}}{\text{क्षे १}}$ ।

इस मूल और पहले मूल के दूने घात को, दूसरे खण्ड में घटा देने से, वह खण्ड भी उड़ जाता है । इस भांति क्षेप ज्ञात हुआ——

$$\frac{\text{प्र. इव. कव }\dot{\text{१}}\text{ प्र. क्षे. }\dot{\text{१}}\text{ इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}} \text{ ।}$$

इसको प्रकृति से गुणित कनिष्ठवर्ग में जोड़ देने से ज्येष्ठ का वर्ग हुआ——

$$\frac{\text{प्र.इव.कव१प्र.इ.क.ज्ये२प्रव.कव१प्र.क्षे१}}{\text{क्षेव १}}+\frac{\text{प्र.इव.कव}\dot{\text{१}}\text{प्र.क्षे}\dot{\text{१}}\text{इव.ज्येव१}}{\text{क्षेव १}}$$

$$=\frac{\text{प्रव. कव १ प्र. इ. क. ज्ये २ इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}} \text{ ।}$$

इस का मूल ज्येष्ठ है——

$$\frac{\text{प्र. क. १ इ. ज्ये १}}{\text{क्षे १}} \text{ ।}$$

इस से 'इष्ट गुणित ज्येष्ठ से युक्त और क्षेप से भक्त प्रकृति से गुणित कनिष्ठ, ज्येष्ठ होता है' यह बात सिद्ध होती है ।

और, क्षेप के $\frac{\text{प्र. इव. कव }\dot{\text{१}}\text{ प्र. क्षे }\dot{\text{१}}\text{ इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}}$ ।

पहले तथा तीसरे खण्ड में इष्टवर्ग का भाग देने से——

$$\frac{\text{प्र. कव }\dot{\text{१}}\text{ ज्येव १}}{\text{क्षेव १}} \text{ ।}$$

यह क्षेप हुआ। क्योंकि ज्येष्ठवर्ग में प्रकृति से गुणित कनिष्ठवर्ग को घटा देने से शेष रहता है।

$$\frac{\text{प्रव. कव १ प्र. इ. क. ज्ये २ इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}}$$

$$=\frac{\text{प्र. इव. कव १ प्र. इ. क. ज्ये २ प्रव. कव १ प्र. क्षे १}}{\text{क्षेव १}}।$$

$$=\frac{\text{प्र. इव. कव १̇ इव. ज्येव १ प्र. क्षे १̇}}{\text{क्षेव १}}।$$

क्षेप को इष्टवर्ग से गुण देना चाहिये, क्योंकि पहले इस से भाजित हुआ था। इस भांति क्षेप का स्वरूप निष्पन्न हुआ—

$$\frac{\text{प्र. क्षे १̇ इव. क्षे १}}{\text{क्षेव}}=\frac{\text{प्र. १̇ इव १}}{\text{क्षे}}।$$

उदाहरणम्—

का सप्तषष्टिगुणिता कृतिरेकयुक्ता
का चैकषष्टिनिहता च सखे सरूपा।
स्यान्मूलदा यदि कृतिप्रकृतिर्नितान्तं
त्वच्चेतसि प्रवद तात तता लतावत्॥२६॥

अथात्रोदाहरणं सिंहोद्धतयाह—केति। हे तात! तातेति सरसोक्तिस्तु कमपि नितान्तानुकम्पास्पदं प्रकृतिसुकुमारं कुमारं व्यञ्जयति। त्वच्चेतसि तव हृदये यदि कृतिप्रकृतिर्वर्गप्रकृतिः लतावत् लता वल्ली, तद्वदिव। नितान्तमत्यर्थं तता विस्तृतास्ति। एकत्र व्युत्पत्तिरूपेणापरत्र पत्रादिरूपेणेति तात्पर्यम्। यथा कुत्रचिदारामे सेचनादिक्रियाकौशलवशेन लता नितान्तं वितता भवति तथा तव हृदि यदि दृढाभ्यासवशेन वर्गप्रकृतिर्जागरूका वर्तते इति भावः। अत्र लतेत्युपमानमहिम्ना वर्गप्रकृतेरुच्चाव-

चवासनापरिस्कारपुरस्सरं प्रकारभिदाप्यवसीयते । अत्रानुप्रास-उपमा च शब्दार्थालंकारौ । तर्हि का कृतिः सप्तषष्टिगुणिता एकयुक्ता मूलदा स्यादिति प्रवद विविच्य कथय । का च कृतिः एकषष्टिनिहता एकयुक्ता सती मूलदा स्यादिति हे सखे वदेति ।

उदाहरण—

(१) वह कौनसा वर्ग है, जिस को सतसठ से गुणा कर, एक जोड़ देते हैं तो वर्ग होता है ।

(२) वह कौन वर्ग है, जिसे एकसठ से गुणा कर, एक जोड़ देते हैं तो वर्ग होता है ।

प्रथमोदाहरणे रूपं कनिष्ठं त्रयमृणक्षेपं च प्रकल्प्य न्यासः । प्र. ६७ । क्षे. १ ।

क १ ज्ये ८ क्षे ३ । ह्रस्वं भाज्यं, ज्येष्ठं प्रक्षेपं, क्षेपं भाजकं च प्रकल्प्य कुट्टकार्थं न्यासः ।

भा. १ । क्षे. ८ ।

हा. ३ ।

अत्र 'हरतष्ट–' इति कृते जाता वल्ली ०
२
०

लब्धिगुणौ $\begin{matrix}0\\2\end{matrix}$ ऊर्ध्वौ विभाज्येन अधरो हरेणेति तष्टिकरणे स्वस्वतष्टौ लब्धिवैषम्या-त्स्वतक्षणाभ्यां $\begin{matrix}1\\3\end{matrix}$ शुद्धौ $\begin{matrix}1\\1\end{matrix}$ 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः–' इति लब्धिगुणौ $\begin{matrix}3\\1\end{matrix}$ हरस्य ऋणत्वा-

लब्धेः ऋणत्वे कृते जातौ लब्धिगुणौ ३̇/१ गु-
णस्य वर्गे १ प्रकृतेः शोधिते शेषम् ६६
अल्पकं न जातमतो रूपद्वयमृणमिष्टं प्रकल्प्य
'इष्टाहतस्वस्वहरेण–' इत्यादिना जातौ
लब्धिगुणौ ५̇/७ अत्र गुणवर्गे ४९ प्रकृतेर्विशो-
धिते शेषं १८ क्षेपेण ३̇ हृतं लब्धम् ६̇ अयं
क्षेपो गुणवर्गे प्रकृतेर्विशोधिते व्यस्तः स्या-
दिति धनं ६ लब्धिः कनिष्ठपदं ५̇ अस्य
ऋणत्वे धनत्वे च उत्तरे कर्मणि न विशेषो-
ऽस्तीति जातं धनम् ५ अस्य वर्गे प्रकृतिगुणे
षड्युते जातं मूलं ज्येष्ठं ४१ पुनरेषां कुट्ट-
कार्थं न्यासः।

भा० ५ । क्षे० ४१ ।   वल्ली ०
हा० ६ ।   १
                               ४१
                               ०

अतो लब्धिगुणौ ११/५ गुणवर्गे २५ प्रकृते-
श्च्युते शेषं ४२ क्षेपेण ६ हृते 'व्यस्तः प्रकृ-
तितश्च्युते' इति जातः क्षेपः ७̇ लब्धिः

कनिष्ठम् ११ अतो ज्येष्ठं ६० पुनरेषां कुट्टकार्थं न्यासः।

भा० ११। क्षे० ६०।
हा० ७̇।

अत्र 'हरतष्टे धनक्षेपे—' इति कृते जातो गुणः ५ लब्धयो विषमा इति तक्षणशुद्धो जातो गुणः २। अस्य क्षेपः ७̇ ऋणरूपेण १̇ गुणितं क्षेपं ७ गुणे प्रक्षिप्य जातो गुणः ९ अस्य वर्गे प्रकृत्योने शेषं १४ क्षेपेण ७̇ हृत्वा जातः क्षेपः २̇ लब्धिः कनिष्ठम् २७ अतो ज्येष्ठम् २२१ आभ्यां तुल्यभावनार्थं न्यासः।

क २७ ज्ये २२१ क्षे २̇
क २७ ज्ये २२१ क्षे २̇

उक्तवन्मूले क ११९३४। ज्ये ९७६८४। क्षे ४। चतुःक्षेपपदे २ अनेन भक्ते जाते रूपक्षेपमूले क ५९६७। ज्ये ४८८४२। क्षे १।

द्वितीयोदाहरणे न्यासः।

भा. १। क्षे. ८।
हा. ३।

'हरतष्टे धनक्षेपे–' इति लब्धिगुणौ ३/१ 'इष्टाहत–' इति द्वाभ्यामुत्थाप्य जातौ लब्धि-गुणौ ५/७ गुणवर्गे ४९ प्रकृतेः शोधिते १२ व्यस्त इति ऋणं १२̇ इदं क्षेप ३ हृतं जातः क्षेपः ४̇ अतः प्राग्वज्जाते चतुःक्षेपमूले क ५। ज्ये ३९। क्षे ४̇। 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यात्–' इत्युपपन्नरूपशुद्धिमूलयोर्भावनार्थं न्यासः।

क ५/२ ज्ये ३९/२ क्षे १̇

क ५/२ ज्ये ३९/२ क्षे १̇

अनयोर्जाते रूपक्षेपमूले क १६५/२ ज्ये १५२३/२ क्षे १ अनयोः पुना रूपशुद्धिपदाभ्यां भावनार्थं न्यासः

क ५/२ ज्ये ३९/२ क्षे १̇

क १६५/२ ज्ये १५२३/२ क्षे १

अतो जाते रूपशुद्धौ मूले

क ३८०५ ज्ये २९७१८ क्षे १̇

अनयोस्तुल्यभावनया जाते रूपक्षेपमूले

क २२६१५३९८० ज्ये १७६६३१९०४९ क्षे १

(१) उदाहरण में १ कनिष्ठ और ३̇ ऋणक्षेप कल्पना करके न्यास । प्र ६७ । क १ ज्ये ८ क्षे ३̇

अब कनिष्ठ को भाज्य, क्षेप को भाजक और ज्येष्ठ को क्षेप मानकर कुट्टक के लिये न्यास ।

भा. १ । क्षे. ८ ।
हा. ३̇ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' इस सूत्र के अनुसार न्यास ।

भा· १ । क्षे· २ । वल्ली ०
हा· ३̇ । २
०

उक्त रीति से लब्धि-गुण हुए ०/२ लब्धि के वैषम्य से अपने-अपने तक्षणों से शुद्ध हुए १/१ 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः—' इस सूत्र के अनुसार लब्धि-गुण हुए ३/१ हर के ऋण होने से लब्धि ऋण हुई, क्योंकि भाज्य १ को गुण १ से गुण कर १ क्षेप ८ जोड़कर ९ ऋणहार ३̇ का भाग देने से, लब्धि ३̇ का ऋणत्व सिद्ध होता है। यहां गुण १ वर्ग १ को प्रकृति ६७ में घटा देने से शेष ६६ अल्प नहीं बचता, इस कारण रूप दो २̇ ऋण इष्ट मानकर 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' इस रीति से लब्धि-गुण हुए ५̇/७ गुण ७ के वर्ग ४९ को प्रकृति ६७ में घटा देने से शेष १८ रहा, इसमें पहले क्षेप ३̇ का भाग देने से लब्धि ६̇ ऋण मिली, यह क्षेप गुणवर्ग को प्रकृति में घटा देने से व्यस्त अर्थात् धनक्षेप ६ हुआ। और लब्धि कनिष्ठपद ५̇ हुई, इसके ऋण अथवा धन होने से 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः—' इत्यादि अगली क्रिया में कुछ विशेष नहीं होता। इसलिये कनिष्ठ ५ धन हुआ, अब उस ५ के वर्ग २५ को प्रकृति ६७ से गुणाकर १६७५ क्षेप ६ जोड़ने से १६८१ ज्येष्ठ मूल ४१ आया।

अथवा 'पूर्वं ज्येष्ठं गुणाभ्यस्तं प्रकृतिघ्नकनिष्ठयुक् ।
क्षेपोद्धृतं चक्रवाले ज्येष्ठं वा प्रकृतं भवेत् ॥'

इस उक्त वासनासिद्ध सूत्र के अनुसार पहले ज्येष्ठ ८ को गुण ७ से गुण कर ५६ प्रकृति ६७ से गुणित कनिष्ठ ६७ × १ = ६७ को

जोड़ कर १२३ और क्षेप ३ का भाग देने से ४१ ज्येष्ठपद सिद्ध हुआ। इसको भी कनिष्ठ के भांति धन मानने से वही ज्येष्ठ हुआ ४१। इस प्रकार सर्वत्र जानना। इन का फिर कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ५ । क्षे. ४१ ।
हा. ६ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' इस के अनुसार न्यास—

भा. ५ । क्षे. ५ । वल्ली ०
हा. ६ । १
५
०

उक्त रीति से लब्धि-गुण हुए $\frac{५}{५}$ तत्क्षण लाभ ६ से युक्त लब्धि वास्तव लब्धि होती है तो, लब्धि गुणित $\frac{११}{५}$ गुण ५ वर्ग २५ को प्रकृति ६७ में घटा देने से शेष ४२ रहा, इस में क्षेप ६ का भाग देने से ७ लब्धि आई, और 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते' के अनुसार क्षेप ७̇ ऋण हुआ। लब्धि ११ कनिष्ठ है, इस ११ के वर्ग १२१ को प्रकृति ६७ से गुण कर ८१०७ और क्षेप ७̇ से घटा कर ८१०० मूल ज्येष्ठ ९० आया। अथवा 'पूर्वं ज्येष्ठं गुणाभ्यस्तं—' सूत्र के अनुसार ज्येष्ठ ४१ को गुण ५ से गुण कर २०५ प्रकृति ६७ से गुणित कनिष्ठ ६७×५=३३५ को जोड़कर ५४० उसमें क्षेप ६ का भाग देने से ज्येष्ठ ९० हुआ। इस भांति कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क ११ ज्ये ९० क्षे ७̇

इन का कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ११ । क्षे. ९० ।
हा. ७̇ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' इस सूत्र के अनुसार वल्ली १
१
१
६
०

दो राशि $\begin{smallmatrix}१ & ८\\ १ & २\end{smallmatrix}$ तक्षणों से तष्टित करने से हुए $\begin{smallmatrix}७\\ ५\end{smallmatrix}$ लब्धि विषम रही, इस कारण ११ । ७ इन अपने-अपने तक्षणों में शुद्ध करने से लब्धिगुण हुए $\begin{smallmatrix}४\\ २\end{smallmatrix}$ क्षेपतक्षणलाभ १२ से युक्त लब्धि, वास्तव लब्धि-गुण हुए $\begin{smallmatrix}१६̇\\ २\end{smallmatrix}$ हर के ऋण होने से लब्धि भी ऋण हुई, इस प्रकार सक्षेप लब्धि-गुण हुए—क्षे ११ ल १६̇

क्षे ७ गु २

गुण २ के वर्ग ४ को प्रकृति ६७ में घटा देने से शेष ६३ अल्प नहीं रहता, इस कारण ऋणरूप १̇ इष्ट मान कर हार ७̇ को गुणने से घन ७ हुआ । इस ७ को गुण २ में जोड़ देने से गुण ९ हुआ । इसी भांति इष्ट १̇ से भाज्य ११ को गुण कर लब्धि १६̇ में जोड़ देने से लब्धि २७̇ हुई, यह कनिष्ठपद है । इसको पूर्व रीति से घन कल्पना कर लिया । अब कनिष्ठ २७ का वर्ग ७२९ प्रकृति ६७ से गुणित ४८८४३ हुआ, इसमें क्षेप २ घटा देने से ४८८४१ शेष रहा, इसका मूल २२१ ज्येष्ठ हुआ और गुण ९ के वर्ग ८१ में प्रकृति ६७ को घटा देने से १४ शेष बचा, इसमें ऋणक्षेप ७̇ का भाग देने से ऋणक्षेप २̇ लब्ध आया ।

इस प्रकार कनिष्ठ, ज्येष्ठ, और क्षेप हुए—

क २७ ज्ये २२१ क्षे २̇

इन का तुल्य भावना के लिये न्यास—

क २७ ज्ये २२१ क्षे २̇
क २७ ज्ये २२१ क्षे २̇

यहां कनिष्ठ ज्येष्ठों के वज्राभ्यासों ५९६७ । ५९६७ का योग ११९३४ कनिष्ठ हुआ । कनिष्ठों का घात ७२९ प्रकृति ६७ से गुणित ४८८४३ में ज्येष्ठाभ्यास ४८८४१ को जोड़ने से ९७६८४ ज्येष्ठ हुआ । और क्षेपों २̇ । २̇ का घात ४ क्षेप हुआ । इन का यथाक्रम न्यास—

क ११९३४ ज्ये ९७६८४ क्षे ४

इष्ट २ कल्पना करके 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः—' इस सूत्र के अनुसार

रूपक्षेप में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध हुए—

क ५९९७ ज्ये ४८८४२ क्षे १

(२) उदाहरण में इष्ट १ कनिष्ठ और ३ क्षेप मानकर न्यास।

प्र ६१। क १ ज्ये ८ क्षे ३

इनका कुट्टक के लिये न्यास।

भा. १। क्षे. ८

हा. ३।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' इसके अनुसार न्यास।

भा. १ क्षे. २। वल्ली ०

हा. ३। २

०

उक्त रीति से दो राशि $\frac{०}{२}$ लब्धि के वैषम्य से, अपने-अपने तक्षणों में शुद्ध $\frac{१}{१}$ और क्षेपतक्षण लब्ध २ से जुड़ी लब्धि वास्तव हुई ३ इस प्रकार लब्धि-गुण सिद्ध हुए $\frac{३}{१}$ 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' के अनुसार २ इष्ट कल्पना करने से, लब्धि-गुण हुए $\frac{५}{७}$ यहां गुण ७ के वर्ग ४९ को प्रकृति ६१ में घटा देने से शेष १२ बचा, क्षेप ३ का भाग देने से क्षेप ४ आया, यह 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते' इसके अनुसार ऋण हुआ $\dot{४}$। और गुण ७ की लब्धि ५ कनिष्ठ है, इसका वर्ग २५ प्रकृति ६१ गुणित १५२५ में क्षेप ४ घटा देने से १५२१ शेष रहा, इसका मूल ३९ ज्येष्ठ हुआ। इनका यथाक्रम न्यास।

क ५ ज्ये ३९ क्षे $\dot{४}$

अब 'इष्टवर्गहृतः—' के अनुसार इष्ट २ कल्पना करने से, रूपशुद्धि में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क $\frac{५}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे $\dot{१}$

इनका भावना के लिये न्यास।

क $\frac{५}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे $\dot{१}$

क $\frac{५}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे $\dot{१}$

अब 'वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोः—' के अनुसार रूपक्षेप में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क $\frac{१६५}{२}$ ज्ये $\frac{१५२३}{२}$ क्षे १

इन का रूपशुद्धि पदों के साथ भावना के लिये न्यास ।

क $\frac{१६५}{२}$ ज्ये $\frac{१५२३}{२}$ क्षे १

क $\frac{५}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे $\dot{१}$

वज्राभ्यासौ ७६०५ । ७६१५ का योग १५२२० हुआ । इस में हरों २ । २ के घात ४ का भाग देने से कनिष्ठ हुआ ३८०५ । कनिष्ठों का घात ९७५ प्रकृति ६१ से गुणित ५९४७५ में ज्येष्ठाभ्यास ५९३९७ को जोड़ने से ११८८७२ हुआ, इस में हरों के घात ४ का भाग देने से ज्येष्ठ आया २९७१८ । क्षेपों $\dot{१}$ । १ का घात क्षेप हुआ $\dot{१}$ । इन का यथाक्रम न्यास ।

क ३८०५ ज्ये २९७१८ क्षे $\dot{१}$

तुल्य भावना के लिये न्यास ।

क ३८०५ ज्ये २९७१८ क्षे $\dot{१}$

क ३८०५ ज्ये २९७१८ क्षे $\dot{१}$

यहां वज्राभ्यासौ ११३०७६९९० । ११३०७६९९० का योग २२६१५३९८० कनिष्ठ हुआ । कनिष्ठों का घात १४४७८०२५ प्रकृति ६१ से गुणित ८८३१५९५२५ हुआ, इस में वज्राभ्यास ८८३१५९५२५ को जोड़ देने से ज्येष्ठपद १७६६३११९०४९ हुआ । और क्षेपों $\dot{१}$ । $\dot{१}$ का घात क्षेप १ हुआ । इन का यथाक्रम न्यास ।

क २२६१५३९८ ज्ये १७६६३१९०४९ क्षे १

इस प्रकार भावनावश से अनेक कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध होते हैं ।

अथ रूपशुद्धौ खिलत्वज्ञानप्रकारान्तरितपदानयनयोः करणसूत्रं वृत्तद्वयम्—

रूपशुद्धौ खिलोद्दिष्टं वर्गयोगो गुणो न चेत्५०

अखिले कृतिमूलाभ्यां द्विधा रूपं विभाजितम्।
द्विधा ह्रस्वपदं ज्येष्ठं ततो रूपविशोधने ॥५१॥
पूर्ववद्वा प्रसाध्येते पदे रूपविशोधने।

अथ रूपशुद्धौ खिलत्वेऽखिलत्वे चावधारिते तत्र प्रकारान्तरेण पदानयनं श्लोकाभ्यामाह–रूपशुद्धाविति। यदि प्रकृतिर्वर्गयोगरूपा न भवेत्तर्हि रूपशुद्धावुदिष्टं खिलं ज्ञेयम्। कस्यापि वर्गस्तया प्रकृत्या गुणितो रूपोनः सन् मूलदो नैव भवेदित्यर्थः। अथाखिलत्वे पदानयनमाह–अखिले इति। अखिले सति ययोर्वर्गयोर्योगः प्रकृतिरस्ति तयोर्मूलाभ्यां द्विधा रूपं विभाजितं सद्रूपशुद्धौ द्विधा ह्रस्वपदं भवति। ततस्ताभ्यां कनिष्ठाभ्यां'–तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः–' इत्यादिना ज्येष्ठपदमपि द्विधा भवति। अथवा, अखिलत्वे सति पूर्ववत् 'इष्टं ह्रस्वं–' इत्यादिना ऋणे चतुरादिक्षेपे पदे प्रसाध्य 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः–' इत्यादिना रूपशुद्धौ पदे प्रसाध्ये ॥

रूपशुद्धि में सत्-असत् उदाहरण का ज्ञान और प्रकारान्तर से पदानयन का प्रकार—

रूपशुद्धि अर्थात् १ ऋणक्षेप में यदि गुण (प्रकृति) वर्गों का योग न हो तो उस उद्दिष्ट को खिल अर्थात् दुष्ट जानना, तात्पर्य यह है कि किसी का वर्ग उस प्रकृति से गुणा और रूपोन मूलप्रद न होगा। इस भांति यदि उद्दिष्ट दुष्ट न हो तो, जिन वर्गों का योग प्रकृति है, उनके मूलों का अलग-अलग रूप में, भाग देने से दो प्रकार के कनिष्ठ रूप-शुद्धि में होंगे। और उन कनिष्ठों पर से '—तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः—' इस सूत्र के अनुसार ज्येष्ठ भी दो प्रकार के होंगे। अथवा 'इष्टं ह्रस्वं—' इस रीति के अनुसार, चार आदि क्षेप में पदानयन करके बाद 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यात्' इस सूत्र से रूपशुद्धि में पदों का आनयन करना चाहिए।

उपपत्ति—

जो ऋणाक्षेप वर्गरूप हो तो उसके मूल को इष्ट कल्पना करके 'इष्टवर्गहृत: क्षेप:—' इस रीति से ऋणाक्षेप १ संभव होता है। परन्तु ऋणाक्षेप वर्गरूप तभी होगा यदि प्रकृति से गुणा कनिष्ठवर्ग वर्गयोग-रूपी हो। इसलिये एक वर्ग का शोधन करने से, दूसरा वर्ग अवशिष्ट रहेगा और वही क्षेप है। जैसा—२ । ३ के वर्ग ४ । ९ के योग १३ में, इष्ट राशि के वर्ग ४ को घटा देने से, दूसरे राशि ३ का वर्ग ९ शेष रहा।

यहां पर यदि प्रकृति वर्गयोग रूप हो तो कनिष्ठ वर्ग प्रकृति से गुणित भी वर्गयोग रूप अनुमान किया जाय क्योंकि वर्गरूप खण्डों से कनिष्ठ को अलग-अलग गुणा देने से दोनों खण्ड भी वर्गरूप रहते हैं और उनका योग वर्गयोग होता है और वही संपूर्ण प्रकृति से गुणित कनिष्ठ का वर्ग होता है। जैसा—४ । ९ वर्गराशि का योग १३ प्रकृति है। अब कल्पित कनिष्ठ ५ के वर्ग २५ को उन वर्गात्मक खण्डों ४ । ९ से अलग-अलग गुणा देने से १००।२२५ भी वर्ग हुए, इन का योग ३२५ दश और पंद्रह का वर्गयोग है, और यह संपूर्ण प्रकृति १३ से गुणित कनिष्ठवर्ग १३×२५=३२५ के समान है। वह १०।१५ के वर्गयोग ३२५ के तुल्य है, इस लिये ३२५ में १० का वर्ग १०० घटा देने से १५ का वर्ग २२५ शेष रहता है और १५ का वर्ग २२५ घटा देने से १० का वर्ग १०० शेष बचता है। इस लिये ऋणाक्षेप १००̇ और ज्येष्ठ १५। अथवा, ऋणाक्षेप २२५̇ और ज्येष्ठ १० हुआ। अब—

क ५ ज्ये १५ क्षे १००̇

इन से इष्ट १० मान कर रूपशुद्धि में पद हुए—

क $\frac{५}{१०}$ ज्ये $\frac{१५}{१०}$ क्षे १̇

इस से 'रूपशुद्धौ खिलोद्दिष्टं वर्गयोगो गुणो न चेत्' यह उपपन्न हुआ। जिनका वर्गयोग प्रकृति है, उनके मूलों २ । ३ का अलग-अलग रूप में भाग देने से कनिष्ठ $\frac{१}{२}$ अथवा $\frac{१}{३}$। अब कनिष्ठ का वर्ग करने

से अंश के स्थान में रूप और हर के स्थान में मूल का वर्ग क $\frac{१}{४}$ हुआ। इसको प्रकृति १३ से गुण देने से अंश के स्थान में प्रकृति की तुल्यता हुई क $\frac{१३}{४}$। अब उस में ऋणक्षेप १ घटाना है तो, समच्छेद से हर की समता हुई $\frac{४}{४}$। बाद ४ को भाज्य १३ में घटाने से दूसरे मूल ३ का वर्ग ९ शेष रहेगा, क्योंकि भाज्य (अंश) दोनों मूलों २ । ३ के वर्गयोग १३ के समान है। इसी भांति कनिष्ठ $\frac{१}{३}$ का वर्ग $\frac{१}{९}$ यह प्रकृति १३ से गुणित $\frac{१३}{९}$ हुआ, अब यहां भी हर ९ से ऋणक्षेप १ को गुणाने से हर की समता हुई, उस $\frac{९}{९}$ को प्रकृति (अंश) १३ में घटा देने से पहले मूल २ का वर्ग ४ शेष रहा। इस से 'अखिले कृतिमूलाभ्यां द्विधा रूपं विभाजितम्। द्विधा ह्रस्वपदं' यह भी उपपन्न हुआ॥

उदाहरणम्—

त्रयोदशगुणो वर्गो निरेकः कः कृतिर्भवेत्।
को वाष्टगुणितो वर्गो निरेको मूलदो वद ३०

अत्र प्रकृतिर्द्विकत्रिकयोर्वर्गयोर्योगः १३। अतो द्विकेन रूपं हृतं रूपशुद्धौ कनिष्ठं पदं स्यात् $\frac{१}{२}$। अस्य वर्गात्प्रकृतिगुणादेकोनान्मूलं ज्येष्ठं पदम् $\frac{३}{२}$। अथवा त्रिकेण रूपं हृतं कनिष्ठं स्यात् $\frac{१}{३}$। अतो ज्येष्ठम् $\frac{२}{३}$। अथवा कनिष्ठम् १ अस्य वर्गात्प्रकृतिगुणाच्चतुरूनान्मूलं ज्येष्ठम् ३

क्रमेण न्यासः। क १ ज्ये ३ क्षे $\dot{४}$

'इष्टवर्गहृतः क्षेपः—' इत्यादिना जाते रूपशुद्धौ पदे क $\frac{१}{२}$ ज्ये $\frac{३}{२}$ क्षे $\dot{१}$। अथवा प्रकृतेर्नव

त्यक्त्वैवमेव जाते क $\frac{१}{२}$ ज्ये $\frac{१}{२}$ क्षे १̇ । चक्रवाले नाभिन्ने वा ।

एषां ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपाणां भिन्नानां 'ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपान्–' इत्यादिना भाज्यप्रक्षेपभाजकान्प्रकल्प्य पूर्वपदयोर्न्यासः ।

भा. $\frac{१}{२}$ । क्षे. $\frac{३}{२}$ ।
हा. १̇ ।

अत्र भाज्यभाजकक्षेपानर्धेनापवर्त्य जाताः

भा. १ । क्षे. ३ ।
हा. २̇ ।

'हरतष्टे–' इति कुट्टकेन गुणलब्धी $\frac{१}{२}$ अत्रेष्टमृणरूपं प्रकल्प्य जातोऽन्यो गुणः ३ । 'गुणवर्गे–'इत्यादिना क्षेपः ४ लब्धिः ३ अतो ज्येष्ठम् ११ । क्रमेण न्यासः । क ३ ज्ये ११ क्षे ४ ।

अतोऽपि पुनः 'भाज्यप्रक्षेपभाजकान्–' इत्यादिना चक्रवालेन लब्धो गुणः ३ । 'गुणवर्गे–' इत्यादिना रूपशुद्धावभिन्ने पदे क ५ ज्ये १८ क्षे १̇ ।

इह सर्वत्र पदानां रूपक्षेपदाभ्यां भावनयानन्त्यम् ॥

एवं द्वितीयोदाहरणे प्रकृतिः ८। प्राग्वज्जाते ह्रस्वज्येष्ठपदे क $\frac{१}{२}$ ज्ये १ क्षे $\dot{१}$

उदाहरण—

(१) वह कौन ऐसा वर्ग है, जिस को तेरह से गुणा कर, एक देते हैं तो वह वर्ग होता है ?

(२) वह कौन सा वर्ग है, जिस को आठ से गुणा कर, एक घटा देते हैं तो वर्ग होता है ?

पहले उदाहरण में प्रकृति १३ है, यह २ और ३ के वर्गों ४।९ का योग है, इस लिये २ का १ में भाग देने से कनिष्ठपद $\frac{१}{२}$ हुआ। इसका वर्ग $\frac{१}{४}$ प्रकृति १३ से गुणित $\frac{१३}{४}$ में १ घटाने से $\frac{९}{४}$ शेष का मूल $\frac{३}{२}$ ज्येष्ठपद हुआ। अथवा, ३ का १ में भाग देने से कनिष्ठ पद $\frac{१}{३}$ हुआ। इसके वर्ग $\frac{१}{९}$ को प्रकृति १३ से गुणा $\frac{१३}{९}$ हुआ, इस में १ घटा देने से $\frac{४}{९}$ शेष रहा, इस का मूल $\frac{२}{३}$ ज्येष्ठपद हुआ। अथवा, इष्ट १ को कनिष्ठ कल्पना किया, इसके वर्ग १ को प्रकृति १३ से गुणा कर, ४ घटा दिया तो ९ शेष रहा, इस का मूल ३ ज्येष्ठ पद हुआ। इन का क्रम से न्यास।

क १ ज्ये ३ क्षे $\dot{४}$

'इष्टवर्गहृतः—' के अनुसार, इष्ट २ मानने से रूपशुद्धि में पद हुए—

क $\frac{१}{२}$, ज्ये $\frac{३}{२}$, क्षे $\dot{१}$।

अथवा, कनिष्ठ १ वर्ग १ को प्रकृति १३ से गुणा कर ९ घटा दिया तो ४ शेष रहा, इस का मूल २ ज्येष्ठपद हुआ। इन का यथा क्रम न्यास।

क १, ज्ये २, क्षे $\dot{९}$।

पूर्वरीति से ३ इष्ट मानने से रूपशुद्धि में पद हुए—

क $\frac{१}{३}$ ज्ये $\frac{२}{३}$ क्षे १̇

अब इन का 'ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपान्–' इस रीति के अनुसार कुट्टक के लिये न्यास ।

भा. $\frac{१}{२}$ । क्षे. $\frac{३}{२}$ ।
हा. १̇ ।

यहां भाज्य, भाजक और क्षेप में आधे $\frac{१}{२}$ का अपवर्तन देकर न्यास ।

भा. १ । क्षे. ३ ।
हा. २̇ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे–' इस रीति से वल्ली हुई
०
१
०

बाद १ दो राशि लब्धि के वैषम्य से अपने-अपने तक्षणों में शुद्ध $\frac{१}{१}$ हुए, फिर क्षेपतक्षणलाभ १ को लब्धि में जोड़ देने से लब्धि-गुण हुए $\frac{२̇}{१̇}$ । अब गुण १ के वर्ग १ को प्रकृति १३ में घटा देने से शेष १२ अल्प नहीं रहता, इस कारण ऋण १̇ इष्ट मानकर 'इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते–' के अनुसार तक्षणों १ । २̇ को ऋण १̇ से गुण दिया तो १̇ । २ हुए, इनको लब्धि-गुणों २̇ । १ में जोड़ देने से ३̇ । ३ लब्धि-गुण हुए । गुण ३ के वर्ग ९ को प्रकृति १३ में घटा देने से शेष ४ रहा, इस में ऋणक्षेप १̇ का भाग देने से ४̇ क्षेप आया और 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते–' के अनुसार वह क्षेप धन हुआ ४ । लब्धि ३ कनिष्ठ के वर्ग ९ को प्रकृति १३ से गुणित ११७ में क्षेप ४ जोड़ने से १२१ हुआ, इस का मूल ११ ज्येष्ठ है । इनका क्रम से न्यास ।

क ३ ज्ये ११ क्षे ४ ।

अब कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ३ । क्षे. ११ ।
हा. ४ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' के अनुसार न्यास—

भा॰ ३ । क्षे. ३ । वल्ली ०
हा. ४ । १
३
०

उक्त विधि से $\frac{३}{२}$ दो राशि हुए, क्षेपतक्षणलाभ २ को लब्धि ३ में जोड़ देने से लब्धि-गुण हुए $\frac{५}{२}$ । गुण ३ के वर्ग ९ को प्रकृति १३ में घटाने से ४ शेष रहा, इस में पूर्वक्षेप ४ का भाग देने से १ क्षेप आया, वह 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते—' के अनुसार ऋण हुआ १̇ । और लब्धि ५ कनिष्ठ के वर्ग २५ को प्रकृति १३ से गुणित ३२५ में क्षेप १̇ घटा देने से ३२४ शेष का मूल १८ ज्येष्ठ हुआ । इनका यथाक्रम न्यास—

क ५ ज्ये १८ क्षे १̇

यहां सर्वत्र पदों का रूपक्षेप पदों के साथ भावना देने से आनन्त्य होगा ।

(२) उदाहरण में प्रकृति ८ है । यह २ । २ के वर्गों ४ । ४ का योग है। इस लिये १ में २ का भाग देने से कनिष्ठपद $\frac{१}{२}$ हुआ । इसके वर्ग $\frac{१}{४}$ को प्रकृति ८ से गुण दिया $\frac{८}{४}$ हुआ इस में १ घटा देने से $\frac{४}{४}$ = १ शेष रहा । इसका मूल १ ज्येष्ठ हुआ । इन का क्रम से न्यास—

क $\frac{१}{२}$ ज्ये १ क्षे १̇ ।

उदाहरणम्—

कोवर्गः षड्गुणस्त्र्याढ्यो द्वादशाढ्योथवा कृतिः
युतो वा पञ्चसप्तत्या त्रिशत्या वा कृतिर्भवेत् ॥

अत्र रूपं ह्रस्वं कृत्वा न्यासः ।

प्र ६ । क १ ज्ये ३ क्षे ३

अत्र 'क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे' इति द्विगुणिते जाते द्वादशक्षेपे २ । ६ । पञ्चगुणे

पञ्चसप्ततिमिते क्षेपे ५ । १५ । दशगुणे जाते त्रिशतीक्षेपे १० । ३० ।

उदाहरण—

वह कौन वर्ग है, जिस को छ से गुण कर, उस में तीन वा, बारह वा, पचहत्तर वा, तीन सौ जोड़ देते हैं तो, वर्ग हो जाता है ?

यहां इष्ट १ कनिष्ठ कल्पना किया, उसके वर्ग १ को प्रकृति ६ से गुण कर ३ जोड़ दिया तो ९ हुआ, इस का मूल ३ ज्येष्ठ हुआ, अब इन का क्रम से न्यास—

प्र ६ । क १ ज्ये ३ क्षे ३ ।

यहां 'अथवा क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तद्वा पदे' इस सूत्र के अनुसार २ इष्ट कल्पना करने से, बारह क्षेप में पद हुए—

प्र ६ । क २ ज्ये ६ क्षे १२

५ इष्ट कल्पना करने से, पचहत्तर क्षेप में पद हुए—

प्र ६ । क ५ ज्ये १५ क्षे ७५

और १० इष्ट कल्पना करने से, तीन सौ क्षेप में पद हुए—

प्र ६ । क १० ज्ये ३० क्षे ३००

अथेच्छयानीतपदयो रूपक्षेपदानयनदर्शने करणसूत्रं सार्धवृत्तम् ।

स्वबुद्ध्यैव पदे ज्ञेये बहुक्षेपविशोधने ॥५२॥
तयोर्भावनयानन्त्यं रूपक्षेपपदोत्थया ।
(वर्गच्छिन्ने गुणे ह्रस्वं तत्पदेन विभाजयेत्)॥

अथ येन केनाप्युपायेनोदिष्टक्षेपे पदे प्रसाध्य पश्चाद्रूपक्षेपभावनया तयोरानन्त्यं भवतीति सार्धेनानुष्टुभाह—स्वेति। क्षेपाश्च विशोधनानि च क्षेपविशोधनानि, बहूनि च तानि क्षेपविशोधनानि च बहुक्षेपविशोधनानि, तेषां समाहारो बहुक्षेपविशोधनं

तस्मिन् बहुक्षेपविशोधने। यत्र कुत्रापि क्षेपे धने ऋणे वा पूर्वं स्वबुद्ध्यैव पदे ज्ञेये इत्यर्थः। पश्चाद्रूपक्षेपपदोत्थया भावनया तयोरानन्त्यं सुलभम्। यतः 'तत्राभ्यासः क्षेपयोः क्षेपकः स्यात्' इति रूपक्षेपेण गुणितो यः कश्चन धनमृणं वा क्षेपो यथास्थित एव स्यादिति। 'स्वबुद्ध्यैव पदे ज्ञेये' इत्युक्तं तत्र प्रकारान्तरं दर्शयति–वर्गेति। गुणे वर्गच्छिन्ने सति ह्रस्वं तत्पदेन विभाजयेत्। अयमभिप्रायः–प्रकृतिं केनचिद्वर्गेणापवर्त्य, अपवर्तितया प्रकृत्या कनिष्ठज्येष्ठपदे साध्ये। तत्र येन वर्गेण प्रकृतेरपवर्तः कृतस्तस्य पदेन कनिष्ठं भाज्यं, ज्येष्ठं तु यथास्थितमेव उद्दिष्टप्रकृतावेते पदे भवत इत्यर्थः॥

अब किसी एक विधि से उद्दिष्ट क्षेप में पद ला कर, रूपक्षेप भावना के द्वारा, उन पदों का आनन्त्य कहते हैं—जिस स्थान में अधिक (बड़ा) धन अथवा ऋणक्षेप हो वहां पहले अपनी मति के अनुसार पदों को सिद्ध करना, फिर कनिष्ठ, ज्येष्ठ और रूपक्षेप से उत्पन्न भावना से उन कनिष्ठ, ज्येष्ठ पदों का आनन्त्य होगा। तात्पर्य यह है कि 'तत्राभ्यासः क्षेपयोः क्षेपकः स्यात्' इस सूत्र के अनुसार रूपक्षेप से गुणित कोई धन अथवा ऋणक्षेप ज्यों का त्यों रहेगा।

अब पहले जो कह आये हैं कि अपनी मति के अनुसार पदों को सिद्ध करना, वहां पर प्रकारान्तर दिखलाते हैं—उद्दिष्ट प्रकृति में किसी वर्गराशि का अपवर्तन देकर अपवर्तनाङ्क के मूल का कनिष्ठ में भाग देने से वह कनिष्ठ होगा और ज्येष्ठ यथास्थित रहेगा।

उपपत्ति—

प्रकृति में किसी वर्ग राशि का अपवर्तन देने से ज्येष्ठ का वर्ग भी उसी वर्गराशि से अपवर्तित होता है। इस लिये ज्येष्ठ वर्गराशि के मूल से अपवर्तित होगा, परन्तु कनिष्ठ अपवर्तित न होगा। क्योंकि उस (कनिष्ठ) में प्रकृति प्रयुक्त कोई विशेष नहीं है कि जिससे प्रकृति गुणित अथवा भाजित की जाय, तो कनिष्ठ भी गुणित या भाजित

हो इस लिये उस (वर्गराशि) के मूल का कनिष्ठ में भाग देना कहा है और ज्येष्ठ तो प्रथम ही भाजित हो चुका है । इसी भांति यह भी जानना चाहिये कि प्रकृति को किसी वर्गराशि से गुण देना और उस गुणित प्रकृति से कनिष्ठ, ज्येष्ठ सिद्ध कर के उस के मूल से कनिष्ठ को गुण देना चाहिये । इससे 'वर्गच्छिन्ने गुणे ह्रस्वं तत्पदेन विभाजयेत्' यह उपपन्न हुआ ।

उदाहरणम्—

द्वात्रिंशद्गुणितो वर्गः कः सैको मूलदो वद ।

न्यासः । प्र ३२ । अतः प्राग्वज्जाते कनिष्ठज्येष्ठे $\frac{1}{2}$ । ३ अथवा 'वर्गच्छिन्ने गुणे ह्रस्वं तत्पदेन विभाजयेत्' इति प्रकृतिः ३२ चतुश्छिन्ना लब्धम् ८ अस्यां प्रकृतौ कनिष्ठज्येष्ठे १ । ३ येन वर्गेण प्रकृतिश्छिन्ना तस्य पदेन २ कनिष्ठे भक्ते जाते त एव क $\frac{1}{2}$ ज्ये ३ क्षे १ ।

उदाहरण—

वह कौन सा वर्गराशि है, जिस को बत्तीस से गुण देते हैं और उस में एक घटा देते हैं तो मूलप्रद होता है ।

यहां $\frac{1}{2}$ इष्ट मानकर 'इष्टं ह्रस्वं–' इस रीति से कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क $\frac{1}{2}$ ज्ये ३ क्षे १

अथवा 'वर्गच्छिन्ने–' इस सूत्र के अनुसार, प्रकृति ३२ में ४ का अपवर्तन देने से ८ लब्ध आया, अब प्रकृति ८ में उक्त रीति से कनिष्ठ ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क १ ज्ये ३ क्षेप १

फिर ४ के मूल २ का कनिष्ठ १ में भाग देने से बत्तीस प्रकृति में पद हुए—

क $\frac{1}{2}$ ज्ये ३ क्षे १

इसी भांति प्रकृति ३२ में १६ का अपवर्तन देने से २ मिला और प्रकृति २ में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क २ ज्ये ३ क्षे १

फिर १६ के मूल ४ का कनिष्ठ २ में भाग देने से, वही कनिष्ठ और ज्येष्ठ आये क $\frac{1}{2}$ ज्ये ३ क्षे १ ।

अथ वर्गरूपायां प्रकृतौ भावनाव्यतिरेकेणा-नेकपदानयने करणसूत्रं वृत्तम्—

इष्टभक्तो द्विधा क्षेप इष्टोनाढ्यो दलीकृतः ।
गुणमूलहृतश्चाद्यो ह्रस्वज्येष्ठे क्रमात्पदे ५४

अथ प्रकृतौ वर्गरूपायां पदानयने उपायान्तरमनुष्टुभाह—इष्टभक्त इति । उद्दिष्टक्षेप इष्टेन भक्तः सन् द्विधा स्थाप्यः, स एकत्र इष्टेनोनः, अपरत्र इष्टेन सहितः, उभयत्रापि दलीकृतोऽर्धितः । गुणमूलहृतः । प्रकृतिमूलहृत इत्यर्थः । क्रमाद्ध्रस्वज्येष्ठपदे स्तः ॥

वर्गरूप-प्रकृति में पद लाने का प्रकार—

उद्दिष्ट क्षेप में इष्ट का भाग देकर, उसको दो स्थानों में रखना । एक स्थान में उसमें इष्ट घटा देना दूसरे स्थान में जोड़ देना फिर उनका आधा करना और पहले स्थान में प्रकृति के मूल का भाग देना, इस प्रकार क्रम से कनिष्ठ, ज्येष्ठ पद होंगे ।

उपपत्ति—

वर्गरूप-प्रकृति से गुणा हुआ कनिष्ठ का वर्ग वर्ग ही रहता है । उसका और ज्येष्ठवर्ग का अन्तर क्षेप होता है और वह वर्गान्तर के समान है । इसलिए—

'वर्गान्तरं राशिवियोगभक्तं
योगस्ततः प्रोक्तवदेव राशी'

इस पाटीस्थ सूत्र के अनुसार, अन्तर तुल्य इष्ट कल्पना करके, उस का क्षेप में भाग देने से योग आवेगा फिर संक्रमण सूत्र से राशि आवेंगे। एक राशि, प्रकृति के मूल से गुणित कनिष्ठ के तुल्य और दूसरा ज्येष्ठ के तुल्य होगा। प्रकृति मूल से गुणित कनिष्ठ, प्रकृति-मूल के भाग देने से कनिष्ठ होता है। इस से 'इष्टभक्तो द्विधा—' यह सूत्र उपपन्न हुआ॥

उदाहरणम्—

का कृतिर्नवभिः क्षुण्णा द्विपञ्चाशद्युता कृतिः।
को वा चतुर्गुणो वर्गस्त्रयस्त्रिंशद्युता कृतिः ३२

अत्र प्रथमोदाहरणे क्षेपः ५२। द्विकेनेष्टेन हृतो द्विष्ठ इष्टोनाढ्यो दलीकृतो जातः १२।१४ अनयोराद्यः प्रकृतिमूलेन भक्तो जाते ह्रस्वज्येष्ठे ४। १४। अथवा क्षेपं ५२ चतुर्भिर्विभज्य एवं जाते ह्रस्वज्येष्ठे $\frac{३}{२}$ $\frac{१७}{२}$।

द्वितीयोदाहरणे क्षेपं ३३ एकेनेष्टेन विभज्यैवं जाते ह्रस्वज्येष्ठे ८।१७ त्रिभिर्जाते २।७

उदाहरण—

(१) वह कौन वर्ग है, जिस को नौ से गुण कर, बावन जोड़ देते हैं तो, वर्ग हो जाता है?

(२) ऐसा कौन वर्ग है, जिस को चार से गुण कर, तेंतीस जोड़ देते हैं तो, वर्ग हो जाता है?

(१) उदाहरण में क्षेप ५२ है, अत्र इष्ट २ कल्पना करके इस का क्षेप ५२ में भाग देने से २६ लब्धि मिली, इस को दो स्थानों में रक्खा २६।२६ और इष्ट २ से ऊन-युत कर के आधा किया तो

१२ । १४ इन में पहले स्थान १२ में प्रकृति मूल ३ का भाग देने से कनिष्ठ ४ सिद्ध हुआ और ज्येष्ठ १४ ज्ञात ही रहा । यथाक्रम न्यास । क ४ ज्ये १४ क्षे ५२ । अथवा, क्षेप ५२ में ४ का भाग देकर पूर्व रीति से कनिष्ठ. ज्येष्ठ हुए क $\frac{3}{2}$ ज्ये $\frac{17}{2}$ ।

(२) उदाहरण में क्षेप ३३ है, अब इष्ट १ का क्षेप ३३ में भाग देने से ३३ लब्धि आई, इस को दो स्थानों में रक्खा ३३।३३ और इष्ट १ से ऊन-युत कर के आधा किया तो १६ । १७ इन में से आद्य १६ में प्रकृतिमूल १ का भाग देने से कनिष्ठ ८ आया और ज्येष्ठ १७ पहले ही ज्ञात था। इन का यथाक्रम न्यास। क ८ ज्ये १७ क्षे ३३ । अथवा, क्षेप ३३ में ३ का भाग देकर पूर्व रीति के अनुसार कनिष्ठ, ज्येष्ठ मूल सिद्ध हुए २ । ७ ।

अथवा प्रकृतिसमक्षेप उदाहरणम्—

त्रयोदशगुणो वर्गस्त्रयोदशविवर्जितः ।
त्रयोदशयुतो वा स्याद्वर्ग एव निगद्यताम् ३३

प्रथमोदाहरणे प्रकृतिः १३ । जाते कनिष्ठ-ज्येष्ठे १।०।०

अत्र 'इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं—' इत्यादिना रूप-क्षेपमूले $\frac{3}{2}$ $\frac{11}{2}$ आभ्यां भावनया त्रयोदशऋण-क्षेपमूले $\frac{11}{2}$ $\frac{39}{2}$, वा एषामृणक्षेपपदानां रूपशुद्धि-पदाभ्या $\frac{1}{2}$ $\frac{3}{2}$ माभ्यां विश्लिष्यमाणभावनया त्रयोदशक्षेपमूले $\frac{3}{2}$ $\frac{13}{2}$ वा १८ । ६५ ।

प्रकृतिसमक्षेप में उदाहरण—

वह कौन सा वर्ग है, जिस को तेरह से गुणाकर उस में तेरह घटा वा जोड़ देते हैं तो, वर्ग ही रहता है ?

यहां प्रकृति १३ है, कनिष्ठ १ वर्ग १ को प्रकृति १३ से गुण कर, उस में १३ घटा दिया तो ० शून्य शेष बचा इस का मूल ० ज्येष्ठ पद हुआ । यथाक्रम न्यास क १ ज्ये० क्षे १३̇ ।

इस भांति, जिस स्थान में प्रकृति के समान ऋणक्षेप हो वहां १ इष्ट कल्पना कर के ज्येष्ठपद सिद्ध करना चाहिये, यह युक्ति निकलती है । क्योंकि एक कनिष्ठ कल्पना करने से, जब उसके वर्ग को प्रकृति से गुण देंगे तब वह (गुणनफलरूप-प्रकृतिगुणित-कनिष्ठ का वर्ग) प्रकृति के तुल्य ही रहेगा और वहाँ क्षेप को भी प्रकृति के तुल्य होने से जब उसको प्रकृति में घटावेंगे तो शून्य शेष बचेगा और उस का मूल ज्येष्ठ शून्य आवेगा, जैसा—

'क १ ज्ये० क्षे १३̇'

यहां ज्येष्ठपद ० आया है, अब इन कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेपों का समासभावना के लिये न्यास—

प १३ । क १ ज्ये० क्षे १३̇
क १ ज्ये० क्षे १३̇

'वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोः—' इस के अनुसार, वज्राभ्यासों का योग ० यह कनिष्ठ है । कनिष्ठों १ । १ के घात १ को प्रकृति १३ से गुण देने से गुणनफल १३ में ज्येष्ठाभ्यास ० जोड़ देने से १३ ज्येष्ठमूल सिद्ध हुआ । और क्षेपों १३̇ । १३̇ का घात १६९ क्षेप हुआ । इन का क्रम से न्यास—

क० ज्ये १३ क्षे १६९

'इष्टवर्गहृतः—' इस सूत्र के अनुसार १३ इष्ट कल्पना करने से पद सिद्ध हुए—

क० ज्ये १ क्षे १

इन पदों का पहले साधे हुए 'क १ ज्ये० क्षे १३̇' इन पदों के साथ भावना के लिये न्यास—

क० ज्ये १ क्षे १
क १ ज्ये० क्षे १३̇

यहां समास-भावना अथवा, अन्तर-भावना से पहले के पद आते हैं।

क १ ज्ये० क्षे १३̇

और उन का उन्हीं के समास-भावना से उत्पन्न 'क० ज्ये १३ क्षे १६९' इन पदों के साथ भावना के लिये न्यास—

क १ ज्ये० क्षे १३̇

क० ज्ये १३ क्षे १६९

यहां समास या अन्तर भावना से नीचे लिखे पद उत्पन्न होते हैं—

क १३ ज्ये० क्षे २१९७

'इष्टवर्गहृतः—' इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती इस लिये ग्रन्थकार ने 'इष्टवर्गप्रकृत्योः—' इस सूत्र के अनुसार इष्ट ३ कल्पना किया, उस के वर्ग ९ और प्रकृति १३ का अन्तर ४ हुआ। इस का दूने इष्ट ६ में भाग देने से कनिष्ठ $\frac{६}{४}$ में २ का अपवर्तन देने से $\frac{३}{२}$ कनिष्ठ हुआ। कनिष्ठ $\frac{३}{२}$ के वर्ग $\frac{९}{४}$ प्रकृति १३ से गुणित $\frac{११७}{४}$ में १ जोड़ देने से $\frac{१२१}{४}$ हुआ इस का मूल ज्येष्ठ है $\frac{११}{२}$। इन का क्रम से न्यास—

क $\frac{३}{२}$ ज्ये $\frac{११}{२}$ क्षे १

इन का पहले सिद्ध मूल के साथ भावना के लिये न्यास—

क १ ज्ये० क्षे १३̇

क $\frac{३}{२}$ ज्ये $\frac{११}{२}$ क्षे १

अब भावना से १३̇ क्षेप में मूल सिद्ध हुए—

क $\frac{११}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे १३̇

इन पदों का रूप शुद्धि पदों का $\frac{१}{२}$ ज्ये $\frac{३}{२}$ क्षे १̇ के साथ अन्तर भावना के लिये न्यास—

क $\frac{११}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे १३̇

क $\frac{१}{२}$ ज्ये $\frac{३}{२}$ क्षे १̇

'ह्रस्वं वज्राभ्यासयोः—' इस सूत्र के अनुसार वज्राभ्यासों $\frac{३३}{४}$, $\frac{३६}{४}$ के अन्तर $\frac{६}{४}$ में २ का अपवर्तन देने से $\frac{३}{२}$ कनिष्ठ हुआ । कनिष्ठों के घात $\frac{११}{४}$ को प्रकृति १३ से गुणा देने से $\frac{१४३}{४}$ हुआ । अब इसके और ज्येष्ठाभ्यास $\frac{११७}{४}$ के अन्तर $\frac{२६}{४}$ में २ का अपवर्तन देने से $\frac{१३}{२}$ ज्येष्ठ पद हुआ । और क्षेपों १३̇ । १̇ का घात धन १३ क्षेप हुआ । इन का क्रम से न्यास—

क $\frac{३}{२}$ ज्ये $\frac{१३}{२}$ क्षे १३

अथवा, वज्राभ्यासों $\frac{३३}{४}+\frac{३६}{४}$ के योग $\frac{७२}{४}$ में हर ४ का भाग देने से कनिष्ठ १८ आया । प्रकृति १३ से गुणित कनिष्ठों के घात $\frac{१४३}{४}$ में ज्येष्ठाभ्यास $\frac{११७}{४}$ जोड़ देने से $\frac{२६०}{४}$ हुआ । इस में हर का भाग देने से ज्येष्ठमूल ६५ आया । इन का यथाक्रम न्यास—

क १८ ज्ये ६५ क्षे १३ ।

उदाहरणम्—

ऋणगैःपञ्चभिःक्षुण्णःकोवर्गःसैकविंशतिः । वर्गः स्याद्वद चेद्वेत्सि क्षयगप्रकृतौ विधिम् ३४

न्यासः । प्र ५̇ । अत्र जाते मूले १ । ४ वा, २ । १ रूपक्षेपभावनयानन्त्यम् ॥

उदाहरण—

ऐसा कौन वर्ग है, जिस को ऋण पांच से गुणा कर, उस में इक्कीस जोड़ देते हैं तो, वह वर्ग हो जाता है ।

न्यास, प्रकृति ५̇ । इष्ट १ को कनिष्ठ माना और इस के वर्ग को ऋण ५̇ से गुणा दिया तो ५̇ में क्षेप २१ जोड़ देने से १६ का मूल ४ ज्येष्ठ हुआ ।

इन का यथाक्रम न्यास—

क १ ज्ये ४ क्षे २१

इसी भांति २ इष्ट कल्पना करने से कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क २ ज्ये १ क्षे २१

यहां पर भी 'तयोर्भावितयानन्त्यं रूपक्षेपपदोत्थया' इस के अनुसार पदों का आनन्त्य होगा।

उक्तं बीजोपयोगीदं संक्षिप्तं गणितं किल।
अतो बीजं प्रवक्ष्यामि गणकानन्दकारकम्॥५५॥

इति श्रीभास्करीये बीजगणिते चक्रवालं समाप्तम्॥

इह ग्रन्थप्रारम्भे 'वच्मि बीजक्रियां च' इति प्रतिज्ञातं तदुपयोगितया सप्रपञ्चं प्रपञ्चितस्य धनर्णषड्विधादेशचक्रवालान्तस्य गणितजालस्य बीजत्वनिरासार्थमनुष्टुभाह—उक्तमिति। हे गणक, गणयतीति गणकस्तत्संबुद्धौ गणक इति, गण संख्याने ण्वुल्। एतेनान्वर्थनामताप्रतिपादनपुरस्सरमाग्रिमगणितप्रपञ्चेऽनुद्वेगता सूचिता। बीजस्य उपयोगि सहकारिभूतं नतु साक्षात्तदेव, संक्षिप्तं न तु विस्तृतम्। एतेन बीजोपयोगिगणितस्यानन्तता सूचिता। इदं निरूपितं गणितमुक्तं कथितं किल। अत आनन्दकारकमाह्लादजनकम्। एतेनाग्रिमभागे प्ररोचना दर्शिता। बीजं प्रवक्ष्यामि॥

हे गणक! इस प्रकार बीजगणित के उपयोगी और संक्षिप्त, धनर्णषड्विध से लेकर चक्रवाल पर्यन्त गणित को मैंने कहा है। अब परम आनन्ददायक बीजगणित को आगे कहता हूँ।

चक्रवाल नामक वर्गप्रकृति का विषय समाप्त॥

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत–दुर्गाप्रसादोन्नीते लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिनि चक्रवालं समाप्तम्।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे।
वासनासरसः पूर्णो वर्गप्रकृतिविस्तरः॥

यावत्तावत्कल्प्यमव्यक्तराशे-
मानं तस्मिन्कुर्वतोद्दिष्टमेव ।
तुल्यौ पक्षौ साधनीयौ प्रयत्ना-
त्त्यक्त्वा क्षिप्त्वा वापि संगुण्य भक्त्वा ॥५६॥
एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षा-
द्रूपाण्यन्यस्येतरस्माच्च पक्षात् ।
शेषाव्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषं
व्यक्तं मानं जायतेऽव्यक्तराशेः ॥ ५७ ॥
अव्यक्तानां द्व्यादिकानामपीह
यावत्तावद् द्व्यादिनिघ्नं हृतं वा
युक्तोनं वा कल्पयेदात्मबुद्ध्या
मानं क्वापि व्यक्तमेवं विदित्वा ॥ ५८ ॥

प्रथममेक वर्णसमीकरणं बीजम् । द्वितीयमनेकवर्णसमीकरणं बीजम् । यत्र वर्णस्य द्वयोर्बहूनां वा वर्गादिगतानां समीकरणं तन्मध्यमाहरणम् । यत्र भावितस्य समीकरणं तद्भावितम्, इति बीजचतुष्टयं वदन्त्याचार्याः । तत्र प्रथमं तावदुच्यते—प्रच्छकेन पृष्टे सत्युदाहरणे योऽव्यक्तराशिस्तस्य मानं यावत्ताव-

देकं द्व्यादि वा प्रकल्प्य तस्मिन्नव्यक्तराशौ उद्देशकालापवत्सर्वं गुणनभजनत्रैराशिकपञ्चराशिकश्रेणीक्षेत्रादिकं गणकेन कार्यम्। तथा कुर्वता द्वौ पक्षौ प्रयत्नेन समौ कार्यौ। यद्यालापे पक्षौ समौ न स्तस्तदैकतरे न्यूने पक्षे किंचित्प्रक्षिप्य ततस्त्यक्त्वा वा केनचित्संगुण्य भक्त्वा वा समौ कार्यौ। ततस्तयोरेकस्य पक्षस्याऽव्यक्तमन्यपक्षस्याऽव्यक्ताच्छोध्यम्, अव्यक्तवर्गादिकमपि। अन्यपक्षरूपाणीतरपक्षरूपेभ्यः शोध्यानि। यदि करण्यः सन्ति तदोक्तप्रकारेण शोध्याः। ततोऽव्यक्तराशिशेषेण रूपशेषे भक्ते यल्लभ्यते तदेकस्याऽव्यक्तस्यमानं व्यक्तं जायते। तेन कल्पितोऽव्यक्तराशिरुत्थाप्यः॥

यत्रोदाहरणे द्व्यादयोऽव्यक्तराशयो भवन्ति तदा तस्यैकं यावत्तावत्प्रकल्प्य, अन्येषां द्व्यादिभिरिष्टैर्गुणितं भक्तं वा, इष्टै रूपैरूनं युक्तं वा यावत्तावदेव प्रकल्प्यम्॥

अथवा, एकस्य यावत्तावदन्येषां व्यक्तान्येव मानानि कल्प्यानि। एवं विदित्वेति यथा क्रिया

निर्वहति तथा बुद्धिमता ज्ञात्वा शेषाणामव्यक्तानि व्यक्तानि वा मानानि कल्प्यानीत्यर्थः॥

विलासी ।

बिभ्राणा करयोः सलीलमुभयोर्वीणां तथा पुस्तकं
पश्यन्ती प्रणतान्कृपामसृणया दृष्ट्या सरोजे स्थिता ।
राकाकैरवबन्धुबन्धुरमुखी बन्धूकवर्णाधरा
सान्द्रानन्दसुधासमुद्रलहरी सा शारदा शास्तु माम् ॥ १ ॥

पूर्वं 'अतो बीजं प्रवक्ष्यामि' इति कथयद्भिराचार्यैर्बीजक्रियानिरूपणं प्रतिज्ञातम्, अतस्तन्निरूपणीयम्, तस्य चातुर्विध्यमास्त इत्याचार्याः सिद्धान्तयन्ति । तथाहि–प्रथममेकवर्णसमीकरणम्, द्वितीयमनेकवर्णसमीकरणम्, तृतीयं मध्यमाहरणम्, चतुर्थं भावितमिति । तत्र समशोधनादिक्रियाकलापेनाज्ञातराशिमानावगमाय यत्रैकं वर्णमधिकृत्य पक्षयोः समता निष्पाद्यते तत् 'एकवर्णसमीकरणम्' इति कथ्यते । यत्रानेकान्वर्णानधिकृत्य पक्षयोः समता निष्पाद्यते तत् 'अनेकवर्णसमीकरणम्' इति कथ्यते । यत्र वर्णवर्गादिकमधिकृत्य पक्षयोः साम्यं विधाय मूलग्रहणपुरस्सरं व्यक्तमानमानीयते तत् 'मध्यमाहरणम्' इति कथ्यते, यतोऽत्र वर्गात्मकराशेः पदग्रहणे प्रायो मध्यमखण्डस्याहरणं दूरीकरणं भवति । यत्र भावितस्याधिकृत्य पक्षयोः समता निष्पाद्यते तत् 'भावितम्' इति व्यपदिश्यते । यद्यप्यत्रैकवर्णसमीकरणस्य लक्षणं मध्यमाहरणविशेषे अनेकवर्णसमीकरणस्य लक्षणं मध्यमाहरणविशेषे भाविते चातिव्याप्तं तथापि गौतमकणभक्षपक्षकक्षावगाहिनामिवास्माकं लक्षणक्षोदे न ग्रहातिशयः । अस्ति चेदाकर्ण्यताम्–यत्रैकमेव वर्णमधिकृत्य पक्षयोः समीकरणेन विनैव मूलग्रहणादव्यक्तं मानं सिध्यति तदेकवर्णसमीकरणम् । एव-

मनेकवर्णसमीकरणस्यापि लक्षणमवसेयम् । एवं नातिव्याप्तिः । 'प्रथममेकवर्णसमीकरणं बीजम् । द्वितीयमनेकवर्णसमीकरणं बीजम्' इति प्रथमद्वितीयशब्दोपादानपुरस्सरं विभागप्रदर्शनाद् बीजद्वैविध्यमेव श्रीभास्कराचार्याणामभिमतम्, इति केचित्॥ 'एकवर्णसमीकरणम्, अनेकवर्णसमीकरणम्' इति मुख्यं विभागद्वयम् । तत्राद्यं द्विविधम्–एकवर्णसमीकरणं, मध्यमाहरणं चेति । द्वितीयं त्रिविधम्–अनेकवर्णसमीकरणम्, तन्मध्यमाहरणं, भावितं चेत्येवं पञ्चविधो विभागः संभवति, इत्यन्ये ॥ 'प्रदर्शितपञ्चविधविभागे मध्यमाहरणयोस्तत्त्वेनैकरूपस्वीकाराच्चतुर्धापि विभागः संभवति। स एव प्राचां संमतः' इत्यपरे ॥ अथ तत्रानेकवर्णानामेकवर्णपूर्वकत्वादेकवर्णसमीकरणं प्रथमतः शालिनीत्रयेणाह–यावत्तावदित्यादिना । अदः श्लोकत्रयमाचार्यैर्व्याख्यातत्वात्पुनर्न व्याख्यायते ॥

भाषाभाष्य ॥

वीणापुस्तकभासुरे हंसकगामिनि वाणि ।
चरणं वाञ्छितदायकं शरणं ते करवाणि ॥ १ ॥
शोषितदुःखपरम्परापारावारपयांसि ।
ददतु शिवं शिववल्लभाचरणसरोजरजांसि ॥ २ ॥
क्षितिजाक्रमणपुरस्सरं खण्डितलोकतमांसि ।
सन्तु प्रीतिसमृद्धये रविकरनिकरमहांसि ॥ ३ ॥
बीजं छात्रमतल्लिकाः सानन्दं कलयन्तु ।
किं चोद्गतमतिवैभवा वादिकुलानि जयन्तु ॥ ४ ॥
भाषाभाष्यरसायनं सोद्योगं रसयन्तु ।
किंच स्वर्गणिकामिव व्युत्पत्तिं वशयन्तु ॥ ५ ॥

अब 'अतो बीजं प्रवक्ष्यामि–' इस श्लोक में प्रतिज्ञात बीजगणित का निरूपण करते हैं—एकवर्णसमीकरण, अनेकवर्णसमीकरण, मध्यमाहरण और भावित इन नामों से बीजगणित चार प्रकार का है। उसके भेदों का सामान्य लक्षण यह है—जहां अव्यक्तराशि के मान के

लिये सम शोधन आदि क्रिया से एक-वर्ण द्वारा दोनों पक्षों की समता सिद्ध की जाती है, उसको एकवर्णसमीकरण कहते हैं। जहां अनेक वर्णों को लेकर, दोनों पक्षों का साम्य सिद्ध किया जाता है, उसको अनेकवर्णसमीकरण कहते हैं। जहां वर्ण वर्ग आदि से पक्षों को समान करते हैं, और वर्गगत राशियों का मूल ला कर व्यक्त-मान साधते हैं, उसको मध्यमाहरण कहते हैं (क्योंकि उस में वर्ग राशि के मूल लेने के समय में 'द्वयोर्द्वयोश्चातिहतिं द्विनिघ्नीं—' इस सूत्र के अनुसार मध्यम खण्ड का आहरण अर्थात् दूरीकरण होता है, इस लिये उसका मध्यमाहरण नाम रक्खा है) और जिस स्थान में भावित को लेकर, पक्षों का साम्य किया जाता है उसको भावित कहते हैं।

एकवर्णसमीकरण की विधि—

उद्दिष्ट उदाहरण में अव्यक्त राशि का यावत्तावत् १,२,३, आदि मान कल्पना करके प्रश्नकर्ता के आलाप (भाषण) के अनुसार गुणन, भजन, त्रैराशिक, पञ्चराशिक, श्रेढी और क्षेत्र आदि की क्रियाओं से समान दो पक्ष सिद्ध करना। यदि आलाप में, पक्ष समान न हों तो, एक पक्ष में कुछ जोड़ या, घटा कर अथवा उस को किसी से गुण या भाग कर समान कर लेना। और उन दोनों पक्षों में से, किसी एक पक्ष के अव्यक्त आदि को, दूसरे पक्ष के अव्यक्त आदि में घटाना, और दूसरे पक्ष के रूपों को पहले पक्ष के रूपों में घटाना। आशय यह है कि जिस पक्ष में अव्यक्तों को शुद्ध किया है, उस से भिन्न पक्ष में रूपों को शुद्ध करना चाहिए। यदि करणी हों तो, उन को भी, उक्त प्रकार से शुद्ध करना। फिर अव्यक्त राशि के शेष का, रूप शेष में भाग देने से जो लब्धि आवे, वह एक अव्यक्त राशि का व्यक्त मान होता है। उसका कल्पित अव्यक्त राशि में उत्थापन देना। आशय यह है कि—'यदि एक अव्यक्त राशि का यह व्यक्तमान आता है, तो कल्पित अव्यक्त राशि क्या' इस भांति त्रैराशिक से कल्पित अव्यक्त का जो व्यक्तमान उत्पन्न हो, उसको पूर्व अव्यक्त राशि को मिटाकर स्थापन करना चाहिये।

इसी भांति यावत्तावत् वर्ग, घन आदि में भी लब्ध व्यक्तमान के वर्ग, घन आदि से उत्थापन देना चाहिये। जिस उदाहरण में, दो तीन आदि अव्यक्त राशि हों वहां एक अव्यक्त का मान एक यावत्तावत् कल्पना कर के और अव्यक्त राशियों का मान दो, तीन आदि इष्ट से गुणित वा भाजित, इष्ट रूपों से ऊन वा, युक्त यावत्तावत् कल्पना करना। अथवा, एक का यावत्तावत् औरों का व्यक्तमान कल्पना करना। इस भांति, जैसे क्रिया का निर्वाह हो सके वैसा ही व्यक्त अथवा अव्यक्त मान कल्पना करना चाहिये, यह सब वक्ष्यमाण उदाहरणों से भली भांति स्पष्ट होगा।

उपपत्ति--

अज्ञात राशि का मान यावत्तावत् कल्पना कर के, बाद उक्त रीति के अनुसार दो पक्ष तुल्य किये जाते हैं। वहां तुल्य दो पक्षों में तुल्य ही जोड़ वा, घटा देने से और उन को तुल्य ही किसी राशि से गुण वा, भाग देने से उन का तुल्यत्व नहीं नष्ट होता, यह बात प्रसिद्ध है। अब किसी एक पक्ष में, जैसा अव्यक्त राशि है उस (अव्यक्तराशि) का उस पक्ष से शोधन करने में, वहां केवल रूप ही रह जाते हैं, परंतु समता के लिये दूसरे पक्ष से भी अव्यक्तराशि घटाना है इस लिये 'एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षात्-' यह कहा है। और अन्यपक्ष में, जैसा रूप राशि है उसका शोधन करने से, उस पक्ष में केवल अव्यक्त राशि रहता है, परंतु समता के लिये उस रूप राशि को दूसरे पक्ष के रूप राशि में घटाना है इसलिये 'रूपाण्यन्यस्ये-तरस्माच्च पक्षात्' कहा है। इस प्रकार एक पक्ष में अव्यक्त राशि और दूसरे पक्ष में रूप राशि हुआ। अब यदि इस अव्यक्तराशि में यह रूपराशि आता है, तो कल्पित अव्यक्त राशि में क्या, इस प्रकार रूपराशि, कल्पित अव्यक्तराशि से गुणित और शेष अव्यक्तराशि से भाजित होता है। वहां 'शेषाव्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषम्-' यह कहा है और कल्पित अव्यक्त राशि से गुणने का उत्थापन में अन्तर्भाव किया है। क्योंकि, यदि शेष अव्यक्तराशि में रूपशेषात्मक राशि पाते हैं, तो एक अव्यक्त में क्या, यहां गुणक के रूप होने से 'शेषा-

व्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषम्–' यही कहा है। इस भांति एक अव्यक्त का व्यक्तमान जान कर, कल्पित अव्यक्त राशियों के मान को जान सकते हैं जैसा–एक का यह व्यक्तमान पाते हैं, तो इष्ट का क्या पावेंगे; यही उत्थापन कहलाता है। इससे उक्त विधि की उपपत्ति स्पष्ट प्रकाशित होती है।

उदाहरणम्—

एकस्य रूपत्रिशती षडश्वा
अश्वा दशान्यस्य तु तुल्यमूल्याः ।
ऋणं तथा रूपशतं च तस्य
तौ तुल्यवित्तौ च किमश्वमूल्यम् ॥३५॥
यदाद्यवित्तस्य दलं द्वियुक्तं
तत्तुल्यवित्तो यदि वा द्वितीयः ।
आद्यो धनेन त्रिगुणोऽन्यतो वा
पृथक् पृथङ्मे वद वाजिमूल्यम् ॥३६॥

अथोद्देशकालापमात्रेण पक्षद्वयसाम्यसिद्धौ प्रथमं तावदुदाहरणमथ 'त्यक्त्वा क्षिप्त्वा वापि संगुण्य भक्त्वा–' इत्यादिना च यथा पक्षयोः समता संभवति तथोदाहरणद्वयं चोपजातिकयाह–एकस्येति । एकस्य वाणिज्यशालिनो मनुष्यस्य रूपत्रिशती, त्रयाणां शतानां समाहारस्त्रिशती, रूपाणां त्रिशती रूपत्रिशती, रोपयति विमोहयतीति रूपम् । रूप विमोहने। अच्। 'अन्येषामपि दृश्यते ६ । ३ । १३७ ।' इति दीर्घः । यद्वा । रूप रूपकरणे इति चौरादिकस्यायमप्यर्थः। 'रूपम्' इति ज्ञातमानस्य राशेः संज्ञेति 'रूपत्रयं–' इत्यादिषु बहुषु स्थलेषु व्यक्ततरमास्ते। परमत्र 'रूपम्' इति

रूप्यस्य नाम प्रतीयते। 'आहतं रूपमस्यास्तीति रूप्यः कार्षापणः' इति 'रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्' इति सूत्रव्याख्याने भट्टोजिदीक्षिताः। किञ्च 'कार्षापणः कार्षिकः स्यात्-' इत्यस्य व्याख्यानावसरे 'द्वे रजतरूप्यस्य' इति भानुजिदीक्षितोक्त्या 'रूप्यः कार्षापणः कार्षिकः' इति सर्वे पर्यायशब्दाः सिध्यन्ति। एवं स्थिते प्रोक्त-पर्यायेभ्यो व्यतिरिक्तो रूपशब्दोऽपि रूप्यवाचको वर्तत इति सिध्यति परं दृढतरं प्रमाणं न पश्यामः। कुत्रचित् 'रूप्यकम्' इति दृश्यते तत्र तु पुस्तकशब्दवत्स्वार्थिकः कन्। प्रकृतमनुसरामः- षट् अश्वास्तुरंगा एतावद्धनम्। अन्यस्य तु दश अश्वाः। तथा रूपशतमृणं वर्तते उभयोरप्यश्वाः तुल्यमूल्याः। तुल्यं मूल्यं येषां ते तुल्यमूल्या। मूलेन समं मूल्यम्। 'नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसंमितेषु' इति सूत्रेण यत्प्रत्ययः। एवं तौ समानधनौ। अश्वमूल्यं किमिति। अथैकस्य षट् अश्वाः रूपशतत्रयं चास्ति, परस्य दश अश्वाः रूपशतमृणं चास्ति। परमनयोर्वित्तं समं नास्ति, किंतु प्रथमस्य वित्तार्धं द्वियुक्तं यावद्भवति तावदपरस्य सर्वधनमस्ति। अश्वमूल्येनान्यथा भाव्यम्॥ अथवा अन्यतः सकाशादाद्यो धनेन त्रिगुणो वर्तते। एवं स्थिते पृथक् पृथङ्मे वाजिमूल्यं वद॥

(१) उदाहरण—

एक व्यापारी के पास तीनसौ रुपये और छ घोड़े हैं और दूसरे के पास ऋण सौ रुपये और दश घोड़े हैं, पर दोनों के घोड़ों का मोल समान है और व्यापारी भी आपस में बराबर धनवाले हैं, तो बतलाओ घोड़े का मोल क्या है ?

(२) उदाहरण—

यदि दो से जुड़ा पहले व्यापारी के आधे धन के तुल्य, दूसरे का सब धन है और उस से पहले का धन तिगुना है, तो घोड़ों का मोल क्या है ?

अत्राश्वमूल्यमज्ञातं तस्य मानं यावत्तावदेकं प्रकल्पितम् या १ तत्र त्रैराशिकम् यद्येकस्य यावत्तावन्मूल्यं तदा षण्णां किमिति न्यासः ।

प्र. फ० इ०
१ । या १ । ६ ।

फलमिच्छागुणं प्रमाणभक्तं लब्धं षण्णामश्वानां मूल्यम् या ६ । अत्र रूपशतत्रये प्रक्षिप्ते जातमाद्यस्य धनम् या ६ रू ३०० ।

एवं दशानां मूल्यम् या १० । अत्र रूपशते चर्णगते प्रक्षिप्ते जातं द्वितीयस्य धनम् या १ रू १०० ।

एतौ समधनाविति पक्षौ स्वत एव समौ जातौ समशोधनार्थं न्यासः ।

या ६ रू ३००
या १० रू १००

अथ 'एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षात्—' इति आद्यपक्षाव्यक्तेऽन्यपक्षाव्यक्ताच्छोधिते शेषम् या ४ । द्वितीयपक्षरूपेष्वाद्यपक्षरूपेभ्यः शोधितेषु शेषम् रू ४०० । अव्यक्तराशिशे-

षेण या ४ रूपशेषेरू ४०० उद्धृते लब्धमेकस्य यावत्तावतो मानं व्यक्तम् १००। यद्येकस्याश्वस्येदं मूल्यं तदा षण्णां किमिति त्रैराशिकेन लब्धं षण्णां मूल्यम् ६०० रूपशतत्रययुतं ९०० जातमाद्यस्य धनम्। एवं द्वितीयस्यापि ९००। अथ द्वितीयोदाहरणे प्रथमद्वितीययोस्ते एव धने।

या ६ रू ३००
या १० रू १०० ̇

अत्राद्यपक्षधनार्धेन द्वियुक्तेन तुल्यमन्यस्य धनमुदाहृतमत आद्यधनार्धे द्वियुक्ते, अथवान्यधने द्विहीने द्विगुणे कृते पक्षौ समौ भवतस्तथा कृते शोधनार्थं न्यासः।

या ३ रू १५२
या १० रू १०० ̇

अथवा, या ६ रू ३००
या २० रू २०४ ̇

उभयोरपि शोधनाद्ये कृते लब्धं यावत्तावन्मानम् ३६।

अनेन पूर्ववदुत्थापने कृते जाते धने ५१६। २६०।

अथ तृतीयोदाहरणे ते एव धने आद्यधन- त्र्यंशः परधनमिति परं त्रिगुणीकृत्य न्यासः।

या ६ रू ३००
या ३० रू ३०ं

समक्रियया लब्धं यावत्तावन्मानम् २५।
अनेनोत्थापिते जाते ४५०। १५०।

(१) उदाहरण में घोड़े का मोल मालूम नहीं है, इस लिये उसका मान यावत्तावत् एक कल्पना किया या १, अब एक घोड़े का यावत्तावत् मोल है, तो छ घोड़ों का क्या होगा ?

प्र.	फ.	इ.
१	या १	६

फल को इच्छा से गुण कर उस में प्रमाण का भाग देने से, छ घोड़ों का मोल या ६, इस में तीनसौ रुपये जोड़ देने से पहले व्यापारी का धन या ६ रू ३०० । ऐसे ही दश घोड़ों का मोल या १०, इस में ऋण सौ रुपये जोड़ देने से दूसरे व्यापारी का धन या १०, रू १०ं० । ये दोनों समधन हैं, इसलिये पक्ष समान हुए अर्थात् जो मान तीनसौ रुपयों से जुड़े यावत्तावत् छ का है, वही मान सौ रुपयों से ऊन यावत्तावत् दश का है । इन दोनों पक्षों का सम शोधन के लिये न्यास—

या ६ रू ३००
या १० रू १०ं०

पहले पक्ष के अव्यक्त या ६ को, दूसरे पक्ष के अव्यक्त या १०

में शोधन करने से और दूसरे पक्ष के रूप १०० को पहले पक्ष के रूप ३०० में शोधन करने से, दोनों पक्षों की स्थिति हुई—

या ० रू ४००
या ४ रू०

अब, अव्यक्त शेष ४ का रूप शेष ४०० में भाग देने से अव्यक्त राशि का व्यक्तमान १०० हुआ। बाद, यदि एक घोड़ा का १०० मोल है तो ६ घोड़ों का क्या ? त्रैराशिक से छ घोड़ों का मोल ६०० हुआ इस में ३०० जोड़ देने से पहले व्यापारी का धन हुआ ९०० ।

इस भांति दश घोड़ों का मोल १००० हुआ, इस में १०̇० घटा देने से ९०० दूसरे व्यापारी का धन हुआ।

(२) उदाहरण में दोनों के धन है—

या ६ रू ३००
या १० रू १००̇

दो से युक्त पहले धन का आधा दूसरे का धन है, इसलिये दोनों पक्ष तुल्य हुए—

या ३ रू १५२
या १० रू १०̇०

अथवा, दूसरे के धन या १० रू १०̇० में २ घटा कर, उसको २ से गुणा देने से 'या २० रू २०४̇' हुआ, यह पहले धन के तुल्य है, इस लिये दो पक्ष तुल्य हुए—

या ६ रू ३००
या २० रू २०४̇

अथवा, दो से ऊन दूसरे का धन पहले के धन के आधे के समान है इसलिये दो पक्ष तुल्य हुए—

या ३ रू १५०
या १० रू १०२̇

यहां तीनों पक्षों पर से, उक्त रीति से यावत्तावत् का मान ३६ आया। यदि एक घोड़े का ३६ मोल है, तो छ घोड़ों का क्या,

इस प्रकार छ घोड़ों का मोल २१६ हुआ, इस में ३०० जोड़ देने से पहले का सब धन ५१६ हुआ। और इसी प्रकार दश घोड़ों का मोल ३६० हुआ। इस में १०̇० घटा देने से, दूसरे का सब धन २६० हुआ, यह धन दो से युक्त प्रथम धन के आधे के तुल्य है। जैसा—आद्यधन ५१६ का आधा २५८ में २ जोड़ देने से २६० दूसरे का धन हुआ। अथवा, २६० इस में २ घटा देने से २५८ हुआ, इस को दूना करने से पहले का धन हुआ ५१६। अथवा, दूसरे के धन २६० में २ घटा देने से २५८ हुआ, यह पहले धन ५१६ के आधे २५८ के समान है।

दूसरे उदाहरण के अन्तर्गत तीसरे उदाहरण में वही धन है—

या ६ रू ३००
या १० रू १०̇०

यहां पहले के धन का तीसरा हिस्सा दूसरे का धन कहा है इसलिये दो पक्ष हुए—

या २ रू १००
या १० रू १००̇

अथवा, दूसरे के धन को तिगुना करने से दो पक्ष हुए—

या ६ रू ३००
या ३० रू ३०̇०

दोनों पक्षों के समीकरण से यावत्तावत् का मान २५ आया, एक घोड़े का २५ मोल है, तो छ घोड़ों का क्या, इस त्रैराशिक से छ घोड़ों का मोल १५० आया, इस में ३०० जोड़ देने से पहले का धन ४५० हुआ। इसी प्रकार, दश घोड़ों का मोल २५० हुआ, इस में १०̇० घटा देने से दूसरे का धन १५० हुआ, इस से तिगुना पहले का धन ४५० है।

उदाहरणम्—

माणिक्यामलनीलमौक्तिकमितिः पञ्चाष्ट सप्त क्रमादेकस्यान्यतरस्य सप्त नव षट्

तद्रत्नसंख्या सखे । रूपाणां नवतिर्द्विषष्टिरनयोस्तौ तुल्यवित्तौ तथा बीजज्ञ प्रतिरत्नजातिसुमते मूल्यानि शीघ्रं वद ॥ ३७॥

अत्राव्यक्तानां बहुत्वे कल्पितानि माणिक्यादीनां मूल्यानि या ३ या २ या १ । यद्येकस्य रत्नस्येदं मूल्यं तदोद्दिष्टानां किमिति लब्धानां यावत्तावतां योगे स्वस्वरूपयुते जातौ पक्षौ

या १५ या १६ या ७ रू ९०
या २१ या १८ या ६ रू ६२

एते अनयोर्धने इति समशोधने कृते लब्धं यावत्तावन्मानम् ४ । अनेनोत्थापितानि माणिक्यादीनां मूल्यानि १२ । ८ । ४ । एवं सर्वधनम् २४२ ।

अथवा माणिक्यमानं यावत्तावत्, नीलमुक्ताफलयोर्मूल्ये व्यक्ते एव कल्पिते ५ । ३ । अतः समीकरणेन लब्धं यावत्तावन्मानम् १३। अनेनोत्थापिते जातं समधनम् २१६ । एवं कल्पनावशादनेकधा ।

अथ 'अव्यक्तानां द्व्यादिकानामपीह—' इत्यस्योदाहरणं

शार्दूलविक्रीडितेनाह—माणिक्येति। हे सखे, एकस्य रत्नवणिजो माणिक्यामलनीलमौक्तिकमितिः क्रमात् पञ्च अष्ट सप्त, रूपाणां नवतिश्च वर्तते। अन्यतरस्य तु तद्रत्नसंख्या सप्त नव षट् रूपाणां द्विषष्टिश्च वर्तते। हे बीजज्ञ, प्रतिरत्नजातिसुमते, प्रतिरत्नानां जातौ उत्तमाधमविवेकपुरस्सरं मूल्यविचारे सुष्ठु समीचीना मतिः यस्यासौ तत्संबोधनम् । तौ तुल्यवित्तौ यथा स्यातां तथा मूल्यानि वद ॥

उदाहरण—

एक व्यापारी के पास, पांच माणिक्य, आठ नीलम, सात मोती और नब्बे रुपये हैं । दूसरे के पास, सात माणिक्य, नौ नीलम, छ मोती और बासठ रुपये हैं, और दोनों व्यापारियों का धन समान है, तो प्रत्येक रत्नों का क्या मोल है ?

यहां अनेक अव्यक्त हैं, इसलिये माणिक्य आदि रत्नों के यावत्तावत् ३, २, १, मोल कल्पना किए—

या ३ या २ या १

यदि एक माणिक्य का या ३ मोल है, तो पांच का क्या ? इस प्रकार पांच माणिक्य का मोल या १५ हुआ, और आठ नीलम, सात मोती के मोल या १६ या ७ हुए, इन अव्यक्तों के योग या ३८ में ९० जोड़ देने से पहले का धन हुआ या ३८ रू ९० । एक माणिक्य का या ३ मोल है, तो सात का क्या ? इस प्रकार सात माणिक्य का मोल या २१ हुआ । ऐसे ही नौ नीलम और छ मोती के मोल या १८ या ६ हुए, इन अव्यक्तों के योग या ४५ में ६२ जोड़ देने से दूसरे का धन हुआ । इस प्रकार दो पक्ष समान सिद्ध हुए—

या ३८ रू ९०
या ४५ रू ६२

सम-शोधन करने से—

या रू० २८
या ७ रू०

उक्त रीति से यावत्तावत् का मान ४ आया। अब इससे माणिक्य आदि के मोल में उत्थापन देना चाहिए—एक अव्यक्त का ४ मोल है तो यावत्तावत् ३ का क्या, माणिक्य का मोल १२ हुआ, ऐसे ही यावत्तावत् दो और यावत्तावत् एक के मोल हुए ८। ४ इन का क्रम से न्यास १२। ८। ४ फिर, यदि एक माणिक्य का १२ मोल, तो पांच का क्या? इस प्रकार पांच माणिक्य का मोल ६० हुआ। आठ नीलम का मोल ६४ और सात मोतियों का मोल २८ हुआ। इनके योग १५२ में ९० जोड़ देने से पहले व्यापारी का सर्वधन २४२ हुआ। इसी भांति दूसरे के रत्नों के मोल हुए मा. ८४ नी. ७२ मो. २४ इन के योग १८० में ६२ जोड़ देने से, दूसरे व्यापारी का सर्वधन २४२ हुआ।

अथवा, माणिक्य का मान यावत्तावत् एक कल्पना किया या १ और नीलम, मोती के मान ५। ३ फिर, यदि एक माणिक्य का या १ मोल है, तो पांच का क्या? इस प्रकार पांच माणिक्य का मोल या ५ हुआ, नीलम और मोती के मोल हुए ४०। २१ इन का योग ६१ रूप हुआ। यदि एक माणिक्य का या १ मोल है, तो सात का क्या? सात माणिक्य का मोल या ७ हुआ। इसी प्रकार नीलम और मोती के मोल आये ४५। १८ इन का योग ६३ रूप हुआ। यों दो पक्ष सिद्ध हुए—

या ५ रू ६१
या ७ रू ६३

इन में ९० और ६२ जोड़ देने से हुए—

या ५ रू १५१
या ७ रू १२५

फिर समीकरण से यावत्तावत् का मान १३ आया। एक का १३ मोल है तो पांच का क्या? पांच माणिक्य का मोल ६५ हुआ, इस में रूप १५१ जोड़ देने से पहले का सर्वधन २१६ हुआ। फिर, एक का १३ मोल है तो सात का क्या? सात माणिक्य का मोल ९१ हुआ, इस में रूप १२५ जोड़ देने से दूसरे का सर्व-

धन २१६ हुआ । इस प्रकार कल्पना वश अनेक भांति के मोल आवेंगे ।

उदाहरणम्—

एको ब्रवीति मम देहि शतं धनेन
त्वत्तो भवामि हि सखे द्विगुणस्ततोऽन्यः ।
ब्रूते दशार्पयसि चेन्मम षड्गुणोऽहं
त्वत्तस्तयोर्वद धने मम किं प्रमाणे*॥३८॥

अत्र कल्पिते आद्यधने

या २ रू १००
या १ रू १००

अनयोः परस्य शते गृहीते आद्यो द्विगु-

---

* अत्र ज्ञानराजदैवज्ञः—

कालिन्दीजलकेलिलालसमिलद्गोपालमेलद्वया-
देकः संवदतीति कृष्ण विबलानस्मान्यदा यास्यसि ।
गोपालत्रिशतीयुतः समबला अन्यैर्भवामो वयं
नो चेत्ते भवतश्चतुर्गुणबलास्तन्मेलमानं वद ॥

श्रीबापुदेवपादोक्तं सूत्रम्—

दानैक्ये सैकेन स्वस्वगुणेनाहते निरेकेण ।
गुणघातेन हृते स्वे स्यातामन्योन्यदानसंयुक्ते ॥

आचार्योक्तोदाहरणे प्र दा=१०० । प्र. गु=२
द्वि. दा= १० । द्विगु= ६

$$\frac{(\text{१००}+\text{१०})\,\text{३}}{\text{२}\times\text{६}-\text{१}}=\text{३०}\quad \text{प्रथमस्य धनम् ।}$$

$$\frac{(\text{१००}\times\text{१०})\,\text{७}}{\text{२}\times\text{६}-\text{१}}=\text{७०}\quad \text{द्वितीयस्य धनम् ।}$$

णितः स्यादित्येकालापो घटते। अथाद्याद्दशापनीय दशभिः परधनं युतं षड्गुणं स्यादित्याद्यं षड्गुणीकृत्य न्यासः।

या १२ रू ६॑०
या १ रू ११०

अतः समीकरणेन लब्धं यावत्तावन्मानम् ७०
अनेनोत्थापिते जाते धने ४०। १७०।

अथ '-युक्तोनं वा कल्पयेदात्मबुद्ध्या-' इत्यस्योदाहरणं सिंहोद्धतयाह-एक इति। हे सखे, यदि शतं शतसंख्याकं धनं मम देहि तदा त्वत्तो धनेन द्विगुणोऽहं भवामि। 'हि' इति पादपूरणे इत्येको ब्रवीति। अतोऽन्यस्तं प्रति ब्रूते-यदि त्वं दश अर्पयसि मम तदा त्वत्तः षड्गुणोऽहं भवामि, इति तयोः सुहृदोः किं प्रमाणे धने इति मम वद॥

उदाहरण—

एक व्यापारी, दूसरे से कहता है कि हे मित्र! जो तुम सौ रुपये दो तो मैं तुम से धन में दूना हो जाऊं और दूसरा कहता है कि यदि तुम दश रुपये मेरे को दो तो मैं तुम से धन में छः गुना हो जाऊं, तो उन दोनों के पास धन का प्रमाण क्या है?

यहां दोनों का धन, ऐसा कल्पना करना चाहिये जिस से एक आलाप अपने आप घटित हो, जैसा—

या २ रू १॑००
या १ रू १००

इन में दूसरे से सौ रुपये लेने से पहला दूना होता है, क्योंकि ऋण सौ रुपये में, धन सौ रुपये जोड़ देने से धनर्णसाम्य होने से सौ उड़ जाते हैं और यावत्तावत् २ शेष रहता है।

या २ रू०
या १ रू०

इस प्रकार एक आलाप घटित होता है। फिर,

या २ रू १०̇०
या १ रू १००

आद्य धन से दश निकाल कर, दूसरे धन में जोड़ देने से हुए—

या २ रू ११̇०
या १ रू ११०

अब, या २ रू ११०̇ यह षड्गुणित, या १ रू ११० इस शेष के समान है। इसलिये समान दो पक्ष हुए—

या १२ रू ६६̇०
या १ रू ११०

समीकरण से यावत्तावत् का मान ७० आया। यदि एक यावत्तावत् का व्यक्तमान ७० है, तो यावत्तावत् दो का क्या? दो का व्यक्तमान १४० आया, इस में ऋण सौ रुपये १०० घटा देने से, एक व्यापारी का सर्वधन ४० हुआ। इसी भांति, दूसरे पक्ष में उत्थापन देने से दूसरे का सर्वधन १७० हुआ। दोनों व्यापारियों के धन हुए १७०। ४०। यहां १७० में से १०० लेने से, दूसरे का धन १०० + ४०=१४० यह शेष १७०—१००=७० से दूना होता है। और ४० में से १० लेने से पहले का धन १०+१७०=१८० यह शेष ४०−१०=३० से छ गुना होता है।

अथवा, जिस प्रकार दूसरा आलाप घटित होवे। वैसे दोनों के धन कल्पना किये—

या १ रू १०
या ६ रू १०̇

यहां आद्य धन में दश घटा देने से और दूसरे में जोड़ देने से दूसरा स्वतः षड्गुण होता है। दूसरे पक्ष में १०० घटा देने से आद्य पक्ष में १०० जोड़ देने से और शेष धन या ६ रू ११̇० को दूना करने से दो पक्ष समान हुए—

या १ रू ११०
या १२ रू २२०

समीकरण से यावत्तावत् का मान ३० आया। इस से पक्षों में उत्थापन देने से पूर्वसाधित धन के तुल्य दोनों के धन हुए ४०। १७०

उदाहरणम्—

माणिक्याष्टकमिन्द्रनीलदशकं मुक्ताफलानां शतं यत्ते कर्णविभूषणे समधनं क्रीतं त्वदर्थे मया। तद्रत्नत्रयमूल्यसंयुतिमितिस्त्र्यूनं शतार्धं प्रिये मूल्यं ब्रूहि पृथग्यदीह गणिते कल्यासि कल्याणिनि ३९।

अत्र समधनं यावत्तावत् १। यदाष्टानां माणिक्यानामिदं मूल्यं तदैकस्य किमिति। एवं त्रैराशिकेन सर्वत्र मूल्यानि।

या $\frac{1}{8}$ या $\frac{1}{10}$ या $\frac{1}{100}$

एषां योगः सप्तचत्वारिंशता सम इति समशोधनार्थं न्यासः।

या $\frac{47}{200}$ रू ०
या० रू ४७

एतौ पक्षौ समच्छेदीकृत्य छेदगमे समीकरणेन लब्धं यावत्तावन्मानम् २०० अनेनो-

स्थापितानि जातानि रत्नमूल्यानि २५।२०।२ समधनम् २०० । एवं कर्णभूषणे रत्नमूल्यम् ६००

अत्र समच्छेदीकृत्य शोधनार्थमाद्यपक्षेण परपक्षे ह्रियमाणे छेदांशविपर्यासे कृते परस्य छेदो गुणोंऽशो हरश्चेति तुल्यत्वात्तयोर्नाशो भविष्यतीति छेदगमः क्रियते ॥

अथ छात्रमतिवैशद्यार्थं विचित्रोदाहरणं शार्दूलविक्रीडितेनाह—माणिक्याष्टकमिति । हे कल्याणिनि कल्याणविशिष्टे, त्वं चेदिह अव्यक्तगणिते कल्या चतुरासि, अत्र केचित् 'कल्या' इत्यस्य स्थाने 'कल्पा' इति पवर्गादिमवर्णावसानकं पाठं कल्पयन्ति तन्न सुष्ठु बहुटीकाकारोक्तिविसंवादात् । तर्हि तेषां रत्नानां मध्ये एकैकस्य रत्नस्य मूल्यं पृथग्भिन्नं ब्रूहि आख्याहि । यत् रत्नत्रयं ते तव कर्णविभूषणे कर्णयोरलंकारे माणिक्यानामष्टकमिन्द्रनीलानां दशकं मुक्ताफलानां शतं वर्तते । किं लक्षणम् । त्वदर्थे समधनं समानमूल्यं मया क्रीतं, मूल्यदानपुरस्सरं गृहीतमित्यर्थः । 'समधनम्' इत्यस्यायमभिप्रायः—यन्माणिक्याष्टकस्य मूल्यं तदेवेन्द्रनीलदशकस्य तदेव मुक्ताफलशतस्येत्यर्थः । हे प्रिये, तेषां रत्नानां यत्त्रयं तस्य यानि मूल्यानि तेषां युतिः न्यूनं शतार्धं वर्तते ।

उदाहरण—

किसी ने समान मोल से आठ माणिक्य, दश नीलम और सौ मोती खरीदे और उन तीनों रत्नों के मोल का योग सैंतालीस होता है, तो हर एक रत्नों का मोल क्या होगा ?

यहां माणिक्य आदि के मूल्य कल्पना करने से क्रिया का निर्वाह नहीं होता। इसलिये समधन का मान यावत्तावत् १ कल्पना किया, यदि आठ माणिक्य का या १ मोल है, तो एक का क्या, इस प्रकार हर एक रत्नों के मोल हुए—

$$\text{या } \frac{१}{८} \quad \text{या } \frac{१}{१०} \quad \text{या } \frac{१}{१००}$$

इनका समच्छेद से योग या $\frac{४७}{२००}$ हुआ, यह सैंतालीस के समान है, इसलिये दो पक्ष हुए—

$$\text{या } \frac{४७}{२००} \; \text{रू} ०$$
$$\text{या } ० \quad \text{रू} ४७$$

'कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः—' इस रीति के अनुसार, दूसरे पक्ष के रूप ४७ के नीचे १ हर हुआ—

$$\text{या } \frac{४७}{२००} \; \text{रू} ०$$
$$\text{या} ० \; \frac{४७}{१} \; \text{रू}$$

समच्छेद करने से हुए—

$$\text{या } \frac{४७}{२००} \; \text{रू} ०$$
$$\text{या} ० \quad \text{रू } \frac{९४००}{२००}$$

छेदापगम करने से हुए—

$$\text{या } ४७ \; \text{रू} ०$$
$$\text{या} ० \quad \text{रू } ९४००$$

समीकरण से यावत्तावत् का मान २०० आया, यदि आठ माणिक्य का २०० समधन है, तो १ का क्या, $\frac{२०० \times १}{८} = २५$ हुआ।

यदि दश नीलम का २०० समधन है, तो १ का क्या, $\frac{२०० \times १}{१०} = २०$ हुआ। यदि सौ मोती का २०० समधन है तो १ का क्या? $\frac{२०० \times १}{१००} = २$ हुआ।

क्रम से न्यास २५ । २० । २ । उनका योग ४७ है। एक माणिक्य

का २५ मोल है, तो आठ का क्या ? $\frac{२५ \times ८}{१} = २००$ । एक नीलम का २० मोल है, तो दश का क्या? $\frac{२० \times १०}{१} = २००$ । एक मोती का २ मोल है, तो सौ का क्या ? $\frac{२ \times १००}{१} = २००$

इस प्रकार समान धन आते हैं, इनका योग ६०० सब रत्नों का मोल हुआ।

यहां पर समच्छेद कर के शोधन के लिये आद्यपक्ष का परपक्ष में भाग देने से, छेद और अंश के विपर्यास होने पर गुण-हर के तुल्य होने से, वे उड़ जाते हैं। इसलिये लाघवार्थ छेदापगम होता है। अर्थात् छेद मिटा दिया जाता है।

उदाहरणम्—

पञ्चांशोऽलिकुलात्कदम्बमगमत् त्र्यंशः शिलीन्ध्रं तयोर्विश्लेषस्त्रिगुणो मृगाक्षि कुटजं दोलायमानोऽपरः। कान्ते केतकमालतीपरिमलप्राप्तैककालप्रियादूताहूत इतस्ततो भ्रमति खे भृङ्गोऽलिसंख्यां वद * ॥ ४० ॥

---

* अत्र श्रीधराचार्याः—

षड्भागः पाटलासु भ्रमति गणयुजः स्वत्रिभागः कदम्बे
पादश्चूतद्रुमे च प्रदलितकुसुमे चम्पके पञ्चमांशः।
प्रोत्फुल्लाम्भोजषण्डे रविकरदलिते त्रिंशदंशोऽभिरेमे
तत्रैको मत्तभृङ्गो भ्रमति नभसि चेत्का भवेद्भृङ्गसंख्या ॥

ज्ञानराजदैवज्ञाः—

मानैः कोकिलमञ्जुलैः परिमलैरानन्दयन्तं फलै-
र्भारद्वाजमुखं द्विजोत्तमकुलं त्वामेत्य शाखाधिपम्।
जातं पूर्णमनोरथं सुरतरो स्वार्धाङ्घ्रिपञ्चांशकैः
पूर्वादिक्रमतश्चतुर्द्विजयुतस्तिष्ठाम्यहं तान् वद ॥

अत्रालिकुलप्रमाणं यावत्तावत् १। अतः कदम्बादिगतालिप्रमाणं यावत्तावत् $\frac{१४}{१५}$ एतद् दृष्टेन भ्रमरेण युतमलिप्रमाणमिति न्यासः।

या $\frac{१४}{१५}$ रू १५
या १ रू०

एतौ समच्छेदीकृत्य छेदगमे पूर्ववल्लब्धं यावत्तावन्मानम् १५ एतदलिप्रमाणम् ॥

अथान्यदुदाहरणं पाटीस्थं प्रदर्शयति–पञ्चांश इति। व्याख्यातोऽयं श्लोको लीलावतीव्याख्याने ॥

उदाहरण—

एक भ्रमरों के समूह से उस का पञ्चमांश कदम्ब को गया और तृतीयांश शिलीन्ध्र नामक पुष्प को गया, और उन भागों के त्रिगुण-अन्तर के तुल्य भ्रमर, कुटज नामक पुष्प को गये, केवल एक भ्रमर केतकी और मालती के सुगन्ध में लोभा हुआ आकाश में भ्रमण कर रहा है, तो कहो कितने भ्रमर हैं ?

यहाँ भ्रमरों के समूह का मान यावत्तावत् १ है, इस का पञ्चमांश या $\frac{१}{५}$ और तृतीयांश या $\frac{१}{३}$ हुआ, इनके अन्तर या $\frac{२}{१५}$ को ३ से गुणा या $\frac{६}{१५}$ हुआ, इसमें ३ का अपवर्तन देने से $\frac{२}{५}$ हुआ। फिर उक्त या $\frac{१}{५}$ या $\frac{१}{३}$ या $\frac{२}{५}$ भागों का समच्छेद से योग या $\frac{१४}{१५}$ हुआ, इस में दृष्ट भ्रमर १ जोड़ देने से पहला पक्ष हुआ या $\frac{१४}{१५}$ रू १५ यह यावत्तावत् एक के समान है, इस लिये दो पक्ष हुए—

या $\frac{१४}{१५}$ रू १५
या १ रू ०

समच्छेद और छेदगम से पूर्व रीति के अनुसार यावत्तावत् का मान १५ आया, यही भ्रमरों के समूह की संख्या है ॥

अथान्योक्तमप्युदाहरणं क्रियालाघवार्थं प्रदर्श्यते—

पञ्चकशतदत्तधनात्
फलस्य वर्गं विशोध्य परिशिष्टम् ।
दत्तं दशकशतेन
तुल्यः कालः फलं च तयोः ॥

अत्र काले यावत्तावत्कल्पिते क्रिया न निर्वहति इत्यतः कल्पिताः पञ्चमासा मूलधनं यावत्तावत् १

अस्मात्पञ्चराशिके न्यासः

१०	५
१००	या १
५	०

लब्धं फलं यावत्तावत् $\frac{१}{४}$ अस्य वर्गः याव $\frac{१}{१६}$ मूलधनात्समच्छेदेन शोधिते जातं द्वितीयमूलधनम् $\frac{\text{याव १ या १६}}{१६}$ अत्रापि मासपञ्चकेन पञ्चराशिके कृते न्यासः ।

१	५
१००	याव १̇ या १६
	१६
१०	०

लब्धं फलं $\frac{\text{याव १̇ या १६}}{\text{३२}}$ एतत्पूर्वफलस्यास्य या $\frac{१}{४}$ सममिति पक्षौ यावत्तावतापवर्त्य समशोधनाय पक्षयोर्न्यासः।

या $\frac{१̇}{३२}$ रू १६
या १ रू $\frac{१}{४}$

प्राग्वल्लब्धं यावत्तावन्मानम् ८ एतन्मूलधनम्। अथवा प्रथमप्रमाणफलेन द्वितीयप्रमाणफले विभक्ते यल्लभ्यते तद्गुणगुणितेन द्वितीयमूलधनेन तुल्यमेव प्रथममूलधनं स्यात्, कथमन्यथा समे काले समं फलं स्यात्। अतो द्वितीयस्यायं गुणः २, द्वितीयमूलधनमेकोनगुणगुणितं फलवर्गे वर्तते, अत एकोनगुणेनेष्टकल्पितकलान्तरस्य वर्गे भक्ते द्वितीयमूलधनं स्यात् तत्फलवर्गयुतं प्रथममूलधनं स्यात्, अतः कल्पितफलवर्गः ४

अतः प्रथमद्वितीयमूलधने ८।४। फलम् २। यदि शतस्य पञ्च कलान्तरं तदाष्टानां किमिति लब्धमेकमासेऽष्टानां फलम् $\frac{२}{५}$। यद्यनेनैको मासस्तदा द्विकेन किमिति लब्धा मासाः ५।

अथ परोक्तमप्युदाहरणं क्रियालाघवार्थं प्रदर्शयति—पञ्चकेति। प्रतिमासं पञ्च वृद्धिर्यस्येति पञ्चकम्। तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपपदा दीयते इति सूत्रेण कन्। तादृशं यच्छतं तेन प्रमाणेन दत्तं यद्धनं तस्य किंचित्कालजं यत्फलं कलान्तरं तस्य वर्गं मूलधनाद्विशोध्य यदवशिष्टं धनं तद्दशकशतेन, प्रतिमासं दश वृद्धिर्यस्येति दशकम्, दशकं च तच्छतं च दशकशतं तेन प्रमाणेन दत्तम्, तयोः प्रथमद्वितीययोर्मूलद्रव्ययोस्तुल्ये काले तुल्यमेव फलं भवति। एवं सति ते के धने इति वदेति शेषः।

उदाहरण—

पांच रुपये सैकड़े के ब्याज पर दिये धन का जो ब्याज आया उस के वर्ग को, मूल धन में घटा देने से जो शेष धन बचा, उस को दश रुपये सैकड़े के ब्याज पर दिया और उन दोनों मूलधनों का काल और ब्याज समान है, तो मूलधन क्या है ?

(१) यहां काल का मान यावत्तावत् कल्पना करने से क्रिया का निर्वाह नहीं होता। इसलिये पांच मास और मूलधन का मान यावत्तावत् १ कल्पना किया। यदि एक महीने में सौ का पांच ब्याज मिलता है, तो पांच महीने में यावत्तावत् एक का क्या मिलेगा ?

१	५
१००	या १
५	०

'अन्योऽन्यपक्षनयनं—' इस सूत्र के अनुसार न्यास—